कविवर परमानंददास और वल्लभ-सम्प्रदाय

लेखक

गोवर्धननाथ शुक्ल

एम ए (हिन्दी-संस्कृत) पी-एच डी

रीडर, हिन्दी-विभाग अलीगढ़ विश्वविद्यालय

प्रकाशक

भारत प्रकाशन मंदिर

अलीगढ़।

प्रकाशक
भारत प्रकाशन मन्दिर,
अलीगढ़ ।

मूल्य बारह रुपये

मुद्रक
आदर्श प्रेस अलीगढ़ ।

श्रीनाथजी

परमानन्ददासजी के परमाराध्य

समर्पण

अष्टछापी भक्तों के दिव्य लीला गान को
आठों याम श्रवण करने वाले
परमानन्ददासजी के परमाराध्य
लीलासागर श्रीनाथजी
के पादपद्मों में
यह तुलसीदल

आत्मनिवेदन

'कविवर परमानन्ददास और वल्लभ-सम्प्रदाय' मेरे गवेषणात्मक प्रबन्ध के संवर्धित संशोधित और परिवर्तित स्वरूप का परिणाम है। सन् १९५५ में लिखे गए इस शोध-प्रबन्ध के दो खण्ड थे। द्वितीय खण्ड—परमानन्द सागर [पद-संग्रह] आवश्यकता और महत्त्व की दृष्टि से सन् १९५८ में ही प्रकाशित कर दिया गया था। सौभाग्य की बात हुई कि हिन्दी-जगत् ने उसका स्वागत किया और 'एक लम्बे अभाव की पूर्ति' बतलाई। यद्यपि वह परमानन्ददासजी के काव्य के सुव्यवस्थित प्रकाशन की दृष्टि से प्रथम प्रयास था फिर भी साहित्य-जगत् ने उसका हार्दिक स्वागत किया और विशेष संतोष की बात तो यह हुई कि साम्प्रदायिक आचार्यों एवं मर्मज्ञ विद्वानों तथा सङ्गीत रसिकों का भी उसे आशीर्वाद प्राप्त हुआ। इसमें अधिकांश श्रेय भगवत्कृपा के साथ मेरे पथप्रदर्शक गोलोकवासी परम भगवदीय श्री द्वारकादास जी परीख को है। वे मेरी पीठ पर थे। उनकी प्रेरणा प्रोत्साहन एवं श्रम का मुझे बल था। अतः मेरे पद-संग्रह के लिए अज्ञात पाण्डुलिपियाँ एकत्र कर पाठ-भेद की दृष्टि से संशोधन में सहायता देकर साम्प्रदायिक दृष्टि से वर्षोत्सव एवं नित्यसेवा के क्रम से व्यवस्थित करके तथा विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखकर उसकी प्रामाणिकता में उन्होंने जो वृद्धि की है लेखक उसके लिए उनका आजीवन ऋणी है और रहेगा। खेद है आज इस प्रथम खण्ड के प्रकाशन के अवसर पर वे अचानक गोलोकवासी हो गए। फिर भी उन्होंने इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि को आद्योपान्त पढ़ा था और अपने बहुमूल्य सुझाव दिये थे। लेखक इसके लिए भी उनका आभारी है। वस्तुतः उनकी सदैव यह इच्छा रहती थी कि साहित्य की अज्ञात अमर निधियाँ यों ही बस्तों में न बँधी रह जाँय वे प्रकाश में आवें और समाज व्यक्ति उपयोगी कार्य करें। आज तो उनकी अनुपस्थिति के कारण 'मन मर गया और खेल बिखर गया'। उनमें अद्भुत क्षमता थी कि वे काम कराते थे और प्रामाणिकता के साथ। वे संप्रदाय के मर्मज्ञ थे। मातृभाषा गुजराती होते हुए भी ब्रजभाषा पर उनका अच्छा अधिकार था। हिन्दी की उन्होंने श्रेष्ठ सेवा की थी। उनके गोलोक वास से कोई-दस दिन पूर्व मैं उनके दर्शनार्थ गया था। बोले—"अब सब आपकूं काम करनो है। अष्टछापेतर २ १ कवीन की सूची बड़ी है इनको इतिहास तथा परिचय लिख डारियौ।" इस आदेश को मैंने सदैव की भाँति सहज रूप से ही लिया। क्या मालूम था मुझे कि यह उनका अंतिम आदेश था। भगवदिच्छा बलवती है शायद सुयोग आवे कि मैं उनकी अंतिम इच्छा पूरी कर सकूँ। सम्भव है तभी मैं उनसे उऋण हो सकूँ। इतना अवश्य है कि संप्रदाय में आज भी ब्रजभाषा का विपुल भंडार है जिसके लिए मैं हिन्दी के शोध-छात्रों का आवाहन करता हूँ।

हाँ तो प्रस्तुत ग्रन्थ सम्भवतः परीख जी की कृपा से यथाशक्ति साम्प्रदायिक मर्यादाओं से बहिर्भूत होने से बचा रहा है। कवि का अनुशीलन करते समय साम्प्रदायिक दृष्टि को आवश्यक रूप से सचेत रखा गया है जिसके बिना उसके साथ न्याय नहीं हो सकता था। अष्टछापी कवियों—विशेषकर सूर-परमानन्द जैसे सागरों पर सम्प्रदाय निरपेक्ष दृष्टि रखकर काम ही नहीं चल सकता। उसके बिना उनकी भावना पद्धति को हृदयंगम ही नहीं किया जा

सकता। दोनों ही महानुभाव आचार्य वल्लभ के प्रमुख शिष्यों में से थे जिन्हें आचार्य ने अपने श्रीमुख से श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध (निरोध-लीला) की अनुक्रमणिका श्रवण कराकर लीला-गान का आदेश दिया था। फलस्वरूप दोनों ही सागरों—सूर परमानन्द—का दृष्टिकोण सम्प्रदाय के आचार्यों—वल्लभ-विट्ठल—के ही अनुसार हो गया था। अतः इनके काव्य के मूल में संप्रदाय की भावना-पद्धति अन्तःसलिला सरस्वती की प्रच्छन्नधारा की भाँति बह रही है। संप्रदायानुकूल अपनी भावना-पद्धति एवं अप्रतिम काव्य-शक्ति के कारण सूर-परमानन्द अष्टछापी भक्तों में ही नहीं सारे ब्रज-भाषा-कृष्ण-भक्ति-कवियों में श्रेष्ठ हैं। इसीलिए लेखक ने कविवर परमानन्ददास जी के अनुशीलन को प्रस्तुत करते हुए पदे पदे वल्लभीय सिद्धान्तों और साम्प्रदायिक मर्यादाओं की चर्चा की है। प्रत्येक प्रसंग के मूल में सम्प्रदाय के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। परमानन्ददासजी को उद्धृत करते समय 'परमानन्दसागर' के अपने ही संस्करण को दृष्टि में रखा है।

सिद्धान्त-चर्चा भक्ति-पद्धति सेवा भावना के प्रसंगों में मुझसे त्रुटियाँ हुई होंगी। यद्यपि कुल क्रमागत परम्पराओं से मुझे पुष्टिमार्गीय संस्कारों का वरदान प्राप्त है और बचपन में अपने स्वर्गीय पूज्य पिता श्री पंडित माधवनाथजी शुक्ल से 'गुसांईपुर अनुक्रमणिका' भी प्रसाद रूप में मिली थी परन्तु 'तब मति छूटे अचेत' के अनुसार 'मारग की रीति' के तलस्पर्शी ज्ञान को अथवा रहस्य को हृदयंगम नहीं कर सका था। वह अभाव आज भी बना है परन्तु उनका अमोघ आशीर्वाद मेरे साथ सदैव रहा है। इस पुण्य अवसर पर उनका सादर स्मरण करता हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ की मूलप्रेरणा देने के लिए अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संस्कृत-हिन्दी विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डॉक्टर हरवंशलाल शर्मा का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने 'आत्मान सतत विद्धि' के अनुसार मुझे मेरी अभिरुचि के अनुकूल दिशा-ज्ञान दिया। उनके प्रति मैं अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इसके अनन्तर पूज्यपाद गोस्वामी श्री दीक्षितजी महाराज का मैं चिर ऋणी हूँ जिनके पावन चरणों में बैठकर मैंने समय समय पर अपनी शंकाओं का निराकरण करके समाधान प्राप्त किया है। इसके अतिरिक्त बन्धुवर छोटालाल जी कांकरोली डॉ पुणताम्बेकर भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना एवं सौभाग्यवती लक्ष्मी गार्डन घाटकोपर (बम्बई) बंधुवर श्री दुर्गवलीसिंह जी (शिक्षा विभाग मध्यप्रदेश) एवं मेरे अग्रज बन्धुवर पंडित मथुरानाथजी शुक्ल आदि महानुभावों का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे पुस्तकादि के प्राप्त करने और पाण्डुलिपियाँ देखने में सहायता दी।

अन्त में बन्धुवर पं० बद्रीप्रसाद जी शर्मा अध्यक्ष भारत प्रकाशन मंदिर सुभाष रोड अलीगढ़ का भी मैं आभार स्वीकार करता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में भरपूर रुचि ली है।

पुस्तकायन अलीगढ़
देव-प्रबोधिनी एकादशी
बुधवार
१ २

विनीत
गोवर्धननाथ शुक्ल

अष्टछाप के द्वितीय सागर

भक्त-प्रवर

प्राकट्य
(मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी सं १५५)

नित्यलीला प्रवेश
(भाद्रपद कृष्णा नवमी सं १६४१)

परमानन्द-स्तवन

उपासतामात्मविदः पुराणं परं पुमांसं निहितं गुहायाम्।
वयं यशोदा शिशु बाल-लीला कथा-सुधा सिन्धुषु लीलयामः॥

सूर सूर जस हृदय प्रकासत।
परमानन्द आनन्द बढ़ावत॥

× × ×

कुम्भनदास महारस कन्द।
प्रेम भरे निज परमानन्द॥

× × ×

सर्वोपरि दास परमानन्दरे।
गाया गुणनिधि बालमुकुन्दरे॥

हरिकेश

× × ×

पौगण्ड बाल कैशोर गोप लीला सब गाई।
अचरज कहा यह बात हुती पहिलौ जसु गाई॥
नैननि नीर प्रवाह रहत रोमाञ्च रैन दिन।
गद्गद गिरा उदार, स्याम-सोभा भीज्यौ तन॥
सारंग छाप ताकी भई, स्रवन सुनत आवेस देत।
ब्रज-बधू रीति कलजुग विषे परमानन्द भयौ प्रेमकेत॥

नाभादास

× × × ×

परमानन्द और सूर मिलगाई, सब ब्रज रीति।
भूलिजात विधि भजन की सुन गोपिन की प्रीति॥

ध्रुवदास

× × × ×

मेरे येई वेद व्यास।
श्री हरिवंश व्यास गदाधर भट परमानन्ददास।

नागरीदास

विषयानुक्रमणिका

विषय | पृष्ठ

प्रथम अध्याय—विषय प्रवेश | १ १६

अष्टछाप शब्द का इतिहास (२) अष्टछाप शब्द का अर्थ (३) अष्टछाप के कवियों का महत्व (४) साम्प्रदायिक भक्तों की दृष्टि में अष्टछापी कवि (७) अष्टछाप के कवियों का साहित्यिक महत्व (११) अष्टछापी कवियों का कलात्मक महत्व (१३) अष्टछाप के दूसरे सागर (१४)

द्वितीय अध्याय—जीवनवृत्त | १७-६८

उपलब्ध सामग्री का वर्गीकरण (१८) अन्तस्साक्ष्य बाह्यसाक्ष्य (१८) परमानन्दसागर के नाम का रहस्य (१९) कवि के अपने काव्य के आधार पर उसकी जीवन झाँकी (२) वार्ता साहित्य की महत्ता (२७) चौरासी वैष्णवन की वार्ता में परमानन्ददास का जीवन वृत्त (२९) भावप्रकाश (३३) अन्य साम्प्रदायिक ग्रन्थों में परमानन्ददासजी का वृत्त (३५) वल्लभ दिग्विजय (३५) संस्कृत-वार्ता-मणिमाला (३५) अष्टसखामृत (३६) बैठक चरित्र (३७) प्राकट्य सिद्धान्त (३७) सम्प्रदाय से सम्बन्धित वैष्णवाह्निक पद (३७) अष्टसखान की भावना (४) सम्प्रदायेतर अन्य ग्रन्थ (४२) भक्तमाल (४२) भक्तनामावली (४२) नागर समुच्चय (४३) व्यास वाणी (४३) भक्त नामावली (४४) निष्कर्ष (४५) आधुनिक सामग्री (४५) खोज रिपोर्ट (४६) हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ (४७) गार्सां द तासी (४७) शिवसिंह सरोज (४८) मिश्रबन्धु विनोद (४८) हिन्दी साहित्य का इतिहास (४९) हिन्दी भाषा साहित्य (५) हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास (५) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (५१) हिन्दी साहित्य की भूमिका (५१) आलोचनात्मक ग्रन्थ (५२) अष्टछाप प्राचीन वार्ता रहस्य (५२) अष्टछाप का ऐतिहासिक विवरण (५२) अष्टछाप परिचय (५२) अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (५२) अष्टछाप पदावली (५३) ब्रजमाधुरीसार (५३) पुष्टिमार्ग सेवा निबन्धादि (५४)

सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री के आधार पर कवि के जीवन वृत्त की रूप रेखा—

जाति (५५) नाम (५५) स्थान (५५) माता पिता तथा कुटुम्ब (५६) जन्म काल (५६) शैशव (५७) शिक्षा दीक्षा (५७) गृहत्याग (५८) गुरु सम्बन्धी उल्लेख (५८) विवाह (५८) सम्प्रदाय में दीक्षा एवं प्रवेश (६) ब्रज के लिये प्रस्थान (६१) गोकुलागमन (६१) गिरिराज पर पहुँचना (६२) अष्टछाप में स्थापना (६२) गोलोकवास (६२)

नवम अध्याय—कीर्तनकार परमानन्ददासजी ३१०—३२२

संगीत और भक्ति साधना (३११) पुष्टि सम्प्रदाय की संगीत साधना (३१३) नृत्य (३१४) सम्प्रदाय के विशिष्ट राग (३१४) कतिपय विधि-निषेध (३१५) परमानन्ददास जी की कीर्तन सेवा (३१६) वाद्यों की चर्चा (३२१)।

दशम अध्याय—परमानन्ददासजी और ब्रज संस्कृति ३२३–३३२

ब्रज संस्कार (३२४) ब्रज की वेष भूषा (३२६) धार्मिक परम्पराएं (३२६) पर्व और उत्सव (३२७) खान-पान भोजनादि (३२७) पर्दा प्रथा (३२८) राजस्व की चर्चा (३२८) मूर्ति पूजा एवं परिक्रमाविधि (३२९) परमानन्द सागर में उल्लिखित ब्रज के स्थान (३२९) परमानन्ददासजी की बहुज्ञता (३३१)

एकादश अध्याय— ३३३–३३७

परमानन्ददास जी एवं अष्टछाप के अन्य कवि।

श्रीहरि:

कविवर परमानन्द और उनका साहित्य

विषय प्रवेश

हिन्दी साहित्य के इतिहास में पूर्व मध्य युग जिसे 'भक्तिकाल' कहा जाता है उसे यदि हिन्दी साहित्य का 'स्वर्णयुग' कहें तो अनुचित न होगा। विषय की दृष्टि से इस युग में यद्यपि वैविध्य का अभाव था फिर भी निराकार साकार भक्ति को लेकर जिस उच्च कोटि के साहित्य की सृष्टि हुई वह अद्वितीय थी। साहचर्य और सौन्दर्य से उत्पन्न सगुण प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म और गहन से गहन भावानुभूतियों के समाधिमय क्षणों में जिस चिरंतन मानवीय रहस्य का उद्घाटन और उसकी वाणीमय अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य में जैसी इस युग में हुई वैसी न तो उससे पूर्व हो पाई थी और न आगे चलकर फिर संभव हो सकी। शृंगार भावना की अभिव्यक्ति को सगुण भक्ति के पवित्र प्राचीर में सुरक्षित रखकर उसे जो चिरन्तनता इन भक्त कवियों ने दी वैसी अन्य किसी मानवीय भावना को कोई कवि या साहित्यकार आगे चलकर न दे पाया।

सगुण भक्ति धारा को जीवन-दान देकर पुष्ट प्रवहमान बनाने का श्रेय यों तो सभी भक्त कवियों को है किन्तु पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों को विशेष रूप से है। क्योंकि उनकी एकान्त अनुपम मधुर भावना ने जिस सरस साहित्य का सर्जन किया वह विश्व साहित्य में अद्वितीय है। इन कृष्णोपासक पुष्टिमार्गीय कवियों में भी अष्टछाप के कवियों का स्थान तो अत्यन्त ऊँचा है

आनन्दकन्द लीला पुरुषोत्तम भगवान् कृष्णचन्द्र की 'कीर्तन सेवा' में इन आठों महानुभावों का भाव-सागर आठों याम तरंगायित रहता था। अपनी भावना के दिव्योन्मादमय क्षणों में ये लोग जिन सरस संगीत-मय पदों की सृष्टि करते थे मानों भावनिधि के रत्न अनुपम थे। इन 'अष्टछापकार' महानुभावों से ब्रज-साहित्य इतना श्री-सम्पन्न हुआ कि अन्य भारतीय भाषाओं का साहित्य कदाचित् ही उतना वैभवशाली हुआ हो। वास्तव में विक्रम की सोलहवीं सत्रहवीं शताब्दी में हिन्दी साहित्य की इतनी श्रीवृद्धि हुई कि उसका यथावत् विवरण प्रस्तुत करना कठिन है। अष्टछापकार इन आठ महात्माओं के पारस्परिक साहित्यिक तथा सांप्रदायिक महत्त्व को समझकर 'अष्टछाप' की स्थापना तो आगे चलकर संवत् १६ २ में की गई परन्तु इनकी काव्य धारा ४ ५ वर्ष पूर्व से ही प्रारम्भ हो गई थी। अष्टछाप के प्रथम दो सागर तो संवत् १५५०-५५ में ही भगवान् का लीला-गुणगान करने लगे थे। इस प्रकार लगभग संवत् १५५५ से संवत् १६४२ तक का ७ वर्षों का युग जिस दिव्य भाव समारोह का दर्शन कर सका उसे एक ऐसा चमत्कार ही समझना चाहिए। क्योंकि न तो उससे पूर्व ही और न उसके पश्चात् ऐसी किसी सुसंगठित काव्य धारा के

१. [illegible]

दर्शन होते हैं जिसमें भक्ति की तन्मयता, भावों की विभोरता, शृंगार भावना की दृढ़ता, संगीत की सरसता, अभिव्यक्ति की गम्भीरता के साथ-साथ भगवान् की कीर्तन सेवा की निश्छल मनोवृत्ति मिलती हो। इस काल के साहित्य में जीवन का एक निराला दर्शन मिलता है और भगवच्चरणारविन्द में उसका पूर्ण विनियोग भी। 'प्राकृत-जन गान' की दुर्गंध से दूर भगवल्लीला की परम माधुरी से पूर्ण इन व्रजभाषा के पदों में जनमन को पावन और तन्मय कर देने की कितनी प्रबल सामर्थ्य थी इसका सहज अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि तत्कालीन सम्प्रदाय के बड़े-बड़े आचार्य तथा ज्योतिष संस्कृत के उद्भट विद्वान् भी इन लीलापरक पदों पर मुग्ध होकर आनन्द विभोर हो जाते थे और देहानुसंधान खो बैठते थे।

अष्टछाप शब्द का इतिहास

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के प्रवर्तक एवं पुष्टि सम्प्रदाय के संस्थापक महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य ने स्वसिद्धान्त एवं भक्ति प्रचार के लिये भारत पर्यटन किया था। उस समय वे व्रज भूमि में भी पधारे और अनेक सेवकों और शिष्यों को दीक्षा दी थी। उन्होंने जीवों को कल्याण-मार्ग का उपदेश देते हुए भगवत्सेवा-मार्ग का विधान प्रस्तुत किया। आचार्य जी ने व्रज में स्थित गोवर्धन-पर्वत से प्रकट हुए श्री गोवर्धननाथ जी के 'स्वयंभू स्वरूप'[1] को परम सेव्य बतलाकर वहाँ विधि-विधान से सेवा का प्रवाह किया।[2] और अपने शिष्यों में प्रमुख सूरदास, कुंभनदास, परमानन्ददास और कृष्णदास इन चार भक्त कीर्तनकारों को श्रीनाथ जी के समक्ष कीर्तन सेवा सौंपी। संवत् १५८७ में आचार्य जी के तिरोधान अथवा नित्य-लीला प्रवेश के उपरान्त और उनके द्वितीय पुत्र गुसाईं विट्ठलनाथजी के संवत् १५९९ में आचार्य गद्दी पर विराजमान होने पर श्रीनाथजी की सेवा में और भी अधिक सुव्यवस्था हुई। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की भगवत्सेवा में अत्यधिक रुचि थी। अतः वे उसे अधिकाधिक सुव्यवस्थित करने के प्रयत्न में अहर्निश व्यस्त रहते थे। उनके विषय में सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है—

सेवा की यह अद्भुत रीत।
श्री विट्ठलेश सौं राखे प्रीत॥

अत अष्टयाम-सेवा की साम्प्रदायिक अष्ट-समय-विधि—मंगला, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन-भोग, संध्या-आरती और शयन की सुव्यवस्था हो जाने पर आठों पहर की सेवा-भावना से अष्टयाम के विभिन्न अवसरों पर आठ कीर्तनकारों की व्यवस्था भी की गई। अपने पिता के चार प्रमुख शिष्यों को लेकर और चार अपने प्रधान शिष्यों को लेकर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने संवत् १६ २ में अष्टछाप की स्थापना की। ये 'अष्टछाप' के आठ कवि महानुभाव 'अष्ट कीर्तन कारे' के नाम से सम्प्रदाय में प्रसिद्ध हुए। स्वयं गुसाईं विट्ठलनाथजी

---

१ सम्प्रदाय में स्वयं मूर्ति 'स्वरूप' कही जाती है

२ श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता पृष्ठ ११

३ सेवा [illegible] [परिशिष्ट] पृष्ठ [illegible]

ने इनके लिए 'अष्टछाप' शब्द का व्यवहार नहीं किया था। 'अष्ट' शब्द को लेकर सम्प्रदाय में अष्टसखा' 'अष्ट कीर्तनकार' अथवा अष्टकाव्यकारें' आदि शब्द प्रचलित थे। अष्ट काव्यकारें' शब्द प्रामाणिक रूप से समभग संवत् १७६९ तक चलता रहा।[१] साथ ही 'अष्टछाप' शब्द भी प्रचलित हो गया था[२]। सर्व प्रथम अष्टछाप' शब्द का प्रयोग वार्ता की संवत् १६९७ की प्रति में उपलब्ध होता है। उसमे एक स्थान पर लिखा मिलता है 'अष्टछापी चार सेवकन की वार्ता'[३]। इससेपूर्व अष्ट छाप' शब्द का लिखित प्रयोग संभवत उपलब्ध नहीं होता। इसी कारण सम्प्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान् श्री द्वारकादास जी परीख ने निष्कर्ष निकाला था कि इस शब्द को सर्व प्रथम लिखित रूप प्रभु चरण गोकुलनाथ जी ने दिया। हाँ अष्ट' शब्द अष्टयाम अष्टसखा आदि के लिए प्रयुक्त होता था। अत यह निश्चय है कि सर्व प्रथम प्रामाणिक रूप से 'अष्टछाप' शब्द सम्प्रदाय द्वारा ही प्रचलित किया गया है और गुसाईं विट्ठलनाथ जी के समय से ही चलता आ रहा है।

अष्टछाप शब्द का अर्थ

वस्तुत 'छाप' शब्द का अर्थ है—मुद्रा मुँदरी मुद्रांकित करना ठप्पा (सील) से दबाकर चिह्नित करना आदि। ये कीर्तनकार आठ महानुभाव किस छाप या मुद्रा से अंकित किये गये और तदुपरान्त किस प्रकार सम्प्रदाय मे व प्रतिष्ठा में आए या मान्य किये गये यह एक रहस्य है। वस्तुत यह 'छाप' साम्प्रदायिक कीर्तन-सेवा और भावना-पद्धति की छाप थी। 'अष्टछाप' के संस्थापक प्रभु चरण गोस्वामी विट्ठलनाथ जी स्वयं उच्च कोटि के संगीतज्ञ थे और वीणा बजाने में निपुण थे[४] अपने सेव्यस्वरूप श्री नवनीत प्रिय जी को प्रात वीणा से जगाने मे आप को अतिशय सुख होता था। इनके अतिरिक्त समय-समय पर विविध राग-रागिनियो के द्वारा सेव-पद्धति से कीर्तन का विधान आपने भगवत्प्रीत्यर्थ ही किया था। अत सेवा-भावना के अनुकूल भारतीय संगीत की शुद्ध सास्कृतिक शास्त्रीय पद्धति से भगवान् की लीला का गान पुष्टिमार्गीय मंदिरो म कीर्तन के रूप में निरंतर चलता रहे इस हेतु आपने आठो प्रहर की कीर्तन सेवा के लिये 'आठ कीर्तनकारें' महानुभावों को लेकर साम्प्रदायिक पद्धति पर सेवा भावना की छाप लगाकर 'अष्टछाप' की स्थापना की। ये आठो महानुभाव कोरे संगीतज्ञ ही नहीं थे अपितु उच्च कोटि के भगवल्लीलाविज्ञ एवं काव्य-स्रष्टा भी थे। आठो ही महानुभावों ने अपना-अपना विशाल पद-साहित्य अपने-अपने नामों की छाप से मुद्रित भी किया है।

स्वयं गोस्वामी विट्ठलनाथ जी मे भी उच्चकोटि की काव्य प्रतिभा विद्यमान थी। आचार्यत्व प्राप्त करने के पूर्व वे ब्रज भाषा में 'रसिकादि' 'सहज प्रीति' आदि उपनामो से काव्य रचना किया करते थे।[५] और आचार्यत्व के प्राप्त होने के उपरान्त भाषा' मे रचना न करके संस्कृत म काव्य रचना करते थे। तात्पर्य यह है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी

[illegible]

१ [illegible] मेरो [illegible] —[illegible]।

२ [illegible] वार्ता संवत् १६९७ की प्रति

[illegible]

विट्ठलेश [illegible] पृष्ठ ३।

५ वही पृष्ठ ४।

उच्च कोटि के साहित्यमर्मज्ञ एवं संगीतज्ञ थे। अतः अष्टछाप की स्थापना मे उनका उद्देश्य स्पष्ट रूप से साहित्य और संगीत के सुन्दर समन्वय के साथ कीर्तन-भक्ति की सुरसरि से सम्पूर्ण भरत खण्ड को आप्लावित करना था। यह सहज अनुमान करने की बात है कि अष्टछापी कवियो के जिस उच्च कोटि के साहित्य और संगीत की पीयूष धारा के माव-माधुर्य की थाह अतीत से लेकर आजतक भारतीय जन-मन नही पा सका है, उसका आद्य संस्थापक कितना भगवल्लीला रसिक काव्य मर्मज्ञ एवं संगीत शिरोमणि रहा होगा। वस्तुतः कवित्त-रस और सरस राग के रत्नार्णव मे अवगाहन करने वाले गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ललित कलाओ की परख के लिये कितनी पैनी दृष्टि वाले थे यह तो अष्टछापी काव्य और संगीत से अल्पस्प परिचित व्यक्ति भी जान सकता है। साथ ही अष्टछाप के महानुभावो का सम्प्रदाय मे कितना महत्त्वपूर्ण और सम्मान्य स्थान बन गया था कि उन्ही के समय मे उनके कीर्तनो और पदो को वर्षोत्सवो मे तथा नित्य-सेवा मे अनिवार्य स्थान मिल गया था और पूरी-पूरी लोकप्रियता प्राप्त हो गई थी। अष्टछापी भक्त की समादरणीयता और उसके गौरव का इससे भी अनुमान हो सकता है कि सूर जैसे उच्च कोटि के भक्त ने 'करी गुसाई' सदी आठ सखा छाप'[1] कह कर प्रभुचरण गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की थी।

अष्टछाप के कवियों का महत्त्व

अष्टछाप के ये कविरत्न जिन्हे भगवान् के प्रति उनकी सख्यासक्ति के कारण 'अष्टसखा' भी कहा जाता रहा है मुख्य रूप से सगुणोपासक भक्त संगीतज्ञ कीर्तनकार एवं कवि थे। श्रीनाथजी की कीर्तन-सेवा ही इनका प्रियतम कार्य था। इस कीर्तन-संगीत का विषय हरिलीला ही था। भौतिक जीवन की संकुचित नश्वर परिधि से ऊपर उठकर भगवल्लीला गान को अपना एकमात्र लक्ष्य मानते हुए प्रभु प्रेम की शाश्वत निश्चित भावना के साथ जिस दिव्य भाव-लोक मे ये कवि महानुभाव विचरण किया करते थे वह केवल अनुभवगम्य है, उसे शब्दो मे व्यक्त नही किया जा सकता। उसके लिये तर्क की अपेक्षा श्रद्धा और बुद्धि की अपेक्षा हृदय की अधिक आवश्यकता है।

> अचिन्त्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्

अतः इन भक्त कवियो का एकमात्र पुनीत कर्त्तव्य यही था कि वे नित्य और नैमित्तिक अवसरो पर श्री गिरिराज पर स्थित श्री गोवर्द्धननाथ जी के मंदिर मे भगवत्स्वरूप के सम्मुख कीर्तन-सेवा किया करे। आगे चलकर पुष्टिमार्गीय सेवा-मर्यादा-प्रतिष्ठित हो जाने पर देशव्यापी सभी मंदिरो मे यह कीर्तन-सेवा-पद्धति अपनाई गई और इस प्रकार सभी सखाओ की रचना उनकी भावानुभूति-संगीत-साहित्य तथा कीर्तन सेवा-पद्धति—सभी दृष्टि से देश भर के साम्प्रदायिक मंदिरो मे एक प्रकार की एकरूपता (Uniformity) प्रकाश हो गई। इस दृष्टि से गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का यह कार्य कितना महत्त्वपूर्ण था इसका अनुमान सहज किया जा सकता है। वास्तव मे हम इसे धर्म साहित्य और कला का एक त्रिवेणी-संगम मानें जिसने आर्यावर्त मे पग-पग पर प्रमाण की पुष्टि कर दी थी—तो अनुचित न होगा। इसी तथ्य

१ वार्ता साहित्य के मर्मज्ञ श्री द्वारकादास परीख इस पद को प्रामाणिक नही मानते। (देखिए

इतिहासकारो और आलोचको ने कुछ अनुमान और कुछ अन्तस्साक्ष्य—बाह्यसाक्ष्य के आधार पर इनकी जीवनियो के सबध मे कुछ मान्यताएँ निर्धारित की है किन्तु उनको अतिम रूप से सत्य नही कहा जा सकता क्योकि नवीन तथ्यो के प्रकाश मे उनमे परिवर्तन की पर्याप्त गुंजाइश बराबर बनी हुई है। फिर भी किसी भी कवि या लेखक का जीवन चरित्र लिखने के लिए अतस्साक्ष्य और बाह्यसाक्ष्य के रूप मे उपलब्ध सामग्री के विश्लेषण की परिपाटी सी हो गई है। अत अष्टछाप के इन भक्त कवियो का जीवन चरित्र लिखने के लिये प्राय निम्न बातो पर विचार किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है—

१—अन्तस्साक्ष्य के अन्तर्गत कवि का काव्य उसके पद तथा पदो मे प्रसगवश की गई यत्र-तत्र आत्म-चर्चाएँ।

२—बाह्यसाक्ष्य के अन्तर्गत— (अ) साम्प्रदायिक ग्रन्थ यथा चरित्र-साहित्य वार्ता साहित्य आदि। इतिहास समसामयिक लेखको की कृतियाँ समकालीन अन्य ग्रन्थ एव अन्य राजकीय प्रमाण आदि।

उपर्युक्त साक्ष्यो के आधार ग्रहण करने के पूर्व अष्टछापी कवियो के सबध मे दो दृष्टियो पर भी ध्यान रखना होगा —

१—अष्टछाप सबन्धिनी साम्प्रदायिक-भावना।

२—सम्प्रदायेतर साहित्य-रसिको की भावना।

साम्प्रदायिक वैष्णवों की दृष्टि में अष्टछापी कवि

महाप्रभु वल्लभाचार्य के चौरासी वैष्णव सेवकों की वार्ता तथा गुसाईं विट्ठलनाथ जी के अपने पिता से ठीक तिगुने-दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता में इन आठों भक्त कवियों का वृत्तान्त मिल जाता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के उपस्थिति-काल में इन वार्ता पुस्तकों का अस्तित्व मौखिक रूप में ही था। क्योंकि सम्प्रदाय में महाप्रभु वल्लभाचार्य को पुष्टि मार्गीय आदर्श सेवकों की वार्ताओं का आद्य-प्रणेता कहा गया है।[1] और उन प्रसंगों के प्रथम वक्ता उनके प्रथम सेवक (शिष्य) श्री दामोदरदास हरसानी बतलाये गये हैं। इन प्रसंगों का विकास करने वाले श्री विट्ठलनाथ जी (गुसाईं जी) हैं। आगे चल कर उन वार्ताओं के प्रचारक श्री गोवर्धनदास थे।[2] वार्ताओं के उन प्रसंगों को लेखबद्ध करने वाले श्रीकृष्ण भट्ट[3] एवं चौरासी और दो सौ बावन संख्याओं में वर्गीकृत करके उन वार्ताओं को विशद रूप में प्रस्तुत करने वाले श्री गोकुलनाथ जी थे।[4] इन समग्र वार्ताओं के टीकाकार अर्थात् भावप्रकाश के लेखक श्री हरिराय जी हैं। ये गोस्वामी गोविन्दराय जी के पौत्र कल्याणराय जी के पुत्र एवं प्रभुचरण गोकुलनाथ जी के भतीजे एवं शिष्य थे। श्री हरिराय ने अपने भावप्रकाश में वार्ता साहित्य के निगूढ़ तत्त्वों का मंथन और प्रकाशन करके वार्ता को एक लोकोत्तरता प्रदान की था। उनका भाव प्रकाश रूप टिप्पण साम्प्रदायिक वस्तु होने के कारण वैष्णव समाज के नित्य स्वाध्याय में समाविष्ट होने वाली सामग्री बन गया है अतः चौरासी एवं दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता और उनकी चर्चा पुष्टिमार्गीय वैष्णवों के नित्य के स्वाध्याय या मनन चिन्तन और आचरण की वस्तु बन गई है। इनमें भी अष्ट सखाओं का चरित तो अत्यन्त ही आचरणीय पठनीय एवं मननीय है। अष्टसखा सम्प्रदाय की मान्यता में कोरे कवि या कीर्तनकार ही नहीं थे भगवान् गोवर्धनधर की नित्य लीला के नित्य सहचर भी हैं। ये समस्त सखा गिरिराज-गोवर्धन के अष्टद्वारों के अधिपति और भगवान की निकुंज लीला के सहचर हैं।

ब्रज में स्थित गोवर्धन पर्वत अथवा श्री गिरिराज की बड़ी महिमा है। सात मील लम्बे ब्रजभूमि के मानदण्ड रूप इस पर्वत को पुराणों में बड़ा गौरव दिया गया है। इन्हें गिरीन्द्र अथवा गिरिराज कहकर मोक्ष का साधन रूप माना गया है।
गर्ग संहिता में आया है,—

> समुत्थितोऽसौ हरि वक्षसो गिरिर्गोवर्धनो नाम गिरीन्द्र राजराट्।
>
> समागतो ह्यत्र पुलस्त्य तेजसा यद्दर्शनाज्जन्म पुनर्न विद्यते॥[5]

१ वार्ता साहित्य मीमांसा लेखक श्री द्वारिकादास परीख पृ १।
२ २५२ वैष्णवन की वार्ता (तीन जन्म की भावना) श्री द्वारिकादास परीख, पृ १ २ १ १।
३ २५२ वैष्णवन की वार्ता प्रस्तावना पृ २२ शुद्धाद्वैत एकेडमी काँकरोली।
४ गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र देखो विशेष परिशिष्ट।
५ गर्ग संहिता गिरिराज खंड अ १ श्लोक ११

अष्ट प्रहर के साथी बनलीला के सखा हैं जो श्रीगिरिराज के नित्य-निकुञ्ज के आठ द्वारों पर स्थित रहकर भगवान् की नित्य सेवा में तत्पर रहते हैं। इस लौकिक लीला में वे नित्य निकुञ्ज के आठों द्वारों पर भौतिक शरीर से उपस्थित रहते हैं और इस लौकिक लीला के अनन्तर में सखा गण अपने दिव्य देह (लीलोपयोगी) से अलौकिक रूप में नित्य लीला में स्थित रहते हैं।

नित्य लीला में स्थित भगवान् के ग्यारह सखाओं की चर्चा हमें श्रीमद्भागवत में मिल जाती है। श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध में श्रीकृष्ण के साथ यत्र-तत्र ग्वाल बालों की चर्चा हुई है। उनकी वनलीला में सखाओं का अनिवार्य साहचर्य सर्वत्र दृष्टिगत होता है।[1] इनके नामों का उल्लेख एक दो स्थलों पर आया भी है। उदाहरण के लिये कुछ मुख्य सखा ये हैं.—

श्रीदामा नाम गोपालो राम केशवयो सखा ।
सुबल स्तोक कृष्णाद्या गोपा प्रेम्णाबमनुवन् ॥ भाग १ । १५। २

यहाँ 'स्तोक कृष्णाद्या' कहकर कुछ अन्य सखाओं की ओर भी संकेत है। श्रीमद् भागवत के प्रथम स्कन्ध के २२ वें अध्याय में गोपी-वस्त्र-हरण प्रसंग के उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीमुख से कुछ प्रमुख सखाओं के नाम गिना दिये गये हैं। सुरम्य व्रज-वनस्थली के वृक्षों के सौन्दर्य की ओर लक्ष्य कराते हुए श्रीकृष्ण अपने सखाओं में से प्रत्येक का नाम ले लेकर पुकारते हैं —

हे स्तोक कृष्ण ! हे अंशो ! श्रीदामन् सुबलार्जुन ।
विशालर्षभ ! तेजस्विन् ! देवप्रस्थ ! वरूथप ॥

पश्यतान् महाभागान् परार्थैकान्तजीवितान् ॥ श्रीमद्भागवत १ । २२। ११

उपर्युक्त श्लोक में दस सखाओं के नाम आए हैं। श्री बलरामजी सहित श्रीकृष्ण के ग्यारह सखा होते हैं। इन्हीं सखाओं की चर्चा गर्गसंहिता में धेनुकासुर मोक्ष-प्रसंग में भी आई है.—

श्रीदामा दण्ड बलेन सुबलो मुष्टिना तथा ।
स्तोकचापेन त दैत्य सताड महाबलम् ॥
क्षेपणेनार्जुनोऽर्धुदं दैत्य सतिमातरम् ।
विशालर्षभ वेण्वाद्यु पादेन स्वबलेन च ।
तेजस्वी हर्यचर्मेण देवप्रस्थस्तपेटकैः ॥
वरूथप लकुटेन सन्ताड महासुरम् ॥
अथ कृष्णोऽपि तं नीत्वा हस्ताभ्यां धेनुकासुरम् ॥[2]

ये दस भगवान् श्रीकृष्ण की बालनीला में नित्य सखा हैं जिनके नाम बिना किसी हेर-फेर या परिवर्तन के श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त स्कन्दपुराण गर्गसंहिता आदि में भी मिलते हैं।

---

१ श्रीमद्भागवत १ ०

२ गर्ग संहिता वृन्दावन खण्ड अध्याय ११ श्लोक १३ १४ १५ १६

केवल मन बहलाव के लिए होता है। भारतीय-जन-जीवन की प्रत्येक परम्परा में अध्यात्म दृष्टि का अंकुश सर्वोपरि रहा है अतः भगवत्भक्ति शून्य काव्य कभी समादृत नहीं हुआ। आदि कवि का शोक जब श्लोकत्व को प्राप्त हुआ तब देवर्षि नारद से उन्हें राम-गुण-गान की ही प्रेरणा मिली थी। अतः कोरा काव्य जिसमें भगवल्लीला की चर्चा न हो सरस्वती को श्रम दायक ही होता है। इसी कारण अष्टछाप के कवियों के साहित्य पर विचार करते समय सम्प्रदाय ने वस्तु पर दृष्टि रखी थी शिल्प पर नहीं। शिल्प तो अनायास ही भव्य बनता चला गया उन्होंने वर्ण्य को देखा वर्णन को नहीं। वे सुरगिरा अथवा नरगिरा के पचड़े में नहीं पड़े। उन्हें स्वाद से तात्पर्य था। डाँडी अथवा पात्र स्वर्ण का है अथवा मृत्तिका का इससे उन्हें कोई प्रयोजन नहीं था फिर भी इन आठ महानुभावों का साहित्यिक महत्त्व अनुपम है। सूर तो साहित्याकाश के साक्षात् सूर्य ही हैं। जिनके जोड़ का दूसरा कवि विश्व कवियों में कदाचित् ही मिले। सम्प्रदाय में वे 'सागर' कहे जाते हैं। सूर साक्षात् 'लीलासागर' हैं। उनके हृदय सागर में अहर्निशभगवल्लीला का सागर उद्वेलित रहता था उसके परिणाम स्वरूप जो पद सीकर अनायास उनके मुख से निकल पड़ते थे। वही आज सहस्रों की संख्या में हिन्दी साहित्य की निधि बने हुए हैं। सूरदास की काव्य प्रतिभा अपने क्षेत्र में विश्व साहित्य में बेजोड़ सिद्ध हो चुकी है। उनके साहित्यिक महत्त्व से अभिभूत होकर डा० वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं —

'शुद्ध काव्य के आनन्द की दृष्टि से सूरदास की रचना समस्त राष्ट्र की निधि है।'[1]

इसी प्रकार सूर साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् डा० हरबंशलाल कहते हैं —

महाकवि सूरदास के साहित्य महोदधि का मंथन वास्तव में अत्यन्त दुष्कर कार्य है। विभिन्न युगों के अनेक स्तरों के बीच से मन्द-मन्द किन्तु अव्याहत गति से बहती हुई अनेक दिशाओं से उल्टी सीधी बहकर आने वाली विविध विचार धाराओं को आत्मसात् करती हुई भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की सिद्धान्त सार-सुधा से प्राणियों के अन्तःकरण को तृप्त करती हुई भारतीय भावना की मन्दाकिनी ने इस सागर को ऐसा लबालब भर दिया है कि उसमें मग्न हो कर भी थाह तक पहुँचना सरल कार्य नहीं है।[2]

इसमें संदेह नहीं कि भारतीय कवियों में सूर सम्राट् हैं और गीत-परम्परा के आदि प्रणेता हैं। उनके समसामयिक अन्य अष्टछापी परमानन्ददासादि कविगण उनकी लीला सुरसरि में प्रवाह को विस्तार प्रदान करने वाले पवित्र स्रोत हैं। सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों से पूर्व ब्रजभाषा का न तो व्यवस्थित स्वरूप मिलता है न किसी लब्धप्रतिष्ठ कवि का नाम। नामदेव आदि संतों की वाणी में जो ब्रजभाषा मिलती है वह शुद्ध और प्रवाहमयी ब्रजभाषा नहीं कही जा सकती। अतः डा० दीनदयालु गुप्त के अनुसार अष्टछाप का प्रथम कवि वर्ग ही ब्रज भाषा का आदि वर्ग है और उसमें भी मूर्धन्य सूर हैं।[3]

---

१ अष्टछाप भूमिका डॉ० वा० श० अग्रवाल

२ सूर जयंती समारोह के अवसर पर दिया गया अभिभाषण-पृ० ७।

३ अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय भाग १-पृष्ठ २१।

भाषा की दृष्टि से तो अष्टछाप कवियों का महत्व बढ़ा-चढ़ा है ही, भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भी अष्टछाप कवि-मंडल अद्वितीय है। वैष्णव भक्तों का भाव-जगत् अपनी गहनता, अनुभूतिजन्य सरसता एवं स्वच्छता के लिये सदैव स्तुत्य रहा है। उनमें भी ब्रजभाषा के अष्टछापी महानुभावों के भाव-जगत् की कोमलता, रमणीयता और तन्मयता एक दिव्य लोक की सृष्टि करने वाली होती है, जिसमें रमण करने वाला ही उसके आनन्द को जान सकता है।

इसी कारण सम्प्रदाय के आचार्य गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने यह व्यवस्था की थी कि काव्य, संगीत और भक्ति-भावना की त्रिवेणी काश्मीर से कन्याकुमारी तक के पुष्टिमार्गीय मंदिरों में अबाध गति से बहती रहे। और उसी के परिणाम स्वरूप आज शताब्दियों बाद भी साहित्य, संगीत और भक्ति-भावना की त्रिपथगा न केवल साम्प्रदायिक मंदिरों को ही पुनीत कर रही है अपितु आर्य भारत के निखिल जन मन को पावन करती आ रही है।

वास्तव में पुष्टिसम्प्रदाय के इन भक्तों ने ब्रज भाषा के गद्य-पद्य साहित्य को अत्यन्त ही वैभवशाली बनाया है। वार्तासाहित्य के रूप में ब्रज भाषा का गद्य भी प्रचुर मात्रा में है। इस प्रकार इन अष्टछापी महानुभावों का साहित्यिक महत्व साम्प्रदायिक महत्व से कहीं बढ़ा चढ़ा है।

अष्टछापी कवियों का कलात्मक महत्व—

अष्टछाप के भक्त कवि जहाँ सम्प्रदायानुयायियों में सखा भाव के कारण पूजित हैं और साहित्य क्षेत्र में मुख्य रूप कवि शिरोमणि, रसिक और भावुक रूप में मान्य हैं वहाँ संगीत के क्षेत्र में महान् कलाकार के रूप में माने गये हैं। भारतीय संगीत-साधना अपने विकसिततम रूप में ब्रह्म का साक्षात्कार कराने वाली मानी गई।[1] अष्टछाप के कवियों ने अपनी संगीत-साधना के सहारे और कीर्तन-सेवा के माध्यम से रसिक मूर्धन्य लीलासागर श्री गोवर्धन नाथजी के समक्ष जिस देव-दुर्लभ नाद-माधुर्य की सृष्टि की उससे भारतीय संगीतज्ञ समाज सुपरिचित है। आज का हिन्दी-समाज जब अष्टछाप के काव्य वैभव से सुपरिचित भी नहीं हुआ था उससे पूर्व से हमारा संगीतज्ञसमाज अष्टछापी कवियों के पद-माधुर्यसिंधु में चिरकाल से अवगाहन करता चला आ रहा था। भारतीय संगीत की अमर एवं अपार थाती उत्तरी शैली जिसे देशी संगीत कहा जाता है—के विकास और वृद्धि का श्रेय इन्हीं अष्टछापी को है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने संवत् १६ २ में जब गिरिराज पर श्री गोवर्धननाथ जी की

१—गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः ।
गोपीपतिरनन्तोऽपि वंशध्वनिवशं गतः ॥
सामगीतिरतो ब्रह्मा वीणासक्ता सरस्वती ।
किमन्ये यक्षगन्धर्वदेवदानवमानवाः ॥ संगीत रत्नाकर प्रथम प्रकरण श्लोक ११ ॥
नादोपासनया देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
भवन्त्युपासिता नूनं यस्मादेते तदात्मकाः ॥ — वही नाद प्रकरण श्लोक २
पूजा कोटि गुणं ध्यानं ध्यानात्कोटि गुणं जपः
जपात्कोटि गुणं गानं गानात्परतरं नहि ॥
नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥ प. पु. उ. ख.

सेवा का महत्व किया और उसकी सुव्यवस्था की तो उसके तीन अंग निर्धारित किए। भोग राग और शृंगार। उसमें राग विभाग सबसे सुव्यवस्थित एवं सुसम्पन्न था। नित्य और नैमित्तिक सेवा का कार्य-क्रम कीर्तन संगीत के साथ गुम्फित होने के कारण दिन के प्रत्येक याम के भगवल्लीला के कीर्तन पर शास्त्रीय संगीत के साथ चलते थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी और गुसाईं जी के समय में इन कीर्तनकारों को प्रत्यक्ष में अथवा अपने भावलोक में साक्षात् प्रभुदर्शन अथवा भगवदनुभाव द्वारा भगवदनुभव होने के आधार पर अथवा कीर्तन तत्काल रचकर वे लोग प्रभु के समक्ष प्रस्तुत कर देते थे। इन प्रभु-सखाओं के उच्च कोटि के कीर्तन को जिस भगवद् विग्रह ने प्रत्यक्ष श्रवण किया था आगे चल कर परवर्ती कीर्तनकार वैसी कीर्तन सेवा करने में असमर्थ रहे अतः उसी भावना से यद्यपि पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में अर्वाचीन भावकों के कीर्तन मान्य नहीं निवेदित किये जाते। पुष्टिमार्ग की यह अपनी मर्यादा है। प्रभु का इन अष्ट सखाओं का ही कीर्तन अंगीकार है। वैसी भावमय अन्य कीर्तन परम्परा न होने से अष्टछापी सखाओं का भाव प्रभाव ही आज तक चलता आ रहा है। संगीत कला को सम्प्रदाय में "किया कला" नाम दिया गया है। संगीत कला की इतनी लम्बी परम्परा किसी देश में शायद ही चली हो। अन्तर्लीनता के उपरान्त भी आज सूरदास परमानन्ददासादि अष्टछापी महानुभाव निर्मुक्त रूप में (भक्ति, साहित्य और संगीत के प्रवर्तक के रूप में) अपने यश शरीर से विद्यमान हैं और अपनी इस क्रिया के कारण युग-युग तक स्मरणीय रहेंगे।

अष्टछाप के दूसरे सागर—

अष्टछाप कवियों के साम्प्रदायिक साहित्यिक और कलात्मक-त्रिविध महत्त्वों पर विचार कर लेने के उपरान्त सम्प्रदाय की मान्यता साहित्यिक महत्ता और कला सौष्ठव की दृष्टि से हम सूर के उपरान्त सम्प्रदाय के दूसरे सागर परमानन्ददास जी को लेते हैं। महात्मा सूरदास को लेकर हिन्दी साहित्य में पर्याप्त चर्चा हुई है और उनके महत्त्व को प्रतिपादित करने में अनेक विद्वानों ने स्तुत्य श्रम भी किया है। उनकी जीवनी और उसके विवादास्पद तथ्यों को लेकर पर्याप्त आन्दोलन हुआ है और श्रमपूर्ण शोध के उपरान्त विद्वत्समाज ने अनेक विश्वसनीय तथ्य निकाले हैं जो बहुत अंशों में मान्य हो चले हैं जैसे सूर के जन्म स्थान जन्म संवत्, जन्मान्धता उनके ग्रन्थों में आई हुई पद संख्या तथा उनके अवसान संवत् आदि प्रसंगों पर विद्वानों ने पर्याप्त शोध की है और तथ्यपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। परन्तु उनके उपरान्त सम्प्रदाय के दूसरे सागर श्री परमानन्ददास अभी तक अविज्ञात जिज्ञासा से उपेक्षित से रहे हैं। यद्यपि अष्टछाप पर निकलने वाले ग्रन्थों में उनकी चर्चा हुई है पर नहीं के बराबर। यह तो निर्विवाद है कि कविवर परमानन्ददास जी अष्टछापी कवियों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस कारण अष्टछाप के कवियों की जहाँ भी चर्चा हुई वहाँ उनका प्रसंग आना स्वाभाविक था परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक शैली से उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन नहीं हुआ है। इसका क्या कारण रहा है इसकी चर्चा न करके यहाँ केवल इतना ही संकेत करना पर्याप्त है कि सूर

परमानन्द दास जी को सम्प्रदाय में सूर के ही समान 'सागर' पुकारा गया है। इन दोनों महानुभावों को इसीलिए 'सागर' कही गई है क्योंकि दोनों ही महानुभावों का हृदय 'लीलारसाम्बुधि सागर' है आठ में से केवल सूर एवं परमानन्ददासजी दो ही महानुभावों को महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अत्यन्त दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाई थी। (निज)

के अध्ययन में ही अवकाश प्राप्त करना विद्वानों के लिये कठिन हो रहा है। फिर अष्टछाप के अन्य कवियों की चर्चा किस प्रकार हो इसी कारण सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य सभी कवि लगभग अछूते से ही पड़े हैं जिन पर कार्य करने और वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त क्षेत्र है।

प्रस्तुत अध्ययन इसी दृष्टिकोण को लेकर किया गया है। सूर के सागर के मंथन आलोडन का कार्य विद्वत्समाज द्वारा अहर्निश किया जा रहा है वहाँ अन्य सागरों के मंथन की भी चर्चा की जानी चाहिए क्योंकि मैं परमानन्ददासजी भी सम्प्रदाय के दूसरे 'सागर' हैं। उनके अवसान के उपरान्त गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने कहा था—

'जो य पुष्टि मार्ग में दोउ 'सागर' भए। एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास। सो तिनको हृदय अगाधरस भगवल्लीला रूप जहाँ रत्न भरे हैं।' [1] आदि

खेद है कि 'दूसरे सागर' के अगाध रस का न तो किसी भावुक रसिक ने भली भाँति रसास्वादन ही किया अथवा कराया न उन रत्नों के समूह का किसी मरजीवा ने पूर्ण रूपेण उद्घाटन ही।

सम्प्रदाय की मान्यता में तो अष्टछाप के सभी कविगण 'सखा' कोटि में आ जाते हैं अतः उनमें किसी प्रकार का तारतम्य वहाँ माना ही नहीं जाता। किन्तु आधुनिक साहित्यिकों द्वारा सम्भवतः सूर को अत्यधिक महत्ता दी गई है। परन्तु जब तक किसी कवि के सम्पूर्ण काव्य का तुलनात्मक एवं वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन नहीं प्रस्तुत कर दिया जाता तब तक किसी कवि के सम्बन्ध में कोई धारणा बना लेना उचित प्रतीत नहीं होता। भले ही सूर साहित्याकाश के सूर्य हों परन्तु अष्टछाप के अन्य कवि भी अपने अपने भाव-क्षेत्र में किसी भाँति घट कर नहीं। इसी भाव से प्रेरित हो कर अष्टछाप पदावली के सम्पादक डा० सोमनाथ गुप्त ने कहा है—

अभी तक तो सेहरा सूर के सर है। सम्भव है परमानन्ददास जी का काव्य-संग्रह प्राप्त हो जाने पर विद्वानों को निर्णय करने में कुछ कठिनता हो। [2]

अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय के यशस्वी लेखक डा० गुप्त ने भी कुछ-कुछ इसी प्रकार का विचार प्रकट किया है परमानन्ददास का परमानन्दसागर भी सूरसागर की टक्कर का कहा जाता रहा है खेद का विषय है कि केवल अन्य उपलब्ध रचनाओं के आधार पर ही इतनी प्रशंसा के अधिकारी माने हुए इस धारा के महान् कवियों की रचनाओं की न तो भली प्रकार अब तक खोज हुई थी न उपलब्ध रचनाओं की प्रामाणिकता की जाँच हुई और न उनके काव्य का दर्शन तथा भक्ति की दृष्टि से गंभीर अध्ययन ही हुआ। [3]

तात्पर्य यह है कि जिस कवि को सूर के समान स्थिर करने का साहस किया जा सकता है वह अभी तक प्रायः अन्धकार की गहन-गुहा में ही पड़ा रहे और उस पर कोई भी विद्वान् वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन प्रस्तुत न करे—उचित प्रतीत नहीं होता।

१ [illegible] वैष्णवन की [illegible] १० [illegible] का वक्तव्य।
२ अष्टछाप पदावली भूमिका [illegible] ३
३ अष्टछाप व [illegible] सम्प्रदाय [illegible]।

प्रस्तुत प्रबंध के द्वारा कविवर परमानन्ददास का प्रामाणिक जीवन और उनके काव्य का संग्रह और उसके सम्यक अध्ययन को प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। इस दृष्टि से प्रस्तुत प्रबंध को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है—

१—प्रथम खंड में कवि की अन्तस्साक्ष्य के आधारों पर प्रामाणिक जीवनी।

२—द्वितीय खंड में कवि के काव्य की वैज्ञानिक समीक्षा।

३—तीसरे खंड में कवि के प्रामाणिक पदों का संग्रह प्रस्तुत किया गया है। यह संग्रह कतिपय दुर्लभ प्राचीन हस्तलिखित संग्रहों से प्रस्तुत किया गया है। इन संग्रहों की चर्चा विद्या-विभाग-कांकरौली से प्रकाशित विज्ञप्ति में भी नहीं है।[1]

———

१ परमानन्द सागर पर संपादक—डा० गोवर्धननाथ शुक्ल प्रकाशक—भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ़।

द्वितीय अध्याय

जीवनवृत्त

सच्चे एवं भक्त कवियों ने स्वात्म को भी 'प्राकृत जन' की परिधि में ही रखा था अतः आत्म-चरित अथवा आत्म-कथन को अपराध की कोटि में मानते हुए उन्होंने अपना जीवन-वृत्त देने की आवश्यकता नहीं समझी। भक्ति की भाव भूमि पर जब सारी त्रिविध एषणाएँ स्वयमेव तिरोहित हो जाती हैं तब दासोऽहम् से सोऽहम् की सर्वोच्च भाव-स्थली की ओर अभिमुख भक्त को आत्म-परिचय देने का अवकाश कहाँ रह जाता है। 'स्व' या तो वह परिहार ही कर चुका होता है या अपने इष्ट को अर्पण हो चुका होता है। ऐसे भावुक भक्त को अपना आत्म-परिचय देने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। देहाध्यास या देहाभिमान का ही लक्षण है कि वह अपना परिचय दे। सागर में लय हुई बिंदु का परिचय कैसा ?

अध्यात्म-प्रधान भारतीय संस्कृति में लोकैषणा जैसी भौतिक वस्तु को स्थान नहीं। अमृतत्व के उपासकों ने अपनी हंसवाहिनी का आवाहन सदैव भगवद्गुणगान के लिए ही किया है और उनका सदैव से यही विश्वास रहा है कि विधि-भवन को छोड़ कर मर्त्य लोक में आने वाली वीणापाणि के श्रम का परिहार तभी होगा जब वह भक्ति-काव्य की सुरसरि धारा में अवगाहन करेगी। अतः व्यास-वाल्मीकि से लेकर आज तक के भक्त कवियों का परिचय अप्राप्य ही है। कुछ भक्तों का जीवनवृत्त या तो उनके निजी परिकर से मिलता है अथवा तात्कालिक अन्य साक्ष्यों से अन्यथा फिर दैन्य विनय एवं परम भावुकता के क्षणों में मग्न-मग्न आत्मनिवेदन के कथनों से। इस प्रकार के अनुसंधान में 'अटकल' का अवकाश भी बहुत कुछ रहता है। अनुमान या अटकल में कभी-कभी तो हम यथार्थ से इतनी दूर जा पड़ते हैं कि इन भक्तों अथवा भक्त कवियों के विषय में अनेक भ्रान्त धारणाएँ समाज-बद्ध हो जाती हैं फिर उनका निराकरण शोध पण्डितों के लिए एक दुष्कर काम हो जाता है। यही कारण है कि व्यास वाल्मीकि कालिदास प्रभृति की प्रामाणिक जीवनी उपलब्ध नहीं महाकवि चन्द बरदाई का व्यक्तित्व अनेक कपोल कल्पनाओं में फँसा है। कबीर की महत्ता के सम्बन्ध में उत्पत्ति सूर का जन्मान्धत्व तुलसी की नारी में आसक्ति आदि अनेक भ्रान्त धारणाएँ विचार का विषय बनी हुई हैं प्रायः अनेक भारतीय भक्तों एवं संतों का निश्चित ज्ञात नहीं है। आज की वैज्ञानिक शोध पद्धति इतनी बुद्धि प्रधान है कि भक्तों के साथ सभी समय निष्ठा या श्रद्धाभाव पर विश्वास करने के लिए वह बाध्य है। साथ ही हम सब कुछ तर्क-सम्मत चाहिए। भावना सदा भगवान् की समय-शक्ति बुद्धि-गम्य न होने से भक्त-समाधिगम्य-समाज घटनाओं को स्वीकार नहीं कर सकता परन्तु ईश्वरीय-चमत्कार जैसी वस्तु सब स्थानों में मान्य हुई है। सभी देशों के संतों भक्तों के जीवन-प्रसंग थोड़ी बहुत चमत्कारोक्तियों से सम्बद्ध रहे हैं। अतः बुद्धि और तर्क के बोझ के होने पर भी चमत्कारों का सर्वथा विलोपन नहीं है। भावुकता और दुराग्रह मुक्त विशुद्ध-अध्ययन के आधार पर उपलब्ध तथ्य पुष्ट वृत्त

ही सब समाहित होते हैं। इसी को भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन अथवा शोध-दर्शन कहा गया है। इस कसौटी पर प्रामाण्य तथ्य ही अब हमारे अध्ययन में सत्य होते हैं। अतः भाषा के प्रयत्न ही भाषा के सिद्धान्तों की तर्क प्रधान बुद्धि को ग्राह्य हैं। इसी प्रक्रिया पर परमानन्ददासजी की जीवनी का ढाँचा पूरा करने का प्रयत्न किया जायगा।

परमानन्ददास की जीवनी विषयक सामग्री का नितान्त अभाव है। कवि ने भी भारतीय-भक्तों की परम्परा के अनुसार 'आत्म-परिचय' की अवहेलना की दृष्टि से देखा है। सूर तुलसी ने तो फिर भी अपनी प्रारम्भिक दुर्दशाओं का प्रसंगवश कहीं कुछ संकेत दे दिया है परन्तु भक्तप्रवर परमानन्ददास ने तो अपने विषय में कहीं भी कुछ नहीं लिखा। इसके संभवतः दो कारण थे—पहले तो कवि बहुत ही साधारण परिस्थिति में जिसका था। अतः उसे अपने विषय में कुछ भी उल्लेख्य प्रतीत नहीं हुआ। दूसरे—भक्त परमानन्ददास का जीवन अत्यन्त सरल शान्त एवं भक्तिमय होने से घटनाविधान से संकुल नहीं था। कवि को अपना गुणगान व आत्मलिखित में कुछ करने को था न कहने को। न उसे कोई अन्य भौतिक प्रेरणा थी। भगवद् विधान में अटल विश्वासी और स्वभावतः मनोयोगी होने से कवि ने कभी भी कोई लौकिक प्रसंग न अपने विषय में उठाया न पराये विषय में। अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख तो दूर तत्कालीन राजनीतिक उथल-पुथल और सामाजिक घटना-चक्र की चर्चा भी उसने नहीं की। अतः उसके कीर्तनपरक पदों में प्रायः चर्चा की क्षण हल्की छाया भी कम ही भासमान होती है। अतः जीवनी के लिए अधिकांशतः बाह्य-साक्ष्यों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। बाह्य-साक्ष्यों में साम्प्रदायिक साहित्य में तो यत्किंचित कुछ मिल जाता है परन्तु अन्य राजनीतिक इतिहास अथवा तत्कालीन साहित्य प्रायः मौन सा है। जन्म तिथि माता-पिता, जन्म स्थान आदि के विषय में तो प्रामाणिक आधारों का नितान्त अभाव है। ऐसी परिस्थिति में हम सबके लिए केवल साम्प्रदायिक जनश्रुतियाँ एवं वार्ता-साहित्य ही आधार सूत्र हैं। इन्हीं आधार-सूत्रों से विद्वानों ने उनकी जाति जन्म स्थान तथा जन्म संवत् आदि की खोज की है। साम्प्रदायिक और सम्प्रदायेतर जितनी भी सामग्री उपलब्ध है उसके आधार पर कवि के जीवन के इतिवृत्त के संबंध में तथ्य एकत्र करने का प्रयास किया जायगा।

उपलब्ध सामग्री का वर्गीकरण—

परमानन्ददासजी के संबंध में जो भी सामग्री उपलब्ध है उसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है

अन्तस्साक्ष्य—

(१) उनके अपने भगवल्लीला विषयक पद जिनके आधार पर हम उनके अस्तित्व तक पहुँचते हैं, अन्तस्साक्ष्य के अन्तर्गत आयेंगे। इन्हीं पदों के समूह को 'परमानन्दसागर' पुकारा गया है

(ब) बाह्यसाक्ष्य [साम्प्रदायिक]

१—वार्तासाहित्य—जिसके अन्तर्गत (१) चौरासी वैष्णवों की वार्ता (२) निज वार्ता (३) श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश (४) वल्लभदिग्विजय (५) अष्टसखामृत एवं सम्प्रदाय सम्बन्धी अन्य ग्रन्थ जिनकी चर्चा आगे चलकर की जायगी।

बाढ्यो है माई माधौ सौं सनेहरा ।
जैहौं तहां जहां नन्द नन्दन राज करौ मह गेहरा ।।
अब तो जिय ऐसी बनि आइ कियो समर्पन देहरा ।।
'परमानन्द' बसी पीजति ही बरसन लाग्यो मेहरा ।।[1]

दूसरा पद—

मैं तो प्रीति स्याम सौं कीनी ।
कोऊ निंदौ कोऊ बंदौ अब तो यह कर दीनी ।।
जो पतिव्रत तो या ढोटा सौ इन्हें ही समर्प्यो देह ।
जो व्यभिचार तो नन्द नन्दन सौं बाढ्यो अधिक सनेह ।।
जो व्रत गह्यो सो और न निबह्यौ मर्यादा को भंग ।
'परमानन्द' लाल गिरधर को पायो मोटो संग ।।[2]

कवि अपने जीवन के प्रारम्भ में सम्भवत बड़ा अकिंचन और आपद्ग्रस्त था । बाद में वह वैभव सम्पन्न हो गया था और उसे आर्थिक सौख्य हो गया था ।

तिहि कर कमल दासपरमानन्द सुमरित यह दिन आयो ।
उसे कौटुम्बिक सुख नहीं मिला था वह कहता है—

तुम तजि कौन सनेही कीजै ।
यह न होइ अपनी जननी ते पिता करत नहीं ऐसी ।
बन्धु सहोदर से सोउ करत हैं मदनगोपाल करत है जैसी ।
सुख अरु सोक देत हैं व्रजपति अरु वृन्दावन बास बसावत ।।

१—जाके दिए बहुरि नहिं जाँचे दुख दरिद्र नहिं आगे ।
२—गुरु प्रसाद जाकी संपति जन परमानन्द रंक कियो
३—परमानन्द इन्द्र को वैभव विप्र सुदामा पायो ।
४—माधो तुम्हारी कृपा तें को को न बढ्यो
५—ताहि निहाल करें परमानन्द नेक भौंह जो भावें ।।

परमानन्ददास बड़े सुबोध और विद्वान् थे परन्तु उन्हें अपनी विद्वत्ता का गर्व लेशमात्र नहीं था । वे उसे भगवत्प्रसाद ही मानते थे । वे मानते थे कि उसकी संपूर्ण विद्वत्ता भगवत्कृपा से ही है—

जाके सरण गए भय नाहीं सकल बात को ज्ञाता ।

कवि का शरीर सुन्दर और बलिष्ठ था । एक स्थान पर वह लिखता है —

कांपत तन अरु भरत प्रतिपूरत सीत लगत तन भारो ।

---

१ लेखक द्वारा सम्पादित परमानन्द सागर मे १०—८१ ।
२ लेखक द्वारा सम्पादित परमानन्द सागर मे ८—१००
१ ,, ,,
२ ,, ,,
३ ,, ,,
४ ,, ,,
५ ,, ,,

उन मारो" से उसके पुष्ट और स्थूल होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

परमानन्ददासजी के उक्त पद-पंक्तियों से न केवल उनका आत्मसमर्पण ही घोषित होता है अपितु सदैव के लिए गृह-त्याग और ब्रज बसने का संकल्प भी ध्वनित होता है। परमानन्द निश्चय कर चुके थे कि —

अब यह देह दूसरो न हुई परमानन्द गोपाल की। [1]

उनके दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व गोस्वामी विट्ठलनाथजी का जन्म हो चुका था। कवि ने गोस्वामी विट्ठलनाथजी का शिशु रूप देखा था। यह उनकी बधाई में मिलता है —

"श्री विट्ठलनाथ पालने झूले मात अक्काजू झुलावें हो।

और इसी पद में आगे चलकर वह कहता है —

'पुष्टि प्रकास करेंगे सुतन दैवी जीव उधारत हो। [2]

यहाँ 'करेंगे' भविष्यत् काल की क्रिया है। इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि परमानन्ददासजी ने विट्ठलनाथजी की प्रत्यक्ष शिशु अवस्था से लेकर आगे उनके यौवन को भी देखा था और उनके आचार्यत्व की भविष्यवाणी कर दी थी। महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण में आ जाने के उपरान्त परमानन्ददासजी को भगवान की बाल लीला ही अधिक प्रिय हो गई थी। श्रीकृष्ण की बाल-लीला-वर्णन में ही उन्होंने अपना सारा जीवन विनियोग कर दिया था।

उन्होंने अपनी रुचि इन पंक्तियों में व्यक्त की है —

१—नील पीत पट ओढनी देखन मोहि भावै।
बाल विनोद आनन्द सूं परमानन्द गावै॥

२—तू मेरो बालक नंदनन्दन तोहि विश्वम्भर रावै।
परमानन्द चिरजीवो बार बार यों गावै॥

३ — बालदसा गोपाल की सब काहू भावै॥

४—बालविनोद गोपाल के देखत मोहि भावै॥

५—बाल चरित्र विचित्र मनोहर कमल नैन ब्रजजन सुखदाई॥

६—माधव हरि के बाल विनोद।

७—बाल विनोद करे प्रिय माधव॥

—'परमानन्द प्रभु बालक लीला हँसि चितवत फिर पाछे'।

८—बाल दसा में प्रीति निरन्तर क्रीड़त गोकुल वासा। आदि पदों में बाल लीला गान करते हुए अपने आराध्य की लीला-भूमि ब्रज में बसने की परमानन्ददास की उत्कट इच्छा थी —

१—यह मांगों गोपीजन वल्लभ
मानुस जन्म और हरि की सेवा ब्रज बसिबो दीजे मोहि सुल्लभ।

लेखक द्वारा सम्पादित परमानन्द सागर से।
१ ,,
२

२—ब्रज बसि बोल सबनि के सहिये।

३—जैसे बहु देस जहाँ नन्द नन्दन भेटिये।

परमानन्दजी को महाप्रभु का सतत साहचर्य मिला था और श्रीमद्भागवत सुबोधिनीजी तथा अन्य पुराणों को उसने श्रवण किया था—

परम पुरान कथा यह पावन वरनी प्रति अराह कही।

तीर्थ महातम जानि जगत गुरु सों परमानन्ददास गही॥

ब्रज में आने के उपरान्त कवि आजीवन भक्ति-भावना में तन्मय रहा। भक्ति की महिमा की चर्चा उसने यत्र तत्र सर्वत्र की है वह कहता है—

१—कोई कुलीन दासपरमानन्द जो हरि सन्मुख धार्ँ।

२ तातें नवधा भक्ति भली।

परमानन्ददासजी भक्ति भावना में उदार थे। रामकृष्ण में उनकी अभेद बुद्धि थी संकीर्णता उनमें लेशमात्र नहीं थी।

मदनगोपाल हमारे राम।

परमानन्द प्रभु भेद रहित हरि निज जन मिलि गावें गुनग्राम॥

परमानन्ददास जी स्वभाव से वैराग्यवान् थे। जागतिक मोह उन्हें छू तक नहीं गया था। वे इस नश्वर जग में एक पथिक की भाँति आये थे—

मेरो मन गोविन्द सों मान्यो तातें और न जिय भावें।

जागत सोवत यह उत्कण्ठा कोउ ब्रजनाथ मिलावें॥

छाँडि आहार विहार और देह सुख और चाह न कोऊ।

परमानन्द बसत है घर में जैसे रहत बटाऊ॥१

कवि को वेदमार्ग और व्यावहारिकी मर्य्यादा की भी चिन्ता नहीं रह गई थी वह कहता है—

कै वै कीजे कहा कह्यो।

हरि गुन निरखत विधि निषेध को नाहिन ठौर रह्यो।

दुख को मूल सनेह सखीरी सो उर पैठि रह्यो॥

परमानन्द प्रेम सागर में पर्यो सों लीन भयो॥

पुष्टिमार्ग में कवि को परम आस्था थी—

माधव हम गोपाल बरोगे।

पावत बाल-विनोद भागह में नारद न उपरेंगे॥

---

१ मित्तल द्वारा संपादित परमानन्द स० ८८ में।

१ मित्तल द्वारा संपादित परमानन्द सागर में।

१ ,, ,,

गो घनश्यामजी के जन्म समय से लेकर 'पोथी में ध्यान' तक कवि विद्यमान था। इतना ही नहीं। 'पोथी मे ध्यान' घनश्यामजी के अध्ययन में मगन का संकेत देता है। बालक घनश्याम जो विट्ठलेश के सप्तम पुत्र हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त पदो के साक्ष्य के आधार पर हम निम्नांकित तथ्यो पर पहुँचते है —

१—अष्टछापी कवियो मे परमानन्ददास नामके एक प्रतिभासम्पन्न भावुक व्यक्ति हुये थे। जिन्होंने श्रीकृष्ण की बाललीला परक सरस भावपूर्ण पदो की रचना की थी। इनके पदो का संग्रह 'परमानन्दसागर' नामक हस्तलिखित प्रतियो मे आज भी सुरक्षित है।

२—जीवन के प्रभात मे वे अकिंचन थे और बाद मे भगवत् कृपा से व्रजवासी हो गये थे।

३—वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के कृपापात्र शिष्य थे और अपने गुरु को वे भगवत्तुल्य समझते थे।

अपने गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य से समर्पण दीक्षा प्राप्त करके भावुक भक्त बन गए और सदैव के लिए व्रजवास करने चले आऐ थे।

व्रज से उन्हे अत्यन्त प्रेम था। यहीं उन्होंने भगवान् की बाल-लीला का गान किया।

वे राम और श्याम मे अभेद बुद्धि रखते थे और भक्ति मार्ग के उदार भावुक पथिक थे।

पुष्टिमार्ग उनका अपना मनोनीत सम्प्रदाय था उसी मे दीक्षित होकर उच्चकोटि का आचार पालन करते हुए वे भगवान् की लीला का गान करते रहते थे

उपर्युक्त पदो के आधार पर उनको जीवन-वृत्त इतना थोड़ा उपलब्ध होता है कि जिज्ञासु पाठक को सन्तोष नहीं होता। अतः उसे बाध्य होकर अन्य साक्ष्यो की शरण लेनी पड़ती है।

बाह्यसाक्ष्यः—

बाह्यसाक्ष्य के अन्तर्गत जैसा कि पहले कहा जा चुका है सर्व प्रथम "वार्ता साहित्य" आता है। वार्ता साहित्य कविवर परमानन्ददासजी के विषय मे ही क्या सभी अष्टछापी कवियो के विषय मे सर्वाधिक प्रामाणिक और अपरिहार्य आधार है। अतः आज तक जितना भी कार्य इन आठ भक्त महानुभावो के सबंध मे हुआ है वह सब वार्तासाहित्य से सहायता लेकर ही। परन्तु खेद है कि स्वयं वार्ता साहित्य को बहुत समय तक विद्वानों ने प्रामाणिकता की मुद्रा से अंकित नहीं किया जबकि समस्त प्रामाणिक साम्प्रदायिक अनुसंधान इन्हीं दो ग्रन्थो-चौरासी वैष्णवन की वार्ता और 'दोसौ बावन वैष्णवन' की वार्ता पर आधारित है। इनके अतिरिक्त कवि के जीवन वृत्त के लिए बाह्य-साक्ष्य के ही अन्तर्गत साम्प्रदायिक अन्य ग्रन्थ भी प्रमाणिकता के लिए ग्राह्य है—

१—भावप्रकाश (हरिराय जी कृत) (चौरासी एवं दोसौ बावन वार्ताओं पर टिप्पण)

२—वल्लभ दिग्विजय

३—संस्कृत वार्ता मणिमाला। (श्रीनाथ भट्ट कृत)

४—अष्टसखामृत

५—बैठक चरित्र

६—प्राकट्य सिद्धान्त

७—वैष्णवाह्निक पद

८—श्री गोकुलनाथजी के स्फुट वचनामृत

९—हरिरायजीकृत चौरासी बोल

१०—अन्य साम्प्रदायिक भक्तों की उक्तियाँ जैसे कृष्णदास कृत वसन्तोत्सव वाला पद—आदि।

उपर्युक्त साम्प्रदायिक साहित्य के अतिरिक्त निम्नांकित समसामयिक अथवा परवर्ती किन्तु सम्प्रदायेतर ग्रन्थों में भी कवि का उल्लेख मिलता है —

१—भक्तमाल— नाभादासजी कृत तथा भक्तमाल टीका प्रियादासजी कृत।

२—भक्तनामावली—ध्रुवदास

३—नागर समुच्चय— नागरीदास। (पद प्रसंगमाला)

४—व्यासवाणी

५—भगवत रसिक की भक्त नामावली।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त बाह्यसाक्ष्य के रूप में उपलब्ध आधुनिक सामग्री में भी परमानन्ददासजी की अत्यन्त अल्प चर्चा निम्नांकित इतिहास-ग्रन्थों में मिलती है—

१—खोज रिपोर्ट। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा।

२—तासी का इस्त्वार दे ला लिटेरात्यूर ऐन्दुई एन्दुस्तानी।

३—शिवसिंह सेंगर का "शिवसिंह सरोज"

४—सर जार्ज ग्रियर्सन का माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान।

५—मिश्र-बन्धुओं का मिश्रबन्धु विनोद।

६—रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास।

७—डाक्टर रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

८—डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी का हिन्दी साहित्य।

९—कांकरौली का इतिहास।

इसके अतिरिक्त निम्नांकित ग्रन्थों में परमानन्ददासजी की यथा स्थान चर्चा है।

१—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा-अष्टछाप।

२—श्री द्वारकादास परीख-अष्टछाप की वार्ता (तीन जन्म की लीला भावना वाली) स २ ७।

३—डा० दीनदयालु गुप्त-अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय।

४—प्रभुदयाल मीतल-अष्टछाप परिचय।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त कतिपय पत्र-पत्रिकाओं जैसे—वल्लभीय सुधा तथा कल्याण के भक्तांक में भी परमानन्ददासजी की चर्चा हुई है। श्रीललितकुमार देव का एक लेख पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ में भी परमानन्ददासजी पर प्रकाशित हुआ है।

उपर्युक्त साहित्यिक सूत्रों के अतिरिक्त कविवर परमानन्ददासजी का कहीं भी कैसा भी कुछ भी पता नहीं चलता। क्योंकि वे गोपीभाव के साधक एकान्त कवि थे। प्रभु गुणगान के द्वारा वे गौण रूप से लोक कल्याण के पोषक भी थे। कबीर या तुलसी की भाँति उनमें सीधी लोक कल्याण-भावना नहीं थी जिससे वे जन जन के कवि हो सकते। ना ही वे केशव बिहारी अथवा भूषण की भाँति किसी नरेश के राज्याश्रित कवि किंकर थे। जिससे कोई समसमायिक साहित्यकार या इतिहासकार उनका परिचय देता। वे सीधे सादे भक्त कवि और कीर्तनकार थे जिन्होंने अपना सर्वस्व गुरु और गोविन्द को समर्पित कर रखा था 'श्री वल्लभ 'रतन' उन्होंने बड़े जतन से पाया था और उसी के माध्यम से श्री गोवर्धननाथजी के पावन चरणों में अपने जीवन का विनियोग कर चुके थे। अतः आजीवन विविध भावनाओं एवं आसक्तियों द्वारा रससिक्त होकर श्रीनाथजी के सिंह द्वार पर पड़े रहे[1] अतः उनके जीवन का विस्तृत परिचय देने वाला ग्रन्थ "चौरासी" वैष्णवन की वार्ता ही है और उसी पर श्री हरिरायजी का भाव-प्रकाश नामक टिप्पण और भी अधिक भावना का समावेश कर देता है।

'चौरासी' वैष्णव की वार्ता और भाव प्रकाश में उनके विषय में जो जो सूचनाएं उपलब्ध होती हैं उनकी चर्चा करने से पूर्व वार्ता साहित्य की महत्ता पर यहाँ संक्षिप्त सा उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा। अब इस साहित्य पर प्रामाणिक शोध-प्रबन्ध छप चुका है।[2]

वार्ता साहित्य की महत्ता—

यह पहले ही कहा जा चुका है कि सम्पूर्ण अष्टछापी कवियों का पूरा परिचय इन दोनों ग्रन्थों चौरासी वैष्णवन की वार्ता और दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता में मिलता है।

और इन वार्ता ग्रन्थों के आद्यप्रणेता स्वयं महाप्रभु वल्लभाचार्य थे। ये वार्ताएँ बहुत काल (१५१५ १५८७) तक मौखिक रहीं। उसके उपरान्त श्रीगुसाईं विट्ठलनाथजी के

१ "रस में भाते रसिक हुदुर कवि परमानन्द सिंहद्वारे दोऊ।" व सागर—लेखक द्वारा संपादित।

२ लेखक—डॉ० हरिहरनाथ टण्डन—प्रकाशक वा म मन्दिर अलीगढ़।

मिलजाती है। वार्ता मे पाई हुई तत्कालीन राजकीय परिस्थिति का और शासकवर्ग के व्यवहार का एक सुस्पष्ट चित्र पाठक की कल्पना मे अंकित होता है, जिसको यदि पाठक चाहे तो अन्य तत्कालीन इतिहासो के आधार पर पुष्ट कर सकता है जैसे अकबर बीरबल टोडरमल तुलसीदास जहाँगीर शाहजहाँ औरंगजेब आदि ऐसे ऐतिहासिक व्यक्ति हैं जिनकी चर्चाएँ वार्ता साहित्य मे मिलती है। उसी प्रकार फैजी की आइने अकबरी" मे उल्लिखित सामाजिक स्थिति और वार्ता मे अंकित सामाजिक स्थिति मे कोई विशेष अन्तर परिलक्षित नही होता।

फिर वार्ता ग्रन्थो की चर्चा अन्य प्रामाणिक चरित-ग्रन्थो मे उपलब्ध होती है जैसे महाप्रभु हरिरायजी के जीवन चरित्र मे वार्तासाहित्य की पूरी चर्चा है। उसी प्रकार "निजवार्ता" "घरूवार्ता" महाप्रभु वल्लभाचार्य का बैठक-चरित्र आदि अनेक ग्रन्थो मे वार्ता साहित्य का उल्लेख है। अत: बसुय विषय शैली भाषा मात्र सभी दृष्टियो से वार्ता साहित्य प्रामाणिक ठहरता है। वार्ता साहित्य की महत्ता पर मुग्ध होकर सम्प्रदाय के मार्मिक ज्ञाता मोहारकादास परीख लिखते हैं।

"आ वार्ताओ मा केटलूँ बधु साम्प्रदायिक अगाध रहस्य समायेलूँ छे ते समजावाने अर्थे श्री हरिराय प्रभुए दरेक वार्तामा दरेक प्रसंग ऊपर मध्यम भाषा थी – अर्थात् न अत्यन्त स्पष्ट तेमज न अत्यन्त गूढ एवी भाषा मा रहस्य नु उद्घाटन कर्यु छे। अर्थात् 'इस वार्ता मे जितना सारा साम्प्रदायिक गहन रहस्य समाया हुआ है उसको समझाने के लिए श्री हरि राय श्री महाप्रभु ने प्रत्येक वार्ता के प्रत्येक प्रसग पर मध्यम भाषा मे – अर्थात् न अत्यन्त स्पष्ट न अत्यन्त गूढ ऐसी भाषा मे रहस्य का उद्घाटन किया है।

तात्पर्य यह है कि वार्ता साहित्य और उस पर हरिराय जी का टिप्पण साम्प्रदायिक-रहस्य को जानने के लिये अत्यन्त उपयोगी अपरिहार्य और प्रामाणिक है। इसके बिना सम्प्रदाय के रहस्यो का गम्भीर बोध नही हो सकता। न व्रजभाषा के उन मूर्द्धन्य कवियो के विषय मे जानकारी हो सकती है जिन्होने लोकोत्तर काव्य प्रतिभा से व्रज साहित्य की उसकी अमूल्य निधि मे अपने भाव रत्नो को समाविष्ट कर उसे वैभवशाली और भी सम्पन्न बनाया।

१ – चौरासी वैष्णवन की वार्ता में परमानन्ददासजी का वृत्त

कविवर परमानन्ददासजी का जीवन परिचय " चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे इस प्रकार उपलब्ध होता है –

कवि का जन्म कन्नौज मे एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ। जन्म के दिन पिता को कही से बहुत सा द्रव्य मिला। अत उसने परमानन्दित होकर पुत्र का नाम 'परमानन्ददास' रख दिया। जातकर्म नामकरण आदि संस्कारो के हो जाने पर पिता ने यज्ञोपवीत कर दिया। बालक परमानन्ददास मानसी जीव थ। विद्याध्ययन द्वारा अच्छी योग्यता सपादित की और काव्य रचना करने लगे। वे कुलीन और भक्त थे कीर्तनादि देकर शिष्य बनाते थे। इस प्रकार इनका अपना एक मडल था। कन्नौज मे एक बार अकाल पड़ा और परमानन्ददास जी की समस्त पैतृक सपत्ति राज्य द्वारा हरण करली गई।

१ आ वार्ता रहस्य भूमिका–वार्ता श्री समान

इस समय तक इनका विवाह नहीं होने पाया था अतः पिता ने इन्हें द्रव्योपार्जन करने के लिए आदेश दिया। परन्तु परमानन्ददास स्वभाव से विरक्त थे द्रव्योपार्जन में आस्था नहीं थी अतः वे द्रव्य-संग्रह के लिये कहीं नहीं गए। परन्तु इनके पिता अवश्य द्रव्यार्थ इतस्ततः भटकते रहे।

कुछ काल के उपरान्त मकर-स्नान-पर्व पर परमानन्ददासजी प्रयाग पधारे। वहाँ इनके कीर्तन और पद गान की बड़ी धूम रही। महाप्रभु वल्लभाचार्य के कृपापात्र कपूर क्षत्री ने इनके पदगान की प्रशंसा सुनी और एक दिन एकादशी की रात्रि में यमुना पार कर के परमानन्ददासजी की कीर्तन मण्डली में सम्मिलित हुए। दूसरे दिन द्वादशी को "क्षत्री कपूर" ने महाप्रभु वल्लभाचार्य के समक्ष परमानन्ददासजी के पद गान की प्रशंसा की। फिर किसी एकादशी की रात्रि को जागरण के बहाने कपूर क्षत्री पुन परमानन्ददासजी के समाज में सम्मिलित हुए और प्रभात में पुन अपने कार्य में लग गये। उधर परमानन्ददासजी ने अंतिम प्रहर में स्वप्न देखा कि इनके समाज में सम्मिलित होने वाले कपूर क्षत्री की गोद में भगवान नवनीतप्रिय बैठे हैं और वे इनका गान श्रवण कर रहे हैं। नेत्र खुलने पर परमानन्ददासजी भगवद् विरह में व्याकुल हुए और नवनीतप्रिय जी के साक्षात् दर्शन की इच्छा हुई। अतः वे कपूर क्षत्री से मिलने को अड़ैल चल दिए और नौका से यमुना पार करके आचार्य महाप्रभु के स्थान पर आए। वहाँ पर उन्हें प्रथम बार महाप्रभु के दर्शन हुए और उसी क्षण उन्होंने उनकी शरण में आने का संकल्प कर लिया महाप्रभु ने उन्हें भगवद् लीला गान करने का आदेश दिया। जिस पर परमानन्ददास ने कुछ विरह-परक पद गाए। महाप्रभु ने उन्हें बाल लीला-गान का आदेश दिया इस पर परमानन्ददासजी ने अपनी असमर्थता प्रकट की। तब आचार्य जी ने उन्हें यमुना में स्नान कर आने को कहा और फिर नाम श्रवण[1] कराकर शरण मंत्र[2] की दीक्षा दी। दीक्षोपरान्त आचार्यजी ने परमानन्ददासजी को भागवत दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाई और तभी से परमानन्ददासजी ने बाल लीला परक पद रचना प्रारम्भ कर दी। इन्होंने गाया—

१—माइरी कमलनैन स्याम सुन्दर झूलत हैं पलना।[3]

२—कनि बज पोषन नन्द के खेलत दोऊ भैया॥

अबसे परमानन्ददासजी का यह नित्य का कार्य था कि वे श्री नवनीतप्रिय भगवान के समक्ष बाल लीला के पद बनाकर कीर्तन करते थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य इन दिनों श्रीमद्भागवत पर सुबोधिनी नामक टीका लिख रहे थे अतः वे नित्य सुबोधिनी की कथा परमानन्ददासजी को सुनाते थे। सुबोधिनी के उन्हीं प्रसंगों को लेकर परमानन्ददासजी पद रचना कर देते थे।

इस प्रकार कुछ काल अड़ैल में निवास करने के उपरान्त परमानन्ददासजी की ब्रज जाने की इच्छा हुई और उन्होंने उनसे ब्रज चलने की प्रार्थना की।

---

१ नाम [illegible] मंत्र जो [illegible] में [illegible] दिया जाता है।

[illegible] प्रभु को [illegible] पूर्ण [illegible] भगवान का ही [illegible] है [illegible] ने [illegible] बतलाया है।

३ [illegible] परमानन्द [illegible]

४ " "

यह मांगो गोपीजनवल्लभ
मानुष जनम और हरि की सेवा ब्रजबसिबो दीजै मोहि सुल्लभ ।

महाप्रभु उनकी प्रार्थना पर प्रयाग से ब्रज को पधारे। मार्ग मे वे परमानन्ददासजी के घर कन्नौज भी पधारे। वहाँ परमानन्ददासजी ने एक हरिलीला विषयक पद[१] गाया। कहते है आचार्य जी इस पद को श्रवण कर तीन दिन तक देहानुसन्धान भूले रहे। उसके उपरान्त आचार्य समस्त शिष्य मण्डली सहित ब्रज की ओर चले। कन्नौज मे परमानन्ददासजी के जितने शिष्य थे उन्हे आचार्य जी ने अपनी शरण मे लेकर उन्हें ब्रह्मसम्बन्ध की दीक्षा दी और समस्त शिष्यो सहित ब्रज (गोकुल) मे पधारे। यहाँ आचार्य जी ने परमानन्ददास को श्री यमुना के आध्यात्मिक स्वरूप का दर्शन कराया और परमानन्ददास ने श्री यमुना विषयक अनेक पदों की रचना की। जैसे—

१—श्री यमुनाजी यह प्रसाद हो पाऊ ।।
२—श्री यमुना जी दान मोहि दीजै ।। आदि ।

यहाँ श्री परमानन्ददासजी गोकुल सम्बन्धी बाललीला के अनेक पदो की रचना करते रहे। उसके उपरान्त परमानन्ददासजी श्री आचार्य जी के साथ श्रीगोवर्धन पधारे और उन्होंने गिरिराज चरण (श्रीगोवर्धननाथजी) के दर्शन किये। श्रीगिरिराज मे निवास करते हुए परमानन्ददासजी ने अवतार लीला कुंजलीला चरणारविन्द की वन्दना स्वरूप सम्बन्धी एव ठाकुरजी के माहात्म्य सम्बन्धी अनेक पदो की रचना की और अनन्त भगवल्लीलाओ का अनुभव किया। यही पर आचार्य महाप्रभुजी ने परमानन्ददास के एक पद[२] के पाठ मे परिवर्तन किया जिससे आचार्यजी का ब्रज भाषा के प्रति आदर और उनका पाण्डित्य झलकता है।

गिरिराज मे निवास करते हुए परमानन्ददासजी ने अपने समकालीन वैष्णव मण्डल से मिलते रहते थे। इनमे सूरदासजी कुंभनदासजी एव रामदास आदि मुख्य थे। इसी समय उक्त प्रमुख वैष्णवो ने उनसे श्रीनन्दरायजी गोपीजन एव ग्वाल सखाओ मे सर्वाधिक श्रेष्ठ प्रेम किनका है यह प्रश्न किया। इस पर परमानन्ददासजी ने गोपी प्रेम को ही आदर्श प्रेम सिद्ध किया। इस प्रकार वे बहुत समय तक श्री गोवर्धननाथजी की कीर्तन सेवा करते रहे। इसी काल मे श्रीगोसाईंजी से वे गोकुल मे मिलने के लिये आते जाते रहते थे। इस समय तक विट्ठलनाथजी को आचार्यत्व प्राप्त हो गया था। उनके 'मगल मगल ब्रजभुवि मंगल के' पद पर परमानन्ददासजी ने अनेक पद बनाए थे।

एक बार जन्माष्टमी के अवसर पर रात्रि को पचामृत स्नान के उपरान्त और दूसरे दिन नवमी को दधि कांदे के उपरान्त परमानन्ददासजी भगवल्लीला गान करते हुए आत्म विभोर हो गए और उन्हे राग के स्वरो का भी अनुसन्धान नही रहा। चित्त की इस निरोध स्थिति मे वे ऐहिक अनुभूतियो से मुग्ध हो गए। वे अपनी कुटिया सुरभि कुण्ड के ऊपर आगए। थोड़ी ही देर मे समस्त वैष्णव मण्डल उनके चतुर्दिक एकत्र हो गया।

---

१ हरि तेरी लीला की सुधि आवै प ला।
२ 'कौन यह खेलिबे की बानि'—आचार्य जी ने परि र्तित किया—'कौन यह खेलिबे की बानि'

परमानन्ददास जी का यह अन्तिम समय था। अपने अन्तिम पदों मे वैष्णवों को 'गुरु-भक्ति' का आदेश दिया। तदुपरान्त युगल स्वरूप की लीला मे मन को अटका कर वे भगवान की नित्य लीला मे प्रवेश कर गए। उनके अग्नि संस्कार के पश्चात् गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उनके विषय मे कहा था — जो ये पुष्टि मार्ग मे दोउ सागर भए। एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास। सो तिनको हृदय अगाध रस भगवल्लीला सागर है जहाँ रत्न भरे हैं।" आदि

चौरासीवार्ता के चरित्र कथन के आधार पर हम सूत्र रूप मे निम्नांकित तथ्यों पर पहुँचते हैं —

१ — परमानन्ददास जी कन्नौज के निवासी थे। वे ब्राह्मण परिवार मे जन्मे थे। उन्हें बचपन मे अच्छी शिक्षा दीक्षा मिली थी। वे विद्वान् और कवि थे।

२ — वे ब्राह्मणों के उस कुल मे जन्मे थे जिसमे शिष्य बनाये जाते हैं। वे अपने साथ एक अच्छी खासी मण्डली रखते थे।

३ — उन्हें उच्च कोटि के संगीत का ज्ञान था। उनकी संगीत कला से प्रभावित होकर दूर-दूर से लोग उनके गान को श्रवण करने आते थे।

४ — कपूर क्षत्रिय के द्वारा उन्हें महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का परिचय मिला और वे उनकी शरण आए तथा अडेल (अर्गलपुर) मे दीक्षित हुए।

५ — दीक्षित होने के उपरान्त महाप्रभु के पास रहकर कीर्तन सेवा करते रहे। तबसे उन्होंने दूसरों को दीक्षा देना बन्द कर दिया था। और बाललीला परक पदों मे 'सुबोधिनी' उनको आधार मिला थी।

६ — वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के साथ ब्रज मे पधारे और गोकुल होते हुए श्री गोवर्धन आये तब से वे गिरिराज पर स्थित गोवर्धननाथजी के मंदिर मे निरन्तर कीर्तन सेवा करते रहे।

७ — वे गिरिराज मे रहते हुए वैष्णवों का सत्संग और कीर्तन करते रहते थे तथा कभी कभी गोकुल कभी नन्दगाँव आदि ब्रज के अन्य स्थानों मे घूमते चले जाते थे।

— वैष्णव भक्तों मे और अपने समसामयिक सूरदास कृष्णदासादि भक्तों मे उनका बड़ा सम्मान था।

९ — उन्हें आचार्य से बाल-लीला गान का आदेश मिला था। अतः उनका वर्ण्य विषय भगवान् की बाल-लीला ही था।

१ — वे आचार्य महाप्रभु के नित्य लीला प्रवेश के बाद वर्षों जीवित रहे और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के कृपापात्र रहे।

११ — ब्रज मे उनका निवास स्थान गिरिराज की तलहटी मे स्थित सुरभिकुण्ड पर था। और वहीं उनका देहावसान हुआ।

---

१ प्रात समै उठि करिए श्री लछमन सुत गान।
अमर भए श्री वल्लभ प्रभु देत भक्ति दान॥

२ राधे बैठी तिलक सँवारति।
मृग नैनी कुसुमायुध डरि नन्द सुवन को रूप बिचारति।

परमानन्द सागर पद संख्या। १, १ तथा ९७१

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त चौरासी वार्ता से परमानन्ददासजी के जन्म संवत् आदि का कुछ भी पता नहीं चल सकता। साथ ही अन्तस्साक्ष्य के आधार पर किये गये तथ्यों से उपर्युक्त तथ्यों का कहीं विरोध भी नहीं पड़ता। अन्तस्साक्ष्य में कवि ने अपने जन्म-स्थान माता पिता अथवा राजकीय अत्याचारों आदि का उल्लेख नहीं किया है। वार्ता से ही कवि का कन्नौज[1] में उत्पन्न होना तथा अड़ैल में दीक्षित होना एवं भागवत दशम स्कन्ध के आधार पर भगवान की बाललीला का वर्णन करना पाया जाता है। उसके काव्य में बाललीला परक पद अधिक होने से उक्त बात की पुष्टि अन्तस्साक्ष्य के अन्तर्गत रखे जाने वाले पदों के आधार पर भी हो जाती है। वार्ता के इन प्रसंगों में परमानन्ददास जी के जीवन के सम्बन्ध में उपर्युक्त स्थूल तथ्य ही उपलब्ध होते हैं। इनसे उनकी भक्ति भावना दैन्य काव्य प्रतिभा धार्मिक विश्वास गुरुभावना आदि का परिचय ही मिलता है। वे किस संवत् में प्रयाग पहुँचे किस समय दीक्षा प्राप्त हुई कब से ब्रजवास प्रारम्भ हुआ आदि प्रश्न हल नहीं होते न सूरदासजी की भाँति अकबर से भेंट आदि अन्य कोई ऐतिहासिक घटना की चर्चा मिलती है हाँ संकेत रूप में वार्ता में जहाँ गोस्वामी विट्ठलनाथजी का 'मंगल मंगल ब्रज भुवि मंगल' वाले पद की चर्चा मिलती है वहाँ यह आभास अवश्य मिलता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य नित्य लीला में प्रविष्ट हो गए थे और नवनीत प्रियजी का जो कि आचार्य महाप्रभुजी के सेव्य थे। सेवा भार गोस्वामी विट्ठलनाथजी पर आ पड़ा था। दूसरे, कवि की अवसान वेला में महाप्रभुजी की उपस्थिति नहीं बल्कि गोस्वामी विट्ठलनाथजी की उपस्थिति बतलाई गई है। जोकि सम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थों एवं तत्कालीन-प्रमाण ग्रन्थों से भी पुष्ट होती है।

वार्ता साहित्य के अनन्तर दूसरा प्रामाणिक ग्रन्थ जोकि परमानन्ददासजी के विषय में उल्लेख्य सामग्री देता है वह "भावप्रकाश" है। इसके रचयिता महाप्रभु हरिरायजी हैं।

२—भावप्रकाश—यह वार्ता साहित्य पर भावनात्मक टिप्पणी" है। श्री हरिरायजी का जन्म संवत् १६४७ से १७७२ तक माना जाता है। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ भावप्रकाश की प्राचीनतम प्रामाणिक प्रति जो संवत् १७५२ की लिखी हुई है सम्प्रदाय में उपलब्ध है। इस प्रकार यदि इस संवत् को भाव प्रकाश का रचना काल मान भी लें तो जनश्रुति के अनुसार परमानन्ददास के १ २ वर्ष उपरान्त यह लिखा गया है। श्री हरिरायजी ने इसे "तीन जन्म की लीला भावना वाली चौरासी वैष्णवन की वार्ता" नाम से लिखा था। कहा जाता है कि उक्त पुस्तक का सम्पादन श्री हरिरायजी के जीवन काल में ही हो गया था। महाप्रभु हरिराय जी १२५ वर्ष की दीर्घायु वाले हुए थे। ये गोस्वामी गोकुलनाथजी के बड़े भाई गोविन्दरायजी के पौत्र एवं कल्याणरायजी के पुत्र थे ये प्रभुचरण गोकुलनाथजी की सेवा और सान्निध्य में रहते थे। ये संस्कृत साहित्य के उद्भट विद्वान और ब्रजभाषा के मर्मज्ञ पंडित थे। अतः उन्होंने वार्ता साहित्य का सम्पादन किया और उस पर भावनात्मक टिप्पणी भी लिखा। मूल वार्ता का इतना विस्तृत विवेचन वे किस प्रकार दे सके यह एक आश्चर्यमयी जिज्ञासा है जो एक भावुक वार्ता स्वाध्यायी को भी अपनी ओर बरबस खींचती है। वे स्वयं कहते हैं कि 'प्रगट

[1] वार्ता के कन्नौजी भाषा के शब्दों के यत्र तत्र स्वाभाविक प्रयोग से और पूर्वी शैली में भी इनका पूर्व का होना पुष्ट होता है।

दिये रस धाम'। और पंडित निर्मलराम भट्ट की उक्ति में 'रहस्य-भाव सर्वथा गोप्य है' इसके उपरान्त भी भावप्रकाश की रहस्यमयी भावना वे किस भाँति लोकगम्य कर सके एक विचारणीय बात है।

परमानन्ददासजी की वार्ता में श्रीहरिरायजी ने उनका 'तोक सखा' के रूप में प्राकट्य बतलाकर निकुंज लीला में सखी रूप में उन्हें 'चन्द्रभागा' बतलाया है। और उसके उपरान्त सात वार्ता प्रसंगों में हरिराय जी ने परमानन्ददासजी का जीवन चरित्र विस्तार से लिखा है। भावप्रकाश में सभी चौरासी वैष्णवों के तीन जन्मों का परिचय दिया है। अतः परमानन्ददास जी के विषय में वे कहते हैं कि वे कन्नौज में कनौजिया ब्राह्मण के यहाँ जन्मे। जिस दिन इनका जन्म हुआ था पिता को बहुत सा द्रव्य मिला अतः उनका नाम 'परमानन्द' पड़ गया। यही नाम उनकी जन्म पत्रिका से भी था। वे शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर पद रचना करते थे। एक बार अकाल पड़ने पर राज्य द्वारा उनका सब द्रव्य हरण कर लिया गया। उन्होंने विवाह नहीं किया। वे गान विद्या में परम चतुर थे। प्रयाग में कपूर क्षत्री ने उनका गान सुना और वे उन्हें आचार्य के पास लाए तभी वे महाप्रभु के शरणापन्न हुए। शरण से पूर्व भगवद् विरह परक पद बनाते थे। जबसे नवनीतप्रिय जी ने उन्हें अंगीकार किया तब से वे बाललीला गान करने लगे। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उन्हें भागवत की अनुक्रमणिका सुनाई और श्रीभागवत रूपी समग्र आचार्यजी ने परमानन्ददास के हृदय में स्थापित किया। अतः उनका हृदय बाल-लीला का सागर है और पद भी उन्होंने असंख्य बनाये। इनके एक पद श्रवण करने से महाप्रभु देहानुसन्धान भूल गये थे। भगवान् के प्रति पहले इनका दास्यभाव था। बाद में सख्यभाव हो गया था। इनकी भक्ति का आदर्श गोपी प्रेम था।

भावप्रकाश का तात्पर्य मूल रूप में निम्नांकित है—

१—परमानन्ददासजी कन्नौज के कुलीन ब्राह्मण घराने में उत्पन्न हुए थे। और बचपन में उन्होंने अच्छी शिक्षा पाई थी।

२—प्रयाग में अडैल नामक स्थान पर महाप्रभु वल्लभाचार्य से उन्होंने दीक्षा प्राप्त की थी।

३—महाप्रभु के साथ वे ब्रज में चले आए और बाललीला परक पदों का कीर्तन करते हुए गोवर्धन के निकट सुरभी कुण्ड पर रहने लगे।

४—उन्होंने सहस्रावधि पद रचे।

———

अन्य साम्प्रदायिक ग्रंथों में परमानन्ददासजी का वृत्त

वार्ता साहित्य और उसके भावप्रकाश के टिप्पण के उपरान्त निम्नांकित साम्प्रदायिक ग्रन्थो मे परमानन्ददासजी का उल्लेख मिलता है —

३—वल्लभ दिग्विजय—

इस ग्रन्थ की रचना गोस्वामी विट्ठलनाथजी के छठे पुत्र श्री यदुनाथजी ने सवत् १६५८ मे की थी। यदुनाथजी का जन्म सवत् १६१५ मे हुआ था वल्लभकल्पद्रुम मे इस ग्रन्थ को भी यदुनाथजी कृत माना गया है। इस ग्रन्थ की पुष्पिका मे इसका रचना काल इस प्रकार दिया है.—

> वसु[८]—बाणे[५]—रसेन्द्वब्दे[१] तपस्य—सितिके रवौ।
> चमत्कारिपुरे पूर्णो ग्रन्थोऽभूत्सोमजा तटे ॥

अङ्कानां वामतो गति के अनुसार ग्रन्थ का प्रणयन काल सवत् १६५८ ठहरता है। इसमे परमानन्ददासजी की चर्चा इस प्रकार मिलती है— 'तत्र सवत् १५७२ द्विसप्तत्युत्तर पञ्चदशशताब्दे महालक्ष्म्या गोस्वामि श्रीविट्ठलनाथाना प्रादुर्भाव सम्भवत्। अथ पुनर्व्रजयात्रा कृता तत्र श्रीगोपीनाथ यज्ञोपवीत महोत्सव समभूत्। ततो जगदीशयात्रायां गङ्गासागर प्राप्ति श्रीकृष्णचैतन्य मिलनम्। रथ यात्रोत्सवो जात। ततो जगदीशात् प्रत्यागमन चाभूत्। ततो हरिद्वार यात्रा तत्र पुनरलर्कपुरे समागमनमभूत्। तत्र कविराज शिक्षण कृतम्। कान्यकुब्ज परमानन्दमनुगृह्य दीक्षादर्शनमचचारितम्।'[१]

अर्थात् 'सवत् १५७२ मे महाप्रभुजी की पत्नी महालक्ष्मी के गर्भ से गोस्वामी विट्ठलनाथजी का प्रादुर्भाव हुआ फिर आचार्य जी ने व्रजयात्रा की। उसके उपरान्त श्री गोपीनाथजी का यज्ञोपवीत महोत्सव हुआ। फिर जगदीश यात्रा और गगासागर का स्नान तथा श्रीकृष्णचैतन्य से मिलन और रथयात्रा का उत्सव पुन वहाँ से लौटना फिर हरिद्वार यात्रा तदनन्तर अडैल मे आगमन। वहाँ कविराज को शिक्षा दान और कान्यकुब्ज के परमानन्ददास पर अनुग्रह करना आदि"। यदुनाथ दिग्विजय से परमानन्ददासजी की दीक्षा सवत् का ठीक से पता चल जाता है। उनका दीक्षा सवत् १५७२ ही ठहरता है।

४—संस्कृतवार्तामणिमाला—

इसके रचयिता श्रीनाथ भट्ट मटेश्र हैं। इनका समय १७ वी सदी का उत्तरार्द्ध या १८ वी शती का पूर्वार्द्ध है।[२] श्री मटेश्र ने ब्रजभाषा की किसी प्राचीन वार्ता प्रति के अनुसार

१ वल्लभदिग्विजय श्रीयदुनाथजी कृत पृष्ठ ५१–५१
दोसौ बावन भक्तों की वार्ता भा० ३ भूमिका पृष्ठ–२

८४ और २५२ वैष्णवों के १२५ प्रसंगों का संस्कृत में अनुवाद किया है। इसमें १७ वीं वार्ता में परमानन्ददासजी की चर्चा की है। इसमें भी उन्हें कन्नौज का कान्यकुब्ज ब्राह्मण बताया है। प्रयाग में अनकपुर अडैल में महाप्रभु ने उन पर अनुग्रह किया और वे ब्रज में निवास करते हुए भगवान की बाल-लीला का गान करते थे।

५—भक्त सखामृत —

इसके रचयिता श्रीप्राणेश अथवा प्राणनाथ कवि थे जो वृन्दावन में निवास करते थे। इनकी उक्त पुस्तक संवत् १७९७ की म्होटा मंदिर भुलेश्वर बम्बई में मौजूद है। इसमें परमानन्ददासजी विषयक उल्लेख इस प्रकार है —

हुए कनौजिया प्रागपनि कन्नउज जनक निवास।
परमानन्द सुरूप सो श्री परमानन्ददास॥
बाल विरमचारी भगत ग्यान बान भण्डार।
करयौ कीरतन हरि सदा स्वामी चरन अधिकार॥
कम्मन सरनागति गहौ हरिपद नेह सनाम।
स्वामी परमानन्द कू सौंपे सरन सुभाय॥
जा सुख लीला पद सुनत बल्लभ भई समाधि।
तीन दौस पाछै उठे, हरि गिरिपति आराधि॥
हरि मदमाते ही रहे सो परमानन्ददास।
जो इन पद समुझावहीं सो न परें भवपास॥
जाइ ओर लीला गावने सौइ-सौइ हें बरसाइ।
हरि लीला पदरचि रुचिर भए भगत सुखदाइ॥
वो परमानन्ददास सो की निधि करें उपाव।
सौन्यु तारें प्रभु तरें बैठि पुष्टिपथ नाव॥
स्वामी परमानन्द भरे, ब्रज में परमानन्द।
'प्रान' बसनि बन बन करे, ब्रज पति आनन्दकन्द॥
[भक्त सखामृत दोहा—४९—५१]

भक्त सखामृत के लेखक प्राणेश महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के समकालीन थे। वे वृन्दावन में रहते थे। प्राणेश इस 'सखामृत' के अन्तर्गत अष्टसखामृत चतुर्थ अमृत है। प्रस्तुत पुस्तक के प्रतिलिपिकार गोवर्धन निवासी ब्रजलाल वैष्णव थे। इनकी प्रति का संवत् १७९७ है जो म्होटा मंदिर भोईवाड़ा में सुरक्षित है।

उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त निम्नांकित साम्प्रदायिक पुस्तकें ऐसी हैं जिनमें परमानन्ददासजी का उल्लेखमात्र मिलता है।

एक दूसरा पद इस प्रकार है—

कुम्भनदास महा रसरूप प्रेम भरे नित परमानन्द ।।
छीतस्वामी गावें सब कोऊ । गावें हरि गुण सूर चतु ।।
कृष्णदास श्री पावन करें । चत्रभुजदास कीर्तन उच्चरें ।।
नन्ददास सदा आनन्द । गुण गावें स्वामी गोविन्द ।।
"रसिक" सदा चरननि राखै । श्रीवल्लभ बानी मुख भाखै ।।

एक स्थान पर वह कहते हैं—

जो जन अष्टछाप गुन गावत ।
चित निरोध होत ताही छिन हरि-लीला दरसावत ।।
सूर सूर सम हृदय प्रकाशत परमानन्द आनन्द बढ़ावत ।
छीतस्वामी गोविन्द गुनगावत तन पुलकित मन भावत ।।
कुम्भनदास चत्रभुजदास गिरि-लीला प्रगटावत ।
तरुण किशोर रसिक नन्द नन्दन पूरन भाव जनावत ।।
नन्ददास कृष्णदास रास रस उलसित पद पद गावत ।
"रसिक" दास जन कहाँ लौं बरने श्रीवल्लभ मन भावत ।।

श्रीगोकुलनाथजी के स्फुट वचनामृत में भागवत चरित सेवकों के नाम लेख बद्ध हुए हैं। यह भक्त नामावली सम्भवतः पुण्यश्लोक भक्तों के प्रातः स्मरण की सुविधा के लिए है। इसमें एक स्थान पर आया है—

ईश्वरोत्तमश्लोकाख्यो राधामाधविनी तथा ।
विट्ठले चासु चतु परमानन्द सूर कौ ।। [श्लोक स १२]

महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य एवं अष्टछाप के अन्य कवि कृष्णदास "अधिकारी" का वसन्तोत्सव वाला पद अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें परमानन्ददासजी की चर्चा मिलती है। इससे कवि के अस्तित्व और उनके समय का ठीक पता चल जाता है। कृष्णदासजी का समय संवत् १५५१ से संवत् १६३६ तक का माना जाता है। अतः परमानन्ददासजी उनके सम सामयिक थे। उनका वसन्त वाला पद इस प्रकार है—

खेलत वसन्त विट्ठलेश राय ।
निज सेवक सुख देयन है आय ।।
श्री गिरधर राजा बुलाय ।
श्री गोविन्दराय पिचकारी लाय ।।

×　　×　　×　　×

×　　×　　×　　×

तहां सूरदास गावत है आय।
परमानन्द ओटें गुसांई साय॥
चतुर्भुज केदार गावत मधाय।
छीतस्वामी बुक्का फेंके आय॥
नन्ददास निरख छवि कही न जाय।
गावें कुंभनदास बीरा बजाय॥
सब गोविन्द बालक छिरकें आय।

×　　×　　×　　×

×　　×　　×　　×

तहाँ कृष्णदास बलिहारी जाय।
सब अपनो मनोरथ करत आय॥

उपर्युक्त पद में आठों ही महानुभावों के नाम आए हैं इससे समसामयिकता स्पष्ट ध्वनित होती है और गोस्वामी द्वारकेशजी का यह छप्पय तो प्रसिद्ध है ही।

सूरदास सो कृष्ण तोक परमानन्द जानो।
कृष्णदास सो रिषभ छीतस्वामी सुबल बखानो॥
अर्जुन कुम्भनदास चत्रभुजदास विशाला।
नन्ददास सो भोज स्वामी गोविन्द श्रीदामाला॥
अष्टछाप आठो सखा द्वारकेस परमान।
जिनके कृत गुन गान करि होत सुजीवन प्रान॥

गुसाईंजी के अनन्य सेवक अलीखान पठान ने अपने एक पद में चौरासी वैष्णवों को स्मरण किया है उसमें परमानन्ददासजी का भी उल्लेख है —

कहि सूर परमानन्द सुवन वासुदेव बखाणिये।
बाबा पु वेणु कृष्ण जादवदास के गुण गाइए॥[1]

×　　×　　×　　×

कुम्भनदास महार समेत जिन प्रति प्रभु सों सखी।
कृष्णदास व्यास कहिए जिन यो माहुर ते बची॥

×　　×　　×　　×

ए भक्त चौरासी भये तब स्याम स्याम गाइए।
बिनती सुनो अलीखान की ब्रजधाम बजकी गाइए॥

१ अलीखान कृत चौरासी वैष्णवों की नामावली नं० १

अष्टसखान की भावना—

यह ग्रन्थ भाव-संग्रह का एक अंश ज्ञात होता है। यह संग्रह द्वारकेशजी द्वारा रचित है। इसका समय संवत् १७५१ से १८ तक माना गया है। इसमें श्री परमानन्ददास सम्बन्धी संक्षिप्त उल्लेख है जो हरिरायजी के भावप्रकाश से मिलता-जुलता है। अपने ग्रन्थ अष्टसखा तथा अष्टदर्शन भावना में वे लिखते हैं—

'अष्टसखा के पद दोहा लिख्यते—

प्रभु के श्रीअंग में अष्टसखा—

(१) सूर स्याम वाणी बिलसैं।
कमल नयन गोविन्द बसावैं॥
श्रवन परमानन्द जु भावै।
चतुर्भुजदास वचन कर गावैं॥
कुंभनदास हृदय स्याम भावै।
छीतस्वामी कटिभाग दिखावैं॥
उदर लीला नन्ददास पोखावैं।
कृष्णदास लीला चरण पहुंचावैं॥
ए लीला कोई पार न पावैं।
पद अधिक उमग करि गावैं।
श्री द्वारकेश प्रभु बलि जावैं।

भगवत् शृङ्गार में अष्टसखान की भावना—[श्री द्वारकेशजी कृत]

सूर स्याम सिर पाग बिराजैं।
कृष्णदास मुकुट मणि राजैं॥
गोविन्द स्वामी टिप्पारी छाजैं।
कुंभनदास कुल्लह सिर भ्राजैं॥
चतुर्भुजदास सेहरो सिर साजैं।
ग्वार पगा परमानन्द बिराजैं॥
पेंडा नद धनद बन भाजैं।
दुमालो छीत स्वामी बिराजैं॥
नित्य लीला मगन ह्वै गाजैं।
दर्शन करता भावरस भाजैं॥
द्वारकेश प्रभु सदा बिराजैं।

(१०) सम्प्रदायेतर अन्य ग्रन्थ

ऊपर जिस सामग्री पर विचार किया गया है वह सब सामग्री संप्रदाय से संबंधित है। उसमें परमानन्ददासजी की चर्चा कहीं थोड़ी विस्तृत और कहीं अत्यन्त संक्षेप में उपलब्ध होती है। अब यहाँ उस सामग्री पर भी विचार किया जायगा जो संप्रदायेतर है और जिसमें परमानन्ददासजी की चर्चा मिल जाती है।

(क) भक्तमाल—

इस ग्रन्थ की रचना सुप्रसिद्ध भक्त नाभादासजी ने वि. सं. १६६९ के आस-पास की थी। इसमें चतु:सम्प्रदायों के भक्तों के नामोल्लेख के अलावा अनेक विशिष्ट भक्तों का भी परिचयोल्लेख मिलता है। इस ग्रन्थ पर भक्तवर प्रियादासजी ने प्रायः १   वर्ष बाद टीका (कवित्त) की है। परमानन्ददासजी का उल्लेख भक्तमाल में इस प्रकार मिलता है—

ब्रज बधू रीति कलियुग विषै परमानन्द भयौ प्रेमकेत।
पौगंड बाल कैशोर, गोपलीला सब गाई।।
अचरज कहा यह बात हुती पहिलौ जु सगाई।
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमांच रैनदिन।।
गदगद गिरा उदार स्याम सोभा भीज्यौ तन।
सारंग[1] छाप ताकी भई श्रवन सुनत आवेस देत।।
ब्रजबधू रीत कलियुग विषै परमानन्द भयौ प्रेमकेत।।

भक्तमाल में इसके अतिरिक्त तीन अन्य परमानन्ददासों की चर्चा और की गई है उनमें एक तो श्रीधर स्वामी के गुरु संन्यासी थे। दूसरे जोशी सिकारी थे जिनके द्वार पर धर्म की ध्वजा फहराती थी। तीसरे टीला जी के शिष्य साहु के पुत्र—परमानन्ददासजी जगत् विख्यात योगी थे। हमारे परमानन्द सर्व प्रथम परमानन्द हैं बाद के ये तीन भिन्न हैं।

(ख) भक्तनामावली—

ये ध्रुवदास रचित है। इसमें परमानन्ददासजी के विषय में लिखा है —

परमानन्द और सूर मिल गाई सब ब्रज रीत।
भूलि जात विधि भजन की सुनि गोपिन की प्रीत।।

---

[1] भक्तमाल नवल किशोर प्रेस नवीन संस्करण छप्पय ४०९ पृष्ठ, ५२

(ग) नागरसमुच्चय—

ये ग्रन्थ कृष्णगढ़ (राजस्थान) नरेश महाराज सावंतसिंह उपनाम—नागरीदासकृत—है। इसमें उन्होंने अत्यन्त भावुकता के साथ अपने पूर्ववर्ती भक्तों की चर्चाएं की हैं। ये चर्चाएं भक्ति-सुलभ-भावुकता के कारण अतिरंजित भी हो गई हैं। परमानन्ददासजी के विषय में उसमें लिखा मिलता है —

'श्रीमद् वल्लभाचार्यजी सो काहू सेवक ने कही जु राज! श्रीवृन्दावन में एक एक वैरागी भौंर परमानन्ददास कीर्तन करें हैं। राज! [ताहि] सुनिए। तब श्री आचार्य जी गोप्य पधारके परमानन्ददास के कीर्तन सुने। तहाँ विरह कीर्तन सुनि के आवेश स्थित भए। तहाँ ते सेवक उठाइ ले आए—सात आठ दिन भी प्रसाद लैबे की देहकी कछु सुधि रही नहीं। अतरंग रहे। सो वह पद —

"हरि तेरी लीला की सुधि आवै।" पद प्रसंगमाला पृष्ठ—८१

एक स्थान पर नागरीदासजी ने परमानन्द आदि अष्टछापी भक्तों का बड़े आदर के साथ स्मरण करते हुए उन्हें अपने लिए व्यास सदृश आदर्श रूप माना है—

मेरे भेई वेद व्यास।
श्री हरिवंश व्यास मदाकर परमानन्ददास॥

नागर समुच्चय में इतना ही उपलब्ध होता है कि परमानन्ददास उच्च कोटि के कीर्तनकार पद रचयिता और भावुक भक्त थे। वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वैसे नागरसमुच्चय के अधिकांश वर्णन अतिरंजित हैं इसी प्रकार महाराज रघुराजसिंह कृत "रामरसिकावली" और कवि मियाँसिंह कृत भक्तविनोद में परमानन्ददासजी का थोड़ा बहुत उल्लेख मिल जाता है।

(घ) व्यासवाणी–

यह ग्रन्थ श्री हरिरामजी व्यास की रचनाओं का संग्रह है। व्यासजी ओरछा के निवासी थे। इनका कविता-काल संवत् १६२ के लगभग माना जाता है। इन्होंने अपने पदों में दो तीन स्थानों पर अपने पूर्ववर्ती कवियों का बड़े सम्मान के साथ स्मरण किया है। पदप्रसंग माला में उनके विषय में लिखा मिलता है—

'व्यास जू श्रीवृन्दावन रहे। सो एक समै की एकदिन निर्तक वैष्णुं रसिकन की सतिसंग रस सुख समाज सब मिटि गयो। भले-भले वैष्णू अन्तरध्यान भए यातें बाह्य सुख भगवत सम्बन्धी सब जात रह्यो। केवल भावना में अन्तरंग चित्त रहे तब लौं ही सुख। फिर बाहर चित्त आवै तब महा दुख व्यापै तब व्यास जू एक नयो पद बनाय वैष्णवन के विरह में आसक्त रोवत फिरत डोलें। जहाँ तहाँ कुञ्ज गलीन में ऐसे कितेक दिन विरह दुख में बिताए यह पद प्रसिद्ध भयो सो यह यह पद —[३]

---

१ देखो—नागर समुच्चय पृष्ठ १ ६ ज्ञानसागर प्रेस—बम्बई संस्करण सं १९५५
२ देखो—राम रसिकावली खेमराज श्री कृष्णदास संवत् १९७१
३ पदप्रसंगमाला—ज्ञान सागर प्रेस बम्बई, संवत् १९९६

"बिहारीहिं स्वामी बिनु को गावै।
बिनु हरिवंशहिं राधावल्लभ को रसरीति सुनावै॥
रूप सनातन बिनु को वृन्दावनि माधुरी पावै।
कृष्णदास बिनु, गिरधरजू को को अब लाड़ लड़ावै॥
मीराबाई बिनु, को भक्तनि पिता जानि उर लावै।
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु, को अब बन्धु कहावै॥
परमानन्ददास बिनु को अब लीला गाइ सुनावै।
सूरदास बिनु पद रचना कौ कौन कविहिं करि आवै॥

× × ×

'व्यास' दास इन बिन को अब तनकी तपन बुझावै॥"[1]

एक और स्थल पर वे भक्तों के विरह से अभिभूत होकर लिखते हैं—

सांचे साधु जु परमानन्द।
जिन हरिजू सौं हित करि जान्यौ और दुखद्वन्द।
जाकौ सेवक कबीर धीर अति सुमति सुर सुरानन्द॥
ते रैदास उपासक हरि के सूर-सु परमानन्द।

अपने पूर्ववर्ती भक्तों को अपने ही कुटुम्ब में समाविष्ट करते हुए व्यासजी परमानन्ददास जी को भी उसमें सम्मिलित कर लेते हैं। वे लिखते हैं—

इतनौ है सब कुटुम्ब हमारौ।
सैन धना अरु नामा पीपा और कबीर रैदास चमारौ।
रूप सनातन जीव को सेवक मगल भट्ट सुधारौ॥
सूरदास परमानन्द मेहा मीरा भक्त बिचारौ।

× × ×

इहि सब चलत स्याम स्यामा के व्यासहिं बोरी मार्गहिं तारौ।

(ड) भक्तनामावली (भगवतरसिक कृत)

श्रीभगवतरसिक का काल १८ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इनकी भक्तनामावली में परमानन्ददासजी का उल्लेख आया है—

---

१ हमारो व्रत धर्म व्यासजी पृष्ठ ११७

२ वही पृ ११

हमरौं इन साघुन सो पंगति

× × =

पयदास नामादि सबी मे सबै मार्वे राम सीता को।

सूर, मदनमोहन नरसी बसि तस्कर नवनीता को ॥

माधौदास गुसाईं तुलसी कृष्णदास परमानन्द।

विस्नुपुरी मीबर मधुसूदन पीपा गुरु रामानन्द ॥

निष्कर्ष—

उपर्युक्त ग्रन्थो मे भाई मत्कर परमानन्ददासजी की चर्चा के आधार पर इतना निरापद रूप से कहा जा सकता है कि—

१—परमानन्ददासजी कृष्णोपासक एक उच्च कोटि के भक्त हुए थे जिन्होंने अत्यन्त ही सरल मधुर पदो मे भगवान् कृष्ण की बाललीला का गान किया है।

वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य पुष्टिमार्ग के अनुयायी और महाकवि सूरदास के समकालीन थे।

३—उनके पद बाललीला सम्बन्धी हैं। कीर्तन सेवा ही उनका काम था। सगुण भक्ति उनको प्रिय थी।

उपर्युक्त सामग्री पर एक विहगम दृष्टि डालने से हम निम्नाङ्कित निर्भ्रान्त निष्कर्ष पर पहुँचते हैं —

१—परमानन्ददास जी कृष्णोपासक कवि और पुष्टि सम्प्रदायी थे।

२—वे सूर के सम सामयिक और वल्लभाचार्य के शिष्य थे।

३—वे पद रचना किया करते थे और भगवान के समय तन्मय होकर कीर्तन।

आधुनिक सामग्री—

उक्त सामग्री के अतिरिक्त परमानन्ददास विषयक आधुनिक सामग्री पर जब हम विचार करते हैं तो उसे भी तीन भागो मे सुविधा से बाँट सकते हैं।

१—खोज रिपोर्ट—[ना प्र स]

२—हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ।

३—लेख आलोचना निबन्धादि।

यहाँ उक्त तीनों शीर्षकों की आधार सामग्री पर विचार प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) खोज रिपोर्ट—

नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित सन् १९२४ १९२५ एवं १९२८ की खोज रिपोर्ट The Twelth report on the search of Hindi Manuscripts मे परमानन्ददासजी के विषय मे लिखा है—

Parmanand Das wrote Dan Lila and Dadh Lila. He has been noticed before in S. R. 1806 – 08 No 203 He was a discple of Vallabha-charya and flourished about 1620 A

अर्थात् परमानन्ददासजी ने दानलीला और दधिलीला की रचना की। इनका हवाला १९ ६–८ की खोज रिपोर्टों मे मिल जाता है। ये वल्लभाचार्य के शिष्य थे और १९२ के आस पास तक विद्यमान थे।

उक्त खोज रिपोर्ट के अतिरिक्त १९ २ की एक और खोज रिपोर्ट है। जिसमे परमानन्द कृत दानलीला का नाम भर दिया है परन्तु इसके अतिरिक्त उसमे अन्य कोई विवरण नही। इस दानलीला का सुरक्षा स्थान दतिया राजकीय पुस्तकालय बतलाया गया है।

दूसरी खोज रिपोर्ट जो १९ ६ तथा १९ ८ की है उसमे परमानन्ददास कृत ध्रुव चरित्र हनुमन्नाटक तथा 'हितहरिवंश की जनमबधाई' आदि ग्रन्थ बताए गए हैं। परन्तु खोज रिपोर्टों मे न तो इनके उद्धरण हैं न यहाँ परमानन्ददास का कोई विशेष परिचय है। किन्तु लेखक ने स्वयं दतियाराज पुस्तकालय मे जाकर परमानन्ददासजी के नाम पर कही जाने वाली इन पुस्तकों का पता लगाया तो वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि वहाँ पुष्टिमार्गीय परमानन्द कवि की दानलीला नाम की कोई पुस्तक विद्यमान नही है न ऐसे अष्टछापी किसी कवि के किसी ग्रन्थ का संग्रह है।

वस्तुत दतियाराज वाले परमानन्द और थे। एक परमानन्द अजयगढ रियासत वाले हैं जो १९ के आस-पास हुए हैं। इनका हनुमन्नाटक-दीपिका नामक ग्रन्थ है। दूसरे एक और परमानन्द हुए हैं जो पद्माकर भट्ट थे। ये दतिया मे स १९१ के आस-पास रहते थे। ये साधारण श्रेणी के कवि माने गए हैं। इनके एक कवित्त का नमूना—

> कारे कवि मगन जुन्हाई-सी बिलोचन पै
> तापर जुन्हाई जुरी दीपति रही समय आदि।

इस शैली से हमारे पुष्टिमार्गीय भक्त परमानन्ददासजी का कोई सम्बन्ध नहीं। राजकीय पुस्तकालय की सूची मे कहीं पर भी उक्त पुस्तकों का उल्लेख नहीं। अत उक्त खोज रिपोर्टों का आधार क्या है यह स्वयं खोज का विषय है। फिर नागरी प्रचारिणी सभा की १९२४-२५ की खोज रिपोर्ट मे परमानन्ददासजी की उपस्थिति काल का समय भी बड़ा स्थूल और अपूर्ण है। खोज रिपोर्ट के आधार पर परमानन्ददासजी की रचनाओं की

प्रामाणिकता तो आगे चलकर की जायगी। यहाँ तो इतना ही प्रयोजन है कि विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में परमानन्ददासजी का व्यक्तित्व हुआ था और उन्होंने भक्ति-पूर्वक कृष्ण लीला का गान किया था।

(ख) हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ—

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में परमानन्ददासजी का उल्लेख अत्यन्त ही संक्षिप्त और चलता सा हुआ है। प्रामाणिकता के साथ जो तथ्य अपेक्षित हैं वे किसी भी इतिहास ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं। फिर भी परमानन्ददासजी का नाम उल्लेख निम्नांकित हिन्दी साहित्य के इतिहासों में मिलता है।

(१) सर्व प्रथम फ्रेंच लेखक गार्सां द तासी का 'इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुए ऐंदुस्तानी' नामक फ्रेंच ग्रन्थ।[१]

(२) शिवसिंह सेंगर लिखित शिवसिंह सरोज।

(३) सर जार्ज ए० ग्रियर्सन लिखित—'वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' ये तीन प्राचीन इतिहास ग्रन्थ हैं।

इनके परवर्ती हिन्दी साहित्य के इतिहासों में मिश्रबन्धुओं का मिश्रबन्धुविनोद, स्व० राम नरेश त्रिपाठी का हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० श्यामसुन्दरदासजी का हिन्दी भाषा और साहित्य। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास, श्री ब्रजरत्नदास का हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा का हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, कृष्णशंकर शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी का हिन्दी साहित्य आदि।

उक्त सभी इतिहास ग्रन्थों में परमानन्ददासजी के विषय में अत्यन्त संक्षिप्त उल्लेख मिलते हैं। यहाँ पर प्रमुख इतिहास ग्रन्थों के उल्लेखों के उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

(१) गार्सां द तासी लिखित—इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई ए हिन्दुस्तानी[२] में लिखा है। परमानन्द या परमानन्ददास (स्वामी) के रचयिता थे। (१) लोकप्रिय धार्मिक गीतों के जो आदि ग्रन्थ जीवा भाग में सम्मिलित हैं और जो निम्नलिखित रचनाओं की भाँति हिन्दी में हैं। (२) दधि-माला (दही लीला) कृष्ण द्वारा मथुरा की गोपियों के साथ आगरा (१८६४ १२ छोटे अठ पेजी पृष्ठ) और (बनारस—१८६६ १ १२ पेजी पृष्ठ)

(३) नाग-लीला—सर्प लीला—अर्थात् कृष्ण का बंसी सहित शेष पर लटना (बनारस ८ बारह पेजी पृष्ठ)

(४) दान लीला—सन्तोष देने की माता कृष्ण की अन्य क्रीड़ाएँ (आगरा १८६४, १६ बारह पेजी पृष्ठ) और लखनऊ १८६७ केवल ८ पृष्ठ)

१ हिन्दी अनुवाद डा० लक्ष्मीसागर कृत प्रकाश [illegible]

२ वही

तासी ने परमानन्ददासजी के न तो जन्म संवत् का न स्थान का पता दिया है। केवल उनकी रचनाओं की चर्चा भर की है और वह भी प्रमाण निरपेक्ष। अतः तासी का उल्लेख नितान्त अल्प सा और अपर्याप्त है।

(२) सर जार्ज ए. ग्रियर्सन ने अपने इतिहास 'दी मोडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' मे कवि परमानन्ददासजी के विषय मे लिखा है Parmanand of Braj flourished in 1550 A. D. अर्थात् ब्रज के परमानन्द सन् १५५० मे हुए। केवल इस एक पंक्ति के अतिरिक्त ग्रियर्सन के इतिहास मे कवि के विषय मे कुछ अधिक नहीं मिलता। अतः यह नहीं के बराबर है। इससे उसके अस्तित्व का प्रमाण मात्र मिलता है।

(३) शिवसिंह सरोज—यह प्राचीन इतिहास ग्रन्थ है। इसको आधार मानकर *हिन्दी साहित्य के सभी परवर्ती लेखक चले हैं।* इसमे दो खण्ड हैं। पूर्वार्द्ध मे अकारादि क्रम से कवियो के पद अथवा कविताएँ हैं, और उत्तरार्द्ध मे कवियो का संक्षिप्त विवरण। पूर्वार्द्ध मे परमानन्ददासजी के गंगा विषयक पद को लेकर उनकी प्रतिभा का नमूना प्रस्तुत किया गया है।[1]

शिवसिंह सरोज के उत्तरार्द्ध मे लिखा है—परमानन्ददास ब्रजवासी थे। वल्लभाचार्य के शिष्य संवत् १६०१ मे उपस्थित। आगे लिखा है-इनके पद राग सागरोद्भव मे बहुत हैं और और इनकी गिनती अष्टछाप मे है।[2]

सरोज का विवरण भी सूची जैसा है। उसमे उन्हें ब्रजवासी लिखा है और समय सं० १६०१ बताया गया है। न रचनाओ की चर्चा है न पद संख्या की बात साथ ही कवि विषयक अन्य कोई भी जिज्ञासा शान्त नहीं होती।

(४) मिश्रबन्धु विनोद अथवा हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा [कवि कीर्तन—]

'परमानन्द (५४) ये महाराज कान्यकुब्ज ब्राह्मण कन्नौज के रहने वाले थे। इनकी भी गणना अष्टछाप मे थी। ये महाराज श्री स्वामी वल्लभाचार्य के शिष्य थे। इनकी कविता बहुत मनोरंजक बनती थी। आपने बालचरित्र और गोपियो के प्रेम का बहुत वर्णन किया है। इनका एक पद खड़ी बोली मे भी हमने देखा है। इनका रचा हुआ एक ग्रन्थ परमानन्दसागर हमारे सुनने मे आया है। और इनके स्फुट छन्द बहुत से मन तम पाये जाते हैं इनका एक पद सुनकर वल्लभाचार्यजी एक बार ऐसे प्रेमोन्मत्त हो गए कि कई दिन तक देहानुसंधान रहित

1. पदमेसरि देवी श्रुति करि बरनत वेदी बने।
 अगम अगाध अपार अनुपम ...
 मज्जन पान करत के प्राणी मिटिय ताप दुख भये।
 तीरथराज प्रयाग प्रगट भयो जग सभी जसुना देवी रूप ॥
 ...
 ... परमानन्द ... [शिवसिंह सरोज पृष्ठ १८१ न. कि. प्रेस १८८३]

2. शिवसिंह सरोज नवल किशोर प्रेस [१८८३ संस्करण] पृष्ठ ४४८

रहे। इससे एवं इनके छन्दों के पढ़ने से विदित होता है कि इनमें तल्लीनता का गुण खूब था। इनके बनाये हुए परमानन्ददासजी की पद और दानलीला' सं० १६ २ की खोज में मे मिले हैं। आपका समय १६८ के लगभग था। ना प्र० ॥ प म इनका एक ग्रन्थ ध्रुव-चरित्र और मिला है। चौरासी वैष्णवों की वार्ता में भी आपका वर्णन किया गया है। इनकी रचना म धारावाहिता भी है। हम इनको 'तोष' कवि की श्रेणी में रखेंगे।

उदाहरण —

देखोरी यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है।
सुन्दर वदन कमल-दल-लोचन-देखत चन्द लजाया है॥

तथा

राधेजू हारावलि टूटी।
उरज कमल-दल माल मरगजी बाम कपोल अलकलट छूटी।

तथा

कहा करौं बैकुण्ठहि जाय।
जहाँ नहिं नन्द जहाँ न जसोदा जहँ नहिं गोपी-ग्वाल न गाय॥

'मिश्रबन्धु विनोद' अपने पूर्ववर्ती आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहासों के मुकाबले में कुछ ठिकाने पर है। इसे हम हिन्दी साहित्य के इतिहासों में प्रथम और व्यवस्थित इतिहास मान सकते हैं।[1]

अत इस आधार पर उसकी त्रुटियाँ अथवा थोड़ी बहुत अप्रमाणिकता क्षम्य समझी जा सकती है। मिश्रबन्धुओं के विवरण में परमानन्ददासजी का समय गलत दिया गया है। उसी प्रकार 'तोष सपा' के साम्प्रदायिक भावनात्मक रहस्य को न समझ कर उन्हें तोष कवि की श्रेणी में रखने की बात कह दी गई है। साथ ही ग्रन्थों की प्रामाणिकता की भी ठीक से चर्चा नहीं की गई।

५—हिन्दी साहित्य का इतिहास [लेखक—प० रामचन्द्र शुक्ल]

ये परमानन्ददास जी वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे और अष्टछाप में थे। ये संवत् १६ ६ के आसपास वर्तमान थे। इनका निवास स्थान कन्नौज था। इसी से यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण अनुमान किये जाते हैं। ये अत्यन्त तन्मयता के साथ बड़ी ही सरस कविता करते थे। कहते हैं कि इनके किसी एक पद को सुनकर आचार्य जी कई दिन तक तन-बदन की सुधि भूले रहे। इनके फुटकल पद कृष्ण भक्तों के मुख से प्राय सुनने में आते हैं। इनके ८३५ पद 'परमानन्द सागर' में हैं। आदि

आचार्य शुक्लजी की गणना व्यवस्थित और प्रामाणिक काम करने वालों में है। उन्होंने सूर की जैसी सरस और व्यवस्थित आलोचना की है वैसी कृष्ण भक्त अन्य किसी कवि की नहीं। परमानन्ददासजी के विषय में सर्व विदित एक दो बातें ही उन्होंने कह कर सन्तोष कर लिया है उनके समय निर्धारण में उन्होंने खोज रिपोर्ट परम्परा का ही आधार मान कर काम चला लिया है और उनके ग्रन्थों का कोई उल्लेख नहीं किया।

---

१ मिश्रबन्धु विनोद हि दी ग्रन्थ प्रसारक मंडल १६ ... पृ सं ... ९९
२ हि दी साहित्य का इतिहास प० राम चन्द्र शुक्ल पृ० १६५—सं० २००७ १९९७

८—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास [लेखक—डा० रामकुमार वर्मा]

जैसा कि इस ग्रन्थ के नाम से विदित होता है यह आलोचनात्मक इतिहास है इसमें अष्ट प्रमुख कवियों का भांति सूर पर तो पर्याप्त आलोचना की है पर परमानन्ददास जी के विषय में केवल इतना ही लिखा है —"इनका समय १६०७ के आसपास है। वल्लभाचार्य के प्रिय शिष्यों में से थे। इनकी रचना बड़ी मधुर और सरस हुआ करती थी इनकी कविता का विशेष गुण तन्मयता है। इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं।

१—ध्रुव चरित्र और २—दानलीला में इनके अतिरिक्त इनके पदों का भी एक संग्रह पाया जाता है।"[1]

डा० वर्मा ने भी पूर्व इतिहासकारों के कथन की पुनरावृत्ति मात्र करदी है और और पतिया के तथा ब्रज के अष्टछापी परमानन्द को मिलाकर भ्रांति और भी बढ़ादी इतने संक्षिप्त और विगत तथ्य देकर भ्रांति की धारा को पोषण ही मिला है स्पष्टता नहीं आ पाई।

९—हिन्दी साहित्य—[लेखक—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी]

इसमें द्विवेदीजी ने जहाँ अष्टछाप के कवियों का चर्चा की है वहाँ परमानन्ददास जी का परिचय इस प्रकार दिया है— परमानन्ददासजी बहुत उच्च कोटि के कवि थे। एक बार इनकी एक रचना सुन कर महाप्रभु कई दिन तक बेसुध रहे। इनकी पुस्तक 'परमानन्द सागर' प्रसिद्ध है कहते हैं कि इसमें भी सवालाख पद थे। परन्तु खोज से जो प्रति प्राप्त हुई है उससे ८३५ ही पद हैं इनके पदों में भाषा का लालित्य दर्शनीय है इस प्रकार महाप्रभु वल्लभाचार्य के जिन शिष्यों को अष्टछाप की मर्यादा मिली थी। उन सब में इनका विशिष्ट व्यक्तित्व दिखाई देता है।[2]

आचार्य द्विवेदीजी ने अपने ग्रन्थ के पाद टिप्पणी में 'परमानन्दसागर' की एक प्रति का संकेत किया है। जो कि श्री रामचन्द्र त्रिवेदी जयपुर वालों के पास है। इसका समय संवत् १८१४ लिखा है उसी प्रकार 'दानलीला' की भी चर्चा की है। इसका स्थान 'इसली प्रेस दिल्ली समय सन् १९१८ है। इन रचनाओं की प्रामाणिकताओं के विषय की चर्चा आगे की जायगी परन्तु आचार्य द्विवेदीजी ने दोही सावधानियाँ बरती हैं। एक तो वे परमानन्ददासजी के जन्म संवत के पचड़े में नहीं पड़े हैं दूसरे पद संख्या भी उन्होंने नहीं दी है जितनी तबतक उपलब्ध थी।

हमारा हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार—[लेखक भवानीशंकर शर्मा]

यह नवीनतम इतिहास ग्रन्थ है। इसमें भी परमानन्ददासजी को आचार्य वल्लभ के शिष्य कहा गया है और उनका समय संवत १६०६—७ के लगभग दिया है।[3]

उपर्युक्त इतिहास ग्रन्थों के अतिरिक्त परमानन्ददासजी के विषय में आलोचनात्मक ग्रन्थ या फुटकर लेख पत्र पत्रिकाएं मिलती हैं वे इस प्रकार है —

1. हि० सा० का आलो० इति० पृ० ३८४ संस्क० ११
2. दृष्टव्य हि० सा०—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० १८८—१८९
3. देखो हमारा हि० सा० और भाषा परिवार पृ० २११

प्राचीन बाह्य साधार तथा आधुनिक बाह्य साधारों के अन्तर्गत अष्टछाप संबंधी सभी सामग्री की चर्चा है। फिर तृतीय अध्याय में सभी कवियों की जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। चौथे अध्याय में इन कवियों की रचनाओं पर विचार किया गया है।

'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' के द्वितीय भाग में गुप्त जी ने दार्शनिक विचार संबंधी अष्टछापी कवियों के पद देते हुए उनकी संक्षिप्त आलोचना की है और भक्ति तथा काव्य समीक्षा की है परन्तु इन समस्त प्रसंगों में उनका आधार वार्ता और भाव प्रकाश ही रहा है।

हाँ इतना अवश्य है कि डा. गुप्त ने अपने ग्रन्थ के दोनों खण्डों में अष्टछाप के सभी कवियों की चर्चा करके आगे आने वाले समानधर्माओं के लिये पथ प्रशस्त अवश्य बना दिया है। इस पुस्तक में परमानन्ददासजी की चर्चा पहली बार आधुनिक आलोचना पद्धति के मानदण्डानुसार उपलब्ध होती है पर अत्यन्त संक्षेप में। क्योंकि डा. गुप्त को तो आठों ही कवि महानुभावों पर कार्य करना था।

६—अष्टछाप पदावली [लेखक—डा. सोमनाथ गुप्त]

इसमें केवल पद ही पद हैं। परमानन्ददासजी की जीवनी के संबंध में कुछ भी नहीं। पद संख्या लगभग १२१ के है।

निम्नांकित इतिहास पुस्तकों में परमानन्ददासजी का उल्लेख मात्र मिलता है—

१—हिन्दी साहित्य की भूमिका आचार्य हजारीप्रसादजी द्विवेदी पृष्ठ ९२ पर।

२—हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास-कृष्ण शंकर शुक्ल पृष्ठ—१८ पर।

३—हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास—श्रीगुलाबराय पृष्ठ ६३ ६४ संस्करण १४।

४—हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक चर्चा-श्री गंगाराम पृष्ठ-५ ।

५—ब्रजमाधुरी सार [संपादक वियोगी हरि पृष्ठ १११] परमानन्ददास पर उनका एक अपना छप्पय भी है।[1]

इस प्रकार परमानन्ददासजी पर आज तक कोई स्वतन्त्र पुस्तक अथवा परमानन्दसागर का कोई सुसम्पादित संस्करण प्रकाश में नहीं आ सका है। जो कुछ भी उपलब्ध होता है उसमें अष्टछाप नाम से अन्य सातों कवियों के सम्मिलित वार्ता के आधार पर चर्चा मिलती है। अतः उनके विषय में तर्कपूर्ण निर्णय और विश्वसनीय निष्कर्षों के साथ एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का अभाव ही बना रहा। और यह अभाव सूर के अतिरिक्त लगभग सभी अष्टछापी कवियों के साथ है।

---

१ ब्रजनिधि-नन्दन रसिक कवि पद-रचना नेमी
गिरिधारन श्रीनाथ सगा वल्लभ पद प्रेमी ॥
नव रस नवधा भक्ति माधुरता भूषन
कविता-रस सर्वस्व भाँति गाये बहु दूषन ॥
नित रहत प्रेम में रंगमगो ब्रजवल्लभ के धाम
सुचि अष्टछाप को भक्त कवि श्री परमानन्ददास

२ [illegible] संस्करण के २० [illegible] में संस्करण निकला है जिनमें १४ के लगभग पद हैं।

फुटकल लेख तथा निबंधादि —

फुटकल लेखो और आलोचनात्मक निबन्धो के रूप मे हमे निम्नांकित सामग्री उपलब्ध होती है।

१—सुधा—पौषी पूर्णिमा सं. १९९ लखनऊ। संपादक दुलारेलाल भार्गव [परमानन्ददास और परमानन्दसागर]

इसमे उनकी संक्षिप्त जीवनी और परमानन्दसागर की प्रतियो का हवाला है।

२—कल्याण-गीता प्रेस गोरखपुर—भक्त-चरितांक' जीवनी भाग-पृष्ठ-११३-११४

३—'ब्रजभारती' [मासिक] संपादक कृष्णदास मथुरा-संवत् १९८९-९१ इनमे केवल पद भाग उपलब्ध होते हैं।

४—भारतीय सुधा-वर्ष १ अंक १ २, ३ ४ इनमे भी पद संग्रह उपलब्ध होता है।

५—पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ [परमानन्दसागर परमानन्ददास] लेखक प्रभुदयाल मीतल।

इस लेख मे उनकी जीवनी को वार्ता पर ही आधारित है—दी गई है। इन् तथ्यो को तर्क सहित निर्णय करने की चेष्टा की गई है परमानन्दसागरो की प्रतियो का परिचय एवं पद संकलन का क्रम भी दिया है इसके उपरांत पदो का काव्य सौष्ठव दिखाने के लिए ४१ ४२ पद नमूने के तौर पर दिए हैं।

उपर्युक्त भारतीय विद्वानो के परमानन्ददास विषयक उल्लेखों के अतिरिक्त एक दो विदेशी विद्वानो ने भी भारतीय साहित्य की चर्चा करते समय परमानन्ददासजी का नामोल्लेख किया है। उनमे ग्रियर्सन का नाम ऊपर दिया जा चुका है। यहाँ 'एफ ई की' का जिन्होने 'हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर' लिखी है उद्धरण दिया जाता है।

The desciples of V llabhacharya who are included in the Ashta chhap were Surdas Krishnadas Payahari Pa manodDas and Kumbhandas.

अर्थात् वल्लभाचार्य के शिष्य जो अष्टछाप मे गिने जाते है —सूरदास कृष्णदास परमानन्ददास और कुम्भनदास थे।

यहाँ यह नही भूलना चाहिए कि F E Keay महोदय ने भूल से कृष्णदास पयहारी को भी अष्टछाप मे सम्मिलित कर लिया है। और अष्टछाप वाले कृष्णदास तथा पयहारी कृष्णदास को एक ही समझ लिया है।

सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री के आधार पर कवि के जीवन वृत की रूपरेखा

उपर्युक्त समस्त उद्धरणों से परमानन्ददास का अस्तित्व उनका वल्लभाचार्य का शिष्य होना तथा उनका उच्च कोटि का भक्त एवं गायक होना आदि तो निस्संदिग्ध रूप से पुष्ट हो जाता है परन्तु उनका जन्म संवत् दीक्षा काल पद संख्या पद रचना काल तथा गोलोकवास आदि की प्रामाणिक तिथियाँ नही मिलती। न उनके ग्रन्थो के संबंध मे उपर्युक्त सभी उद्धरण एक मत हैं। अत उनकी जीवनी के प्रामाणिक और निश्चित तथ्यो के

आधार पर उनके चरित्र निर्णय की आवश्यकता बनी रह जाती है। अतः अन्तर्बाह्य साक्ष्यों का समन्वय कर उनके जीवन चरित्र की रूप रेखा का स्वरूप कुछ इस प्रकार निर्णय किया जा सकेगा।

१–(क) जाति—

परमानन्ददासजी एक कुलीन अकिंचन कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। यद्यपि स्वयं उन्होंने अपनी जाति का कहीं उल्लेख नहीं किया है परन्तु आचार्य की शरण में आने से पूर्व वे सेवक बनाते थे। और दीक्षा देने का अधिकार कुलीन तपस्वी ब्राह्मणों को ही होता है। अतः वे अवश्य उच्च कुलोद्भव ब्राह्मण थे जो शिष्य बनाया करते थे।[१] परन्तु कवि को अपने विप्रत्व अथवा कुलीनत्व पर लेशमात्र अभिमान नहीं था। वह तो भगवद्भक्ति को ही कुलीनता का लक्षण मानता था।[२]

(ख) नाम—

कवि का नाम परमानन्द था। बड़े होकर और शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर लेने पर जब सेवकों को दीक्षा देने लगे तो 'परमानन्द स्वामी' कहलाने लगे।[३] परन्तु इनके काव्य में सर्वत्र परमानन्ददास परमानन्द परमानन्द स्वामी दासपरमानन्द नाम मिलते हैं।

(ग) स्थान—परमानन्ददासजी का स्थान कान्यकुब्ज अथवा कन्नौज है। इस बात की पुष्टि वार्ता से और भावप्रकाश से तथा सभी इतिहास ग्रन्थों से होती है। परमानन्ददासजी यहीं से मकर स्नानार्थ प्रयाग गये थे। कन्नौज से प्रयाग का सीधा मार्ग है भी। यह स्थान प्राचीन काल से विद्वानों का स्थान रहता आया है। नैषधकार श्रीहर्ष यहीं के राज पंडित थे। जैसा कि डा. गुप्त ने अपने ग्रन्थ अष्टछाप वल्लभसम्प्रदाय में लिखा है कि वल्लभाचार्यजी की यहाँ पर बैठक अभी तक विद्यमान है। परन्तु इस बैठक का उल्लेख बैठक चरित्र में नहीं। अतः कन्नौज महाप्रभुजी के विराजने मात्र का ही स्थान रहा है। *बैठक वहीं होगी जहाँ उन्होंने सप्ताह पारायण किये हैं। यह स्थान अथवा परमानन्ददासजी* के घर का पता अब नहीं लगता है। इस विषय में डा. हरिहरनाथ टंडन का कथन है कि परमानन्ददासजी का स्थान कन्नौज में एक जैन मुहल्ले में अवस्थित है। और आज भी वहाँ नवोत्सव के दिन बड़ा उत्सव मनाया जाता है। उनके वंश के लोग वहाँ अब तक विद्यमान हैं परन्तु लेखक को वहाँ पता लगाने पर भी परमानन्ददासजी का निवास *स्थान प्रामाणिक रूप से नहीं मिला न उनके किसी वंशज का।* फिर भी वार्ता के आधार पर उनका स्थान कन्नौज ही मानना पड़ता है। क्योंकि सम्प्रदाय में भी उनके जन्म स्थान विषयक मान्यताएँ इससे विरुद्ध नहीं।

---

१ नोट—८ वार्ता-प्रसंग १-वाके परमानन्ददास ने जो सेवक किये हते तिन सबन को श्री आचार्यजी के नाम लाय तिनकी कंठी जो महाराज। — — श्री वल्लभ आप इनके नाम सेवक करत वार्ता पृष्ठ ११

२ ... कन्नौज दासपरमानन्द जो हरि भजु ... भाव

३ वहीं महाराज वह तो स्वामी हता म स्वामी बनो हतो। पृष्ठ ११

महाप्रभु जी की बैठक मंडप

परमानन्ददासजी का दीक्षा स्थान

ग्रियर्सन[1] सरोजकार,[2] मिश्रबन्धु,[3] आचार्य शुक्लजी[4] डा. रामकुमार वर्मा[5] सभी समवेत स्वर से १६ १ १६ ६ या १६ ७ उनका उपस्थिति काल मानते हैं। इतना स्थूल उपस्थिति काल देने से इन विद्वानों का क्या तात्पर्य हो सकता था ज्ञात नहीं। यदि स्थूल अनुमान से ही काम लेना हो तो उनके लम्बे जीवन काल के किसी भी संवत् का उल्लेख किया जा सकता है। पता नहीं किस भ्रान्त स्रोत ने इस भ्रान्त-परम्परा को जन्म दिया और गड्डलिकान्यायेन सभी इतिहासकार इन्हीं संवतों की स्थूल चर्चा करते चले गये। जो भी हो हमें विद्याविभाग कांकरोली की खोज से निर्णीत संवत् मान्य है। यही संवत् वार्ता साहित्य के मर्मज्ञ स्वर्गीय द्वारकादास परीख भी स्वीकार करते हैं।

(घ) शैशव—

जन्म के दिन कवि के माता-पिता को बहुत सा द्रव्य मिल चुका था अतः निर्धनता गायब हो चुकी थी। कवि को माता पिता का भरपूर दुलार और प्यार मिला था। वह एक भाग्यवान बालक समझा गया था। जिसके जन्म पर घर में आनन्द वर्षा हुई थी। अतः अनुमान है परमानन्ददासजी का शैशव बड़े चैन से बीता होगा। उनके जातकर्म नामकरण यज्ञोपवीत आदि संस्कार बड़े धूमधाम से हुए थे। पिता ने बड़ा उत्सव किया था।[6]

(ङ) शिक्षा दीक्षा—

कविवर परमानन्ददासजी विद्या सुसम्पन्न थे। भावप्रकाश में लिखा है कि पाछे ये बड़े योग्य भए। यह 'योग्य' शब्द उनकी विद्या बुद्धि शिक्षा-दीक्षा सभी का द्योतक है। व्यवहार-निपुणता काव्य चातुर्य और गुरुत्व उनमें सभी कुछ था। साथ ही वे उच्च कोटि के संगीतज्ञ थे। काव्य-रचना-नैपुण्य की चर्चा उनके सभी उल्लेख-कर्ताओं ने स्वीकार की है।[7] उनके पदों के सौष्ठव अभिव्यंजना शैली शब्दावली आदि से उनका संस्कृत हिन्दी और तत्कालीन लोक भाषा के ज्ञान का पता चल जाता है। भावतन्मयता की दृष्टि से उनके अनेक पद तुलसी की विनय पत्रिका की टक्कर के हैं।[8]

---

१ दी माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर-कवि संख्या १

२ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ४४८

३ मिश्रबंधु विनोद पृ०-२७१ २७७ २७८

४ हिन्दी साहित्य का इतिहास पं. रामचन्द्र शुक्ल पृ. १९२

५ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा. रामकुमार वर्मा पृ. २६४ [नवीन संस्करण]

६ अष्टछाप कांकरोली सं. १६६८ परमानंददासजी की वार्ता, पृ०-११

७ सो परमानन्ददास ने अपने पद कीर्तन को समाज कियो, सो गाँव गाँव में प्रसिद्ध भये। परमानन्ददास नाम लिया सो परम चतुर हते। अष्टछाप कांकरोली पृ०-६

परमेश्वरी देवी सुनि वन्दे देवि गो।
वामन करत कमल-पद [illegible] वारि वरि ॥
[illegible] राम करत जे प्राणी विविध [illegible] दुख भीर।
तीरथराज प्रयाग प्रकट भयो जब मिली जमुना देवी संग ॥
[illegible] राम सकल कल नाम वाल्मीक ज्यु गा ।
[illegible] हरि भक्ति प्रेम रस जन परमानन्द पायो ॥ [१ सं. १ ६]

(ख) गिरिराज पहुँचना—

यहाँ से वे गोवर्धन पधारे और गिरिराज पर भगवान् के दर्शन के लिये गोवर्धननाथजी के दिव्य स्वरूप में आसक्त होकर एक पद[1] गाया। जिसमें अवतार लीला निकुञ्ज लीला परम धरना स्वरूपवर्णन और माहात्म्य सबका समावेश था। गिरिराज में निवास करते हुए परमानन्ददासजी ने सहस्रावधि पदों की रचना की। यहाँ आठों दर्शनों में वे कीर्तन सेवा करते थे। इस प्रकार उनका चित्त यहीं गिरिराज में रम गया। और जैसा कि आगे चलकर विदित होगा उन्होंने अपना स्थायी निवास गिरिराज की तलहटी में सुरभि कुण्ड पर बना लिया था। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के पर्यटन पर चले जाने और अन्त में काशी में सन्यास ले लेने पर भी वे यहीं (व्रज में) रहे और गोस्वामी विट्ठलनाथजी के आचार्य पद पर अभिषिक्त होने पर वे बराबर उनमें गुरुतुल्य पूज्य बुद्धि रखते हुए भगवत् कीर्तन किया करते रहे। समय-समय पर श्री नवनीतप्रियजी के दर्शन के लिये वे गोकुल भी जाया करते थे पर उनका अधिकांश समय सुरभिकुण्ड पर गिरिराज के नीचे श्रीनाथजी के सान्निध्य में ही व्यतीत होता था

(ग) अष्टछाप में स्थापना—

गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने जब श्रीनाथजी की सेवा का मण्डान बड़े विधि विधान से प्रारम्भ किया और नित्य की अष्टदर्शन व्यवस्था में कीर्तन सेवा को महत्त्व दिया तब संवत् १६ २ में उन्होंने अपने पिता के चार सेवकों को और अपने चार शिष्यों को मिला कर एक भक्त लीलागायक-मण्डल की स्थापना की। जो 'अष्टसखा' या 'अष्टकाम्यकारे' कहे जाते थे। बाद में ये लोग साहित्य जगत में अष्टछाप तथा और सम्प्रदाय में 'अष्टसखा' अथवा अष्टकाम्य कारे के नाम से प्रसिद्ध हुए। महाप्रभु वल्लभाचार्य के चार सेवकों में सूरदास परमानन्ददास कुंभनदास एवं कृष्णदास हैं। सूरदास एवं परमानन्ददासजी तो अपने सहस्रावधि पदों के कारण और भगवल्लीला-सागर को हृदयङ्गम किये रहने के कारण 'सागर' कहलाये। गोविन्दस्वामी नन्ददास छीतस्वामी तथा चतुर्भुजदास गुसाईं विट्ठलनाथजी के शिष्य थे। ये आठों महानुभाव दिन में प्रत्येक दर्शन पर और कभी कभी अपने-अपने ओसरे पर नित्य नए नए बनाकर कीर्तन सेवा किया करते थे।

(घ) गोलोकवास—

साम्प्रदायिक चरित्र ग्रन्थों में आया है कि सूरदासजी के देहावसान के समय परमानन्ददासजी तथा अन्य वैष्णव मण्डल गोस्वामी विट्ठलनाथजी के साथ पारसौली पर उपस्थित था। सूर का निधन संवत् १६४ सिद्ध हो चुका है। अतः परमानन्ददासजी का निधन संवत् १६४ के उपरान्त ही होना चाहिए। परमानन्ददासजी के निधन काल पर

1 परमानन्ददास कृत

[illegible]

गोस्वामी विट्ठलनाथजी की भी उपस्थिति वार्ता तथा उनके चरित्र ग्रन्थों[1] से पुष्ट होती है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी का नित्य लीला प्रवेश संवत् १६४२ में माना जाता है। अतः परमानन्ददासजी का नित्य लीला प्रवेश सं० १६४१ के लगभग निश्चित होना चाहिए।

इन दिनों गोस्वामी विट्ठलनाथजी स्थायी रूप से गोकुल में रहते थे। एक बार जन्माष्टमी के दिन गोस्वामी विट्ठलनाथजी परमानन्ददासजी को लेकर गोकुल आए और वहाँ जन्माष्टमी बड़े समारोह के साथ मनाई गई। श्रीनवनीतप्रियजी के समक्ष उन्होंने बधाई के पद गाए। दूसरे दिन नवमी को भी 'दधिकादौं' महोत्सव मनाया गया। इस महोत्सव में परमानन्ददासजी अत्यन्त आनन्द विभोर होकर नाचने लगे। प्रेम की इस अति-रेकावस्था में उन्हें तालस्वर का भी ध्यान न रहा। उनकी इस अवस्था को देखकर गोसाईंजी ने कहा— 'जो जैसे कृष्णदास की किशोर लीला में निरोध भयो तैसो बाललीला में परमानन्ददास को निरोध भयो'।[2] थोड़ी देर बाद उनकी चेतना सावधान हुई। और उसी दिन गुसाईंजी उन्हें लेकर पुनः गोवर्धन चले आए। वह समय राजभोग का था। राजभोग के दर्शन करने पर गोवर्धननाथजी के समक्ष वे पुनः देहानुसंधान भूल कर भाव-मग्न हो गए। कुछ काल पश्चात् मूर्च्छा दूर होने पर वे सुरभीकुण्ड पर अपने स्थान 'श्याम तमाल' पर चले आए और उन्होंने मौन धारण कर लिया। गोस्वामी विट्ठलनाथजी को जब यह पता चला कि परमानन्ददासजी भाव अत्यन्त विकल हैं और बोलते नहीं तो वे राजभोगादि से निवृत्त होकर उनके पास गए। और उनके मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा— 'परमानन्ददास! हम तिहारे मनकी जानत हैं जो अब तिहारो दर्शन दुर्लभ भयो।' गुसाईंजी के ये शब्द सुनकर एक क्षण के लिए परमानन्ददासजी ने आँखें खोलीं और गाया—

> प्रीति तौ नन्दनन्दन सौं कीजै।
> संपति विपति परे प्रतिपालै कृपा करै तो जीजै॥
> परम उदार चतुर चिंतामणि सेवा सुमिरन मानै॥
> चरन कमल की छाया राखे अंतरगति की जानै॥
> वेद पुरान भागवत भाखै कियौ भगत कौ भावै॥
> परमानन्द इन्द्र को वैभव विप्र सुदामा पावै॥ (पद ८६१)

उस समय किसी वैष्णव ने परमानन्ददासजी से पूछा— परमानन्ददासजी! मोकों कछू साधन बताओ सो मैं करों। परमानन्ददासजी ने अत्यन्त संतुष्ट होकर उत्तर दिया

---

१ देखो 'कांकरौली' का इतिहास प्रथम खण्ड गोस्वामी विट्ठलनाथजी का चरित्र पृ० ८।

२ बानी तिहारो कर कमल बनो।
कहो तो कमोद निहारे होन मान्यो नहु मिलि करयो।
अज बरन वेद प्रगट मुनि गोकुल मानो काज दैनो॥
निरखि निरखि मुख कमल नैन की आनन्द प्रेम कियो सुभगो॥
नेन मलीन लखन गोपी जन गोकुल अति आनन्द न गी।
परमानन्द प्रभु कर आनन्द सुख अनत भयो अनत भयो॥ [पद ९२]

३ [illegible] वार्ता पृ० १९ म [illegible]

४ वही पृ० ११।

आदेश दिया। इस पर जब कवि ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की तो आचार्य ने उन्हें दीक्षा दी और श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाई। बस तभी कवि के हृदय में भगवान् की बाललीला स्फुरित हुई और उन्होंने भी आचार्यजी के समक्ष बाल लीला के पद गाये।[1] और इसके उपरान्त तो उनका हृदय लीला-सागर ही बन गया। एक प्रकार से आचार्यजी ने उनके हृदय में भगवल्लीला का विशाल सागर ही स्थापित कर दिया। जिससे अनन्त पदों का प्रादुर्भाव गिरि-निर्झर की भांति प्रारम्भ हो गया। इसी को लक्ष्य करके उनके नित्य लीला प्रवेश के उपरान्त गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने उनके लिए सादर कहा था कि "सूरदास और परमानन्ददास ये दोउ सागर भए" आदि।

(ठ) परमानन्ददासजी का संप्रदाय प्रवेश—

कवि का दीक्षा-समय यदुनाथ दिग्विजय के अनुसार १५७७ ठहरता है। श्रीयदुनाथजीकृत श्री वल्लभदिग्विजय में लिखा है कि संवत् १५७२ में श्रीमहालक्ष्मीजी की गोद से गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी का प्राकट्य हुआ। फिर व्रज-यात्रा की गई। उसके उपरान्त श्री गोपीनाथजी का यज्ञोपवीत महोत्सव हुआ फिर जगदीश यात्रा में गंगासागर पर पहुँचना फिर हरिद्वार यात्रा फिर अडैल आगमन हुआ। वहीं कान्यकुब्ज वाले परमानन्दजी पर अनुग्रह हुआ। और उन्हें भगवल्लीला का दर्शन कराया।

दीक्षा के उपरान्त कुछ काल तक परमानन्ददासजी अडैल में महाप्रभु की सेवा में रहकर श्री नवनीतप्रियजी के कीर्तन गाते रहे। वे नित्य नये कीर्तन [पद] अधिकांशतः सुबोधिनीजी के आधार पर थे क्योंकि आचार्यजी नित्य श्री सुबोधिनी [टीका] लिखकर परमानन्ददासजी

---

१ माई री कमल नैन स्याम सुन्दर झूलत हैं पलना।
बाल लीला गावति सब गोकुल की ललना॥

लाल के अरुन चरन कमल नख मनि ससि ज्योती॥
कुंचित कच मकराकृति लटकि लटकें गज मोती॥
बाम अंगुष्ठ गहि कमल पानि मेलत मुखमांही।
अपनी प्रतिबिंब देखि पुनि पुनि मुसकाहीं॥
रानी जसुमति के सुत मुख निरख निरख लाजै।
परमानन्द स्वामी गोपाल सब सनेह काजै॥ [पद ४६]

२ परमानन्ददासजी के शरण काल के इस समय को डॉ॰ हरवंशलालजी ने भी मान्य किया है। देखो—सूर और उनका साहित्य, पृ०-४८।

३ वल्लभ दिग्विजय पृ०-२९, ३१।

गोस्वामी विट्ठलनाथजी की भी उपस्थिति वार्ता तथा उनके चरित्र ग्रन्थों[1] से पुष्ट होती है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी का नित्य लीला प्रवेश संवत् १६४२ में माना जाता है। अतः परमानन्ददासजी का नित्य लीला प्रवेश सं० १६४१ के लगभग निश्चित होना चाहिए।

इन दिनों गोस्वामी विट्ठलनाथजी स्थायी रूप से गोकुल में रहते थे। एक बार जन्माष्टमी के दिन गोस्वामी विट्ठलनाथजी परमानन्ददासजी को लेकर गोकुल आए और वहाँ जन्माष्टमी बड़े समारोह के साथ मनाई गई। श्रीनवनीतप्रियजी के समक्ष उन्होंने बधाई के पद गाए।[2] दूसरे दिन नवमी को भी 'दधिकांदो' महोत्सव मनाया गया। इस महोत्सव में परमानन्ददासजी अत्यन्त आनन्द विभोर होकर नाचने लगे। प्रेम की इस अति-रेकावस्था में उन्हें तनस्वर का भी ज्ञान न रहा। उनकी इस अवस्था को देखकर गोसाईंजी ने कहा— 'जो जैसे कुम्भनदास को निकुंज लीला में निरोध भयो तैसो बाललीला में परमानन्ददास को निरोध भयो'।[3] थोड़ी देर बाद उनकी चेतना सावधान हुई। और उसी दिन गुसाईंजी उन्हें लेकर पुनः गोवर्धन चले आए। यह समय राजभोग का था। राजभोग के दर्शन करने पर गोवर्धननाथजी के समक्ष वे पुनः देहानुसंधान भूल कर भाव-मग्न हो गए। कुछ काल पश्चात् मूर्च्छा दूर होने पर वे सुरभीकुण्ड पर अपने स्थान 'श्याम तमाल' पर चले आए और उन्होंने मौन धारण कर लिया। गोस्वामी विट्ठलनाथजी को जब यह पता चला कि परमानन्ददासजी आज अत्यन्त विकल हैं और बोलते नहीं तो वे राजभोगादि से निवृत्त होकर उनके पास गए। और उनके मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा— 'परमानन्ददास! हम तिहारे मनकी जानत हैं जो अब तिहारो वसन दुर्लभ भयो। गुसाईंजी के ये शब्द सुनकर एक क्षण के लिए परमानन्ददासजी ने आँखें खोलीं और गाया —

> प्रीति तौ नन्दनन्दन सौं कीजै।
> संपति विपति परे प्रतिपालैं कृपा करैं तौ जीजै॥
> परम उदार चतुर चिंतामणि सेवा सुमिरन मानैं॥
> चरन कमल की छाया राखैं अंतरगति की जानैं॥
> वेद पुरान भागवत भाखै कियौ भगत कौ भावै॥
> परमानन्द इन्द्र कौ वैभव विप्र सुदामा पावै॥ (पद ८६१)

उस समय किसी वैष्णव ने परमानन्ददासजी से पूछा— परमानन्ददासजी! मोको कछू साधन बताओ जो मैं करो। परमानन्ददासजी ने अत्यन्त संतुष्ट होकर उत्तर दिया

---

१ श्री कांकरौली का इतिहास-अनुसार गोस्वामी विट्ठलनाथजी का चरित्र पृ०–९।

२ रानी तिहारो घर सुबस बसो।
सुनो हो जसोदा तिहारे ढोटा नन्हा बहु विधि बरसो।
कोऊ करत वेद मंगल धुनि कोऊक नाचो गाय हँसो॥
निरखि निरखि मुख कमल नैन की आनन्द प्रेम हियो हुलसो॥
देत असीस सकल गोपी जन कोऊक अति आनन्द लसो।
परमानन्द नन्द घर आनन्द सुख सम्पत्ति अचल बसो॥ [पद १२]

३ श्री ने० का० पृ० ११ सं० द्वारकादास परीख

४ वही पृ० ११।

(घ) 'सागर' की उपाधि—

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उनके नित्यलीला में चले जाने पर उन्हें 'सागर' कहकर अत्यन्त आदर के साथ कहा था ये दोऊ सागर भए। परमानन्ददासजी की वार्ता से प्रकट होता है कि सूरदासजी और कुम्भनदासजी उनसे पूर्व गोलोकवासी हो चुके थे।

(च) व्यक्तित्व एवं स्वभाव—

वार्ता तथा पदों पर गहरी दृष्टि डालने से परमानन्ददासजी के अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व का आभास मिल जाता है।

उनका अन्तरंग व्यक्तित्व बड़ा गम्भीर भावुक सत्य-निष्ठ एवं कर्तव्य परायण था। उच्च कोटि के भक्त कवि गायक एवं कीर्तनकार होते हुए भी उन्हें गर्व छू तक नहीं गया था।

देह अभिमान सबै मिटि जैहै अरु विषयन कौ संग।

वे भगवद्भक्ति को ही सर्वोपरि समझते थे। उसके सामने विद्या बुद्धि कुल जाति वैभव एवं कलानिपुणता आदि सब व्यर्थ हैं। उनका एक मात्र सिद्धान्त था।

सोई कुलीन दास परमानन्द जो हरि सम्मुख धाई।

कर्तव्य-निष्ठा तो उनकी इसी बात से द्योतित होती है कि वे अपने माता-पिता को अपने भरोसे निश्चित भगवद्भजन करने की सलाह देते हैं। वे उस पुत्र की भाँति नहीं जो वैराग्य का ढोंग रच कर कर्तव्य से पलायन कर जाय और अपने दायित्व की पूरता न समझे। कवि अत्यन्त शीलवान भी था। उसके शील स्वभाव और सहिष्णुता का परिचय उनके एक पद से भली भाँति चल जाता है एक स्थान पर वह कहते हैं —

ब्रज बसि बोलि सबन के सहिए।
जो कोउ भली बुरी कहै लाखें नन्दनन्दन रस लहिए॥
अपने पूत भले की बातें काहू सों नहीं कहिए।
परमानन्द प्रभु के गुन गावत आनन्द प्रेम बढ़ैए॥

उपर्युक्त पद से परमानन्दजी की न केवल सहिष्णुता और ऐकान्तिकता का ही परिचय मिलता है अपितु ऐसा भी विदित होता है कि अन्य सम्प्रदायवादी तथा वैष्णवेतर मतावलम्बी उनका उपहास करते थे तथा भली बुरी सुनाते थे। परन्तु भगवद्गुणगान में मस्त परमानन्द को इसकी परवाह नहीं थी और वे मीरां की भाँति लोक लाज एकान्त प्रेम में रंजित हो गए थे।

बाह्य व्यक्तित्व—

वे सुन्दर और दर्शनीय के लगने पद के भारी भरकम होने चाहिए।[1] उनका कण्ठ स्वर तीव्र और मधुर था भव्य और विशाल ललाट पर ऊर्ध्व पुण्ड्र शोभा देता था। दोनों

---

१ कंचन तन पीत बनि भूषन बरबरात तन भारी। प. सं. [पद १ २]
परमानन्द प्रभु का आरे की भाँति मुँह भारी॥

जम सकता है। क्योंकि सूर और परमानन्द दीक्षा के उपरान्त ही 'सूर और परमानन्द' के रूप में आँके गए हैं। आचार्य वल्लभ के कर स्पर्श से ही वे कंचन हुए अत अष्टछापियों का और विशेषकर इन दो सागरों का महत्व तो संप्रदाय में दीक्षोपरांत ही है। दीक्षा के उपरांत वार्ता में लीलापरक सहस्रावधि पदों का उल्लेख मिलता है। उनकी रचना की प्रामाणिकता पर तो यथास्थान विचार किया ही जायगा यहाँ तो इतना ही तात्पर्य है कि वे एक उच्च कोटि के भक्त कवि कीर्तनकार और गायक थे। उनके पदों का लालित्य सुगठित शब्द-योजना और भाव प्रवणता देखते ही बनती है।

(फ) सारंग छाप—

कहा जाता है कि कवि की छाप 'सारंग' थी परन्तु ऐसे पद कदाचित् ही उनके सागर में दिखाई पड़ते हैं। हाँ 'सारंग' राग में उनके अधिकांश पद उपलब्ध होते हैं। इसी से उनकी छाप सारंग समझली गई। परन्तु कवि को सारंग राग प्रिय था। सारंग मध्याह्न का राग होता है जिसमें शांत रस की प्रधानता होती है। इससे भी परमानन्ददासजी की मनोवृत्ति का अच्छा आभास मिल जाता है। वैसे कवि ने सर्वत्र अपने नाम की ही छाप रखी है। भक्तमाल के 'सारंग' छाप वाली गई से विद्वानों ने यह अनुमान लगा लिया है। वस्तुत कवि का कीर्तन का ओसरा मध्याह्न में राजभोग के समय पड़ता था। यह समय सारंग राग का होता है। अत स्वाभाविक है कि कवि के अनेक पद सारंग राग में ही होने चाहिए।

(ब) ब्रज के प्रति प्रेम—

कवि को ब्रजवास अतिशय प्रिय था। वह कहता है— "जाइए वह देस जहाँ नंद नंदन भेंटिए। गासी जाकर भी वह ब्रज नहीं छोड़ना चाहता था। उसका मत है ब्रजबसि बोल सबन के सहिए।" कवि को ब्रज के सामने बैकुण्ठ भी तुच्छ लगता है।

कहा करौं बैकुण्ठहि जाय।

जहँ नहीं नन्द जहाँ नहीं जसुदा जहँ नहीं गोपी ग्वाल न गाय।

जहँ नहीं जल जमना को निर्मल और नहीं कदमन की छाय।

'परमानन्द' प्रभु चतुर ग्वालनी ब्रज रज तजि मेरी जाय बलाय।

इस प्रकार कवि अत्यन्त विनम्र सरल विरक्त और भगवदीय था। उसका भगवदीयत्व अप्रतिम था।

(भ) वैष्णवों में श्रद्धा—

परमानन्ददासजी वैष्णवों को साक्षात् भगवत्स्वरूप ही मानते थे। इनके समसामयिक भक्त सूरदास कुम्भनदास रामदास आदि वैष्णव समय-समय पर इनसे मिलते रहते थे। एक बार सब वैष्णवों के इनके स्थान पर पहुँचने पर इन्होंने कहा था—

'जो आज मेरो बड़ो भाग्य है जो सब भगवदीय मेरे ऊपर कृपा करिकैं पधारे। ये भगवदीय कैसे हैं जो साक्षात् श्री गोवर्धननाथजी को स्वरूप ही हैं। तासों आज मोपर श्रीगोवर्धननाथ नै बड़ी कृपा कीनी है।'[१]

१ देखो वार्ता पृ०—८४ परीख संस्करण।

परमानन्ददासजी का इस प्रकार वैष्णव भक्तों से आन्तरिक प्रेम झलकता है। इतना ही नहीं वे समय-समय पर उनसे भगवत् चर्चा करते और भक्ति सम्बन्धी विषयों पर वार्तालाप भी। वे कहते हैं—

'आए मेरे नन्दनन्दन के प्यारे।
माला तिलक मनोहर बानो त्रिभुवन के उजियारे।
कहा कहौं कौन पुण्य प्रगट भयो मेरे घर जु पधारे।
'परमानन्द प्रभु' करौ निछावर बार बार हौं वारे॥—(पद सं० १७)

(म) भक्ति का आदर्श—

परमानन्ददासजी की भक्ति का आदर्श 'गोपी भाव' है स्वयं आचार्यजी ने भक्ति प्रेम में गोपियों को अपना गुरु माना है[1] यही आदर्श परमानन्ददासजी ने अपनी भक्ति-साधना के लिये ग्रहण किया था। एक बार वैष्णवों द्वारा यह प्रश्न किये जाने पर कि सबसे श्रेष्ठ प्रेम किसका है उन्होंने गोपियों को प्रेम की ध्वजा कहा था।

(य) सत्संग प्रेम—

परमानन्ददासजी सन्त समागम से आनन्दित होने वाले सच्चे भक्त थे। सत्संग से उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। वे कहते हैं—

हरि जन संग छिनक जो होई।

इस प्रकार अष्टछाप के द्वितीय सागर और व्रजधाम की बाललीला के दिव्य गायक परमानन्ददासजी का जीवन चरित अष्टछाप में अपना एक निराला महत्व रखता है। उनका व्यक्तित्व 'सिद्ध अनुभव' था। मन की सरलता और सादगी उनमें दिखाई देती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनके काव्य की चर्चा और वैज्ञानिक समीक्षा करने से पूर्व हम उनकी रचनाओं के परिमाण और उनकी प्रामाणिकता पर एक विवेचनात्मक दृष्टि डालने का प्रयास करेंगे।

१ स्वो-मन्थन निर्णय—स्वो
२ गोपी प्रेम की ध्वजा—८० वा २ न ११।

तृतीय—अध्याय

परमानन्ददासजी की रचनाए—

जैसा कि परमानन्ददासजी के जीवन वृत्त से ज्ञात होता है और वार्ता मे भी लिखा है कि- "पाछें ये बड़े योग्य भए और कवीश्वर हू भये वे अनेक पद बनायके गावते" आदि वाक्यो से यह स्पष्ट हो जाता है कि परमानन्ददासजी महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण मे आने के पूर्व मे ही काव्य रचना करते चले आ रहे थे। और अड़ैल मे पहुँच कर महाप्रभु वल्लभाचार्य के समक्ष दीक्षा से पूर्व उन्होंने कुछ भगवद्विरह परक पद[1] भी सुनाये थे। भावप्रकाश मे लिखा है "तासों विरह के कीर्तन नित्य गावते। महाप्रभु से उनको संवत् १५७७ मे साम्प्रदायिक दीक्षा मिली और उसके अपने गोलोकवास के अन्तिम क्षण तक वे नित्य नए कीर्तनो[2] की रचना करते रहे

अत उनकी सम्पूर्ण रचनाओ को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

१—दीक्षा से पूर्व के-भगवद्विरह परक पद।

२—अड़ैल मे दीक्षा प्राप्त हो जाने के उपरान्त। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका श्रवण कर लेने पर भगवान् कृष्ण की बाल पौगण्ड किशोर लीला विषयक पद।[3]

आचार्यजी द्वारा अनुक्रमणिका श्रवण कर लेने पर परमानन्ददासजी के हृदय मे भगवल्लीला सागर लहराने लगा था। उसी लीला रत्नाकर से अनन्त भाव रत्नों की निधि अव्याहत निकलती रही।

इन पद रत्नो के संग्रह की क्या व्यवस्था हुई इसका लेखा जोखा देना कठिन है। कीर्तन सेवा के भावेशमय क्षणो मे भगवती सरस्वती इन भक्त कवियो की जिह्वा पर नर्तन करती ही रहती थी। सूरदासजी की विशाल रचना जिस प्रकार सूरसागर के नाम से पुकारी गयी उसी प्रकार परमानन्दजी की रचना 'परमानन्दसागर' के नाम से पुकारी गई। वस्तुत कवि के जीवन का लक्ष्य काव्य रचना या साहित्य सर्जना नहीं था।

---

१ देखो [illegible] वार्ता [illegible]
 (क) ब्रज के बिरही लोग [illegible]
 (ख) मोहन [illegible]
 (ग) कौन रसिक है इन बातन को

२ [illegible] परमानन्ददास जिते भए पद [illegible] के भी [illegible]
 अनेक [illegible] लीला के कीर्तन [illegible]

३ [illegible]

उसका एकमात्र लक्ष्य था—भगवल्लीला गान। श्री आचार्य द्वारा शरणागति की तिथि से लेकर गोलोकवास तक के ६५ वर्षों के दीर्घ साहित्य जीवन में लिखे गये कीर्तनों की संख्या कितनी हो गई होगी। उसकी गणना नितान्त असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। यदि अष्टदर्शन के हिसाब से नित्य के आठ पदों को भी मान लें, तो केवल एक वर्ष के ही २८८ पद होते हैं। यदि उनका काव्य-काल न्यूनातिन्यून पैंसठ वर्ष का ही मान लिया जाय जोकि अनुमान से उचित ही जान पड़ता है, तो इन पैंसठ वर्षों के पदों की संख्या एक लाख से भी ऊपर बैठेगी। वार्ता के अनुसार कवि ने लगभग २६ २७ वर्ष की अवस्था में महाप्रभु से दीक्षा ली थी। तब से वे नित्य नये भगवल्लीला परक पद बनाते रहे थे। २६ वर्ष के उपरान्त अडैल से ब्रज में आकर परमानन्ददासजी स्थायी रूप से ब्रज में बस गये थे और कीर्तन-सेवा के अतिरिक्त उन्होंने कभी कोई जीविका सम्बन्धी कार्य नहीं किया। अतः ६५ वर्षों के अपने लम्बे काव्य-काल में उनके लगभग एक लाख नवासी हजार दो सौ पद होने हैं। यदि इसको बहुत अधिक मानकर थोड़ा बहुत इधर-उधर भी कर दिया जाय तो भी सहस्रों की संख्या में उनके पद होने ही चाहिये। और इस अनुमान का आधार वार्ता का 'सहस्रावधि' शब्द नितान्त उचित प्रतीत होता है। जो भी हो परमानन्ददासजी का सम्पूर्ण काव्य भाग उपलब्ध होना नितान्त असम्भव सा हो गया है और आज के जिज्ञासु को उनके नाम पर साम्प्रदायिक मन्दिरों के कीर्तन संग्रह में उपलब्ध पदों पर ही संतोष करना पड़ता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि उनका काव्य-काल दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। दीक्षा पूर्व का तथा दीक्षोपरान्त का

दीक्षा से पूर्व के विनय और विरह परक पदों का निर्णय करना कठिन है। वे उनके लीला सागर में निमज्जित हो गये हैं अतः परमानन्ददासजी के 'कवीश्वर' वाले पदों का पार्थक्य कठिन है। जैसा कि सूर के साथ हुआ परमानन्ददासजी के दीक्षापूर्व पद भी 'सागर' में ही समा गये।

दीक्षोपरान्त के पद—

दीक्षोपरान्त पदों का संग्रह 'परमानन्दसागर' है वे ही 'दास परमानन्द' के पद हैं कवीश्वर परमानन्द के नहीं उनके नाम पर निम्नांकित ग्रन्थ और भी कहे जाते हैं।

१—दानलीला

२—उद्धव लीला

३—ध्रुव चरित्र

४—संस्कृत रत्न माला

५—दधि लीला

६—परमानन्ददासजी के पद

वार्ता में तो इतना ही उल्लेख होता है कि परमानन्ददासजी ने सहस्रावधि पद किये और उस विशाल पद संग्रह को बाद में 'परमानन्दसागर' पुकारा गया। सम्प्रदाय के मन्दिरों में कीर्तन सेवा ही मुख्य प्रयोजन है। वहाँ व्यक्ति विशेष अथवा कवि विशेष

की रचना का न तो महत्त्व है न उसके प्रति आग्रह। जिस अवसर पर जिस कवि का 'ओसरा' होता था वह ऋतु और लीला प्रसंग के अनुसार राग निबद्ध शैली में श्रीनाथजी के समक्ष लीलागान करता था। पीछे से सम्प्रदाय की यह परिपाटी ही हो गई कि 'अष्टकीर्तनकारों' अथवा सम्प्रदाय के मुख्याश्रित कवियों के पद ही श्रीनाथजी का कीर्तन सेवा के लिए स्वीकृत हुए तदतिरिक्त अन्य पद नहीं उसका कारण यही था कि ये भक्त-कवि निरीह लीला गायक थे। लौकिक इच्छा से परे सम्प्रदाय मर्यादा के अनुकूल प्रभु प्रसन्नता ही इनका उद्देश्य था। इसी को लक्ष्य कर सम्प्रदाय-कीर्तन मर्यादा के मर्मज्ञ श्री मगनलाल गणपतिराम शास्त्री ने कहा है —

श्री महाप्रभुजीना अने श्री गुसाईंजी ना समय ना कीर्तनकारो ने साक्षात प्रभु दर्शन भगवत्कृपाए थतां तादृश कीर्तन सत्वरज थी ने तेनु उद्गान प्रभु समक्ष करता। आपणने तो हवे तेमना प्रसाद भूत कीर्तन नो गान मात्र करवानो अधिकार छे। अर्वाचीन कीर्तनकारो ना कीर्तन प्रभु समक्ष गवाय नहिं एवी स्वमार्ग मर्यादा छे अने ते युक्तज छे "

अर्थात् श्री महाप्रभुजी के और श्री गुसाईंजी के समय के कीर्तनकारों को जिस प्रकार भगवद्दर्शन भगवत्कृपा से होते थे उसी प्रकार के कीर्तन को तत्काल रचकर उसका गायन वे भगवान के सामने करते थे। हम लोगों को तो अब उनके प्रसादभूत कीर्तन के गान मात्र करने का ही अधिकार है। क्योंकि आधुनिक कीर्तनकारों के कीर्तन भगवान के समक्ष नहीं गाए जाते ऐसी अपने मार्ग की मर्यादा है। और यह मर्यादा उचित ही है।

अतः सभी पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों एवं अष्टछापियों के नित्य कीर्तन और वर्ष भर के उत्सवों के कीर्तन का विशाल समूह एक ही स्थान पर संगृहीत कर लिया गया। और उन कीर्तन संग्रहों में से नित्य और वर्षोत्सव की सेवा के कीर्तन किए जाने लगे। धीरे-धीरे इन संग्रहों को व्यवस्थित किया जाने लगा और नित्य कीर्तन के पद अलग तथा वर्षोत्सवों और 'होली धमार' आदि के कीर्तन सेवा सुविधा की दृष्टि से पृथक कर लिए गए। बाद में अष्टछापी सागरों का जब महत्त्व और भी बढ़ा तो 'सूरसागर' 'परमानन्द सागर' आदि भी पृथक कर लिए गए। कवियों की सरस पूतवाणियां न केवल कीर्तन के लिए प्रयुक्त होने लगीं अपितु भगवान की दिव्य लीला का रसास्वादन भी इनसे किया जाने लगा। और 'अष्टकाव्यकार' न केवल कीर्तनकार ही रहे अपितु श्री गोवर्धनधर की नित्य लीला के सखा माने जाकर उनकी वाणियां लीला सागर बन गईं और श्रीमद्भागवत के समान समादरणीय और वन्दनीय बन गईं। 'सागरों' की इस शोध कथा की पुष्टि सूर साहित्य के विशेषज्ञ प्रोफेसर हरवंशलाल शर्मा के इस कथन से भी होती है —

'सूरसागर के अतिरिक्त अन्य सागरों का जन्म भी इन्हीं संग्रहों (कीर्तन संग्रहों) से हुआ। जैसे कृष्णसागर, परमानन्दसागर, नन्द-सागर आदि।'[१]

---

१ देखो संशोधन कोलम दर्शन अने नित्य कीर्तन गुजराती भूमिका भाग पृष्ठ १

२ देखो-सूर और उनका साहित्य पृष्ठ ३१ लेखक डा. हरवंशलाल शर्मा।

चौपाई—सब गृह-गृह की गृम्प मारी।
दधि गोरस बेचन हारी ॥
मिलि बूम मतो सब कीनो ॥
यमुना तट मारग लीनो ॥
प्राग मोहन धेनु चरावैं ॥
वृन्दावन बेनु बजावैं ॥
जहाँ बार सघन की खोरी।
मुरली सुनि मानन्द होरी ॥
उत घाट ऊपरि चलि माई ॥
पहिचान लिए जदुराई ॥
एक बालक कहत पुकारी।
तोहि सूझत नाहिं गवारी ॥

छन्द सूझत नाहिं गवारि ग्वालिनि कृष्ण ठाकुर घाट के।
भाय काम न करो बीनती मबहु है बरत बालक साथ के ॥
हुरम सुन्य पुन हीन ग्वालिनि कृष्ण प्रादि कहाँ चली ॥
दान देहु निबेरि मापनो हरि-भले तुमहू भली ॥

उक्त ग्रन्थ ११ पृष्ठो मे है। अन्तिम चौपाइयाँ है—
राजेन्द्र कृष्णहिं ध्यावै जन्म-जन्म के दुख हरै ॥
जो नर गावें दानलीला। ~ ~
~ । सुनहिं और चित लावही ॥
विष्णु लोक सिधावहिं। कोटि जन्य फल पावही ॥

यहाँ दो बातें विचारणीय हैं। 'राजेन्द्र' कवि का नाम है किंवा कवि के आश्रयदाता नरेश का। तलाश करने पर दतिया मे 'राजेन्द्र' नाम के कोई कवि नहीं हुए। हाँ राजवंश मे यह नाम अवश्य मिलता है और सम्भवत किसी कवि ने अपने आश्रयदाता के लिए उक्त 'दानलीला' मनोरंजनार्थ लिखी है। जैसा कि पिछले अध्याय म कहा जा चुका है—दतिया राज मे एक परमानन्ददास हुए थे जिनकी चर्चा मिश्रबन्धु विनोद मे मिलती है ये बहुत परवर्ती कवि हैं। दानलीला मे दोष भरे पड़े हैं जो अष्टछापी परमानन्ददास जैसे समर्थ कवि से कभी सम्भव नहीं। फिर भाषा की दृष्टि से दतिया के परमानन्ददास मे बुन्देली का पुट मिलता है और भाषा भी टकसाली ब्रज नहीं।

अत दतिया राज पुस्तकालय वाली दानलीला अष्टछापी परमानन्ददास कृत नहीं है। इसके अतिरिक्त एक दान-लीला संग्रह लगभग २ वर्ष पुराना प यादवनाथ शुक्लजी काव्यतीर्थ अलीगढ के संग्रहालय मे प्राप्त हुआ है। इसमे चार पाँच दान लीलाएँ एकत्र हैं। उसमे सूरदास कुम्भनदास नन्ददास और छीतस्वामी आदि की दान लीलाएँ तो हैं परन्तु परमानन्ददासजी की दानलीला विषयक पद उसमे नहीं १ इसका तात्पर्य यही है कि

---

१ उक्त पुस्तक अब दृ थी द्वारकादासजी परीख के संग्रह मे चली गई है

परमानन्ददासजी के दानलीला विषयक पद प्रसंग से नहीं देखने में आये। इस तथ्य की पुष्टि अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय के लेखक डा० दीनदयालु गुप्त के इस कथन से भी हो हो जाती है —

'लेखक के देखने में भी यह ग्रन्थ नहीं आया है। परमानन्ददासजी के पद संग्रहों में दानलीला के पद भी आते हैं। सम्भव है किसी ने इन्हीं पदों को दानलीला का शीर्षक देकर लिख लिया हो। ... ... लेखक को दानलीला विषयक कवि का कोई बहुत बड़ा पद उपलब्ध नहीं हुआ। इसलिए इस ग्रन्थ के विषय में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह अष्टछापी परमानन्ददास कृत ही है अथवा नहीं।'[1]

उक्त कथन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वस्तुतः परमानन्ददासजी का दानलीला नामक कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं। लीला गान के अन्तर्गत कुछ ऐसे पद अवश्य हैं जिनमें 'दानलीला' प्रसंग की चर्चा आती है। स्वतन्त्र ग्रन्थ निर्माण न तो कवि का लक्ष्य था न आवश्यकता ही थी। जिस प्रकार सूर के भ्रमरगीत, मानलीला, नागलीला, दानलीला आदि प्रसंग सूरसागर में निमज्जित हो जाते हैं उसी प्रकार परमानन्ददास के नाम पर कहे जाने वाले ग्रन्थ 'परमानन्द सागर' में ही लय समझने चाहिये।

उद्धव लीला — उद्धव लीला भी परमानन्ददासजी का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं। वार्ता में अथवा परमानन्ददासजी का सन्दर्भ देने वाले प्रामाणिक ग्रन्थों में उनके नाम से सम्बन्धित ऐसे किसी ग्रन्थ की चर्चा नहीं है। सम्भवतः उद्धव लीला से भ्रमरगीत परक कुछ पदों से तात्पर्य है। भ्रमरगीत के सरस मधुर, ललित प्रसंग को सभी कृष्ण भक्त कवियों ने लिखा है। अतः परमानन्ददासजी के भी भ्रमरगीत से सम्बन्धित कुछ पद उद्धवलीला हो सकते हैं ऐसा कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता।

दतिया राज पुस्तकालय में पुस्तक संख्या १५४७ पर एक 'उद्धव लीला' ग्रन्थ लेखक के देखने में आया है। परन्तु यह ग्रन्थ छपा हुआ है और पण्डित कुन्दनलाल वैद्य रामदासी कृत है। यह श्याम प्रेस मथुरा का छपा हुआ है। डा० गुप्त ने अपने ग्रन्थ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय में इसलिए इसकी चर्चा नहीं की है।

ध्रुव चरित्र — नागरी प्रचारिणी सभा काशी की सन् १९०९ की रिपोर्ट में परमानन्ददासजी के नाम पर इस पुस्तक की चर्चा पाई जाती है। परन्तु १९२१-२४ की रिपोर्टों में नहीं। साथ ही हिन्दी साहित्य के दो इतिहासों — मिश्रबन्धु विनोद और डा० रामकुमार वर्मा के आलोचनात्मक इतिहास में इस ग्रन्थ को परमानन्ददास कृत होने की सूचना मिलती है। सम्भव है इन दोनों पुस्तकों के उल्लेख का आधार [illegible] से ना० प्र० की खोज रिपोर्ट रही हो। उसी में इसका पुस्तक स्थान दतिया राज पुस्तकालय बतलाया गया है। लेखक ने

[1] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृष्ठ १९९।

दतिया राज पुस्तकालय मे पुस्तक संख्या १ ८२ की एक पुस्तक प्रथम देखी है। यह हस्त लिखित है परन्तु लेखक के नाम का पता पुस्तक से नही चलता। सूची में बालगोपाल नाम दिया है। एक और ध्रुव चरित्र है जो मदनगोपाल कृत है। खोज रिपोर्ट मे तीन ध्रुव चरित्रो की चर्चा है परन्तु दतिया राज पुस्तकालय मे दो ही ध्रु व चरित्र' मिलते हैं। अत इनके परमानंद दास कृत होने का कोई प्रश्न ही नही उठता। इस बात की पुष्टि काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री विश्वनाथप्रसादजी ने भी की है। उन्होंने उक्त ध्रुव चरित्रो को जाँचा है। और किन्ही अन्य कवियों का बतलाया है। परमानन्ददासजी का नही।

उक्त पुस्तक के विषय मे डा गुप्त कहते हैं—"इस प्रकार परमानन्ददास का ध्रुव चरित्र नामक ग्रन्थ भी लेखक के देखने म नही आया। परमानन्ददासजी की उपलब्ध रचनाओ मे ध्रु व चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले पद भी लेखक के देखने मे नही आए।"

उनका अनुमान है कि ध्रु व चरित्र भी दानलीला के समान कोई लम्बा पद मात्र हो रहा हो। परन्तु ऐसा पद भी उनके उपलब्ध पदो मे नही मिलता। डा गुप्त ने कल्पना की है कि हित सम्प्रदाय का बु देलखड म बहुत प्रचार था। सभव है हितहरिवंश के शिष्य हितपरमानन्द कृत कोई ध्रु व चरित्र हो। पहले वाले दोनो ध्रु व चरित्र दतिया पुस्तकालय मे रहे हो परन्तु आज तो वहाँ हितपरमानन्द कृत ध्रु व चरित्र भी देखने म नही आता। और अन्यत्र भी यह ग्रन्थ न कही खोजने से मिला न सुनने म आया।

संस्कृत रत्नमाला—इसकी चर्चा अष्टछाप परिचय' के लेखक श्री प्रभुदयालजी मीतल मे अपनी उक्त पुस्तको मे की है। श्री मीतलजी का आधारभूत क्या है—विदित नही परन्तु इस ग्रन्थ का उल्लेख न खोज रिपोर्टो मे है न इतिहास ग्रन्थो मे। पता नही कैसे ये ग्रन्थ परमानन्ददासजी के नाम से जुड गया। अष्टछापी कवियो की जैसी प्रकृति देखने मे आती है, उस दृष्टि से विचार किया जाय तो भक्त कवियो और विशेषकर परमानन्द दासजी जैसे एकान्त भक्ति-साधको के द्वारा ऐसी रचनाएँ नही हो सकती।

दधि लीला—इस ग्रन्थ की चर्चा तासी तथा आचार्य द्विवेदीजी ने की है। तासी ने तो सभवत पदो के प्रसगो को स्वतन्त्र ग्रन्थ मानने की भूल की है। और वह नागलीला अर्थात् 'सर्पलीला' आदि एकाध और भी ग्रन्थ मानता है। परन्तु आचार्य द्विवेदीजी ने भी अपनी पाद टिप्पणी मे दधिलीला का नाम दिया है और उसका पता इसनी प्रेस दिल्ली समय सन् १८६८ दिया है। परन्तु इसनी प्रेस की इस दधिलीला का अब कही पता नही चलता न सम्प्रदाय के ग्रन्थो के प्रमाण-सग्रह स्थानो मे इस ग्रन्थ की चर्चा है। नाथद्वारा कांकरोली के विद्या विभागो मे भी उक्त पुस्तक की चर्चा नही मिलती। वास्तव मे दधि या माखन चोरी के प्रसगात्मक कुछ पदों के सग्रह को स्वतन्त्र ग्रन्थ नाम देकर मात्र सग्रह कर्ताओ ने परमानन्ददासजी के नाम से अनेक ग्रन्थ बताने की चेष्टा की है जो एक प्रकार से व्यर्थ ही है।

१—परमानद सागर [प्रथम प्रति]—

ग्रंथ सख्या ४५ पु १। इसका नाम 'परमानददासजी के कीर्तन है। इसका साइज ८×६ इच है। इसकी अतिम पुष्पिका नही मिलती। अत पुस्तक अपूर्ण है। इसमे विषय क्रम से पद लिखे गये हैं। विषय क्रम के अतिरिक्त परमानंददासजी के और भी पद इसमे है इस पुस्तक के पदो की गणना करने पर लगभग ८५ पद होते हैं।

पुस्तक की लेखन शैली—इस पुस्तक के प्रारम्भ म ७८ पृष्ठ तक के पदो के प्रतीक एव पृष्ठ संख्या लिखी गई है। ग्रन्थ की लिपि सुवाच्य सुन्दर शुद्ध एवं प्राचीन है। राग तथा विषयो के नाम लाल रग मे दिए गये हैं। ग्रन्थ मे अधिकाश रूप से नवीन विषय का प्रारम्भ अन्य पत्र से ही हुआ है। जिस विषय के जितने पद मिले है उतने ही लिख कर शेष स्थान खाली छोड दिया गया है। और उसके स्थान पर बाद मे परमानददासजी के ही उसी विषय के पद लिखे गये है जिनकी लिपि भिन्न है विदित होता है कि यह किसी प्राचीन ग्रन्थ की प्रतिलिपि है और उसके स्थान पर उतने अश के नष्ट हो जाने पर स्थान छोड दिया गया है। जिसकी पूर्ति किसी अन्य ग्रन्थ से बाद मे की गई है। इस प्रकार छूटे हुए स्थान मे जो कीर्तन लिखे गए हैं उनकी लिपि मे गुजराती अक्षरो का सम्मिलन है। इससे अनुमान होता है कि किसी गुजराती लेखक ने बाद मे ये पद लिखे हैं।

ग्रन्थ का प्रारभ पृष्ठ सख्या १ से होता है और ११४ तक पद लिखे हैं। पुस्तक मे पदो का सकलन विषय-क्रम मे हुआ है। विषय-क्रम पूरा होने तक पद सख्या बराबर चली गई है। दूसरा विषय प्रारभ होने पर पुन पद सख्या एक दो से प्रारभ हुई है। तात्पर्य यह कि सभी विषयो के पदो की सख्या का योग करने पर एकत्र योग ८५ के लगभग होता है।

लेखन समय—ग्रन्थ का लेखन समय यद्यपि दिया नही गया है पर एक युक्ति से उसका समय निर्धारित किया गया है। पुस्तक के प्रारम्भ मे 'श्री गिरिधर लालो विजयतु' लिखा है। ये गिरधरलालजी गोस्वामी विट्ठलनाथजी के प्रथम पुत्र हैं। इनका समय स १५९७-१६८ तक माना जाता है। जैसी कि सप्रदाय की परिपाटी है श्री गुसाईंजी की विद्यमानता मे उनके पुत्र श्री गिरिधरलालजी का प्राधान्य नही हो सकता। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण वे अपने पिता के उपरान्त ही स १६४२ मे आचार्यत्व पर अभिषिक्त हुए होगे। अत उनका आचार्यत्व काल १६४२ से १६८ तक हुआ। इन्ही ९ वर्षो के भीतर इस ग्र थ की प्रतिलिपि हुई समझनी चाहिए।

इस कथन की पुष्टि एक गुजराती लेख से भी होती है। जो उसी लेखक का अथवा उसके समसामयिक किसी अन्य का होना चाहिए। उसमे लिखा है

'बादरायण पुष्करना मोरबी मा रहता हता बेणे द्वारका मध्ये श्री आचार्य जी ने नीमखे माह ११ वाई श्रीमदभागवत सामस्यूं तेहनो दीकरो लक्ष्मीदास श्री गुसाईजीना सेवक। लक्ष्मीदासजी माता बाई नमी श्री आचार्य जी नी सेवक श्री ब्रजराजजीनी द्वारका माँ परचारकी करता ते लक्ष्मीदास ना बेटा हरिजीव तथा दामजी नग (जामनगर) माँ रहे छे।

होने चाहिए। पुस्तक अपूर्ण और खण्डित है। दूसरी बात यह है कि यहाँ विषय क्रम का पूर्ति के बाद उतना पत्र खाली छोड़ा गया है वहाँ बीच में कई पत्र बिलकुल खाली छोड़ दिए गये हैं। यद्यपि उनमें पत्रांक बराबर पड़े हैं। इससे यह अनुमान होता है कि यह भी किसी अन्य ग्रन्थ की प्रतिलिपि है जो अधिकांश नष्ट भ्रष्ट होगया है। और किसी अन्य ग्रन्थ से पूर्ति के लिए स्थान पत्र खाली रख लिये गये हों। जिसकी पूर्ति बन्ध संख्या ४५ १ से कर भी गई पर इसमे नही की जा सकी होगी।

प्रस्तुत ग्रन्थ की लिपि सुपाठ्य सुन्दर शुद्ध और प्रामाणिक है। स्थान-स्थान पर विशेष राग और विषय के नाम पर लाल पेन लगाया गया है। ग्रन्थ लिख जाने के बाद उसी स्थान मे पंक्ति बढ़ाई गई है।

लेखन समय—इस लिपि का जैसा पहिले कहा जा चुका है बन्ध संख्या ४५×१ की लिपि से बिलकुल साम्य है। अतः इसका भी लेखन काल नहीं सं १६४२ से १६८ के समय का विदित होता है। इस दृष्टि से पुस्तक प्रामाणिक और प्राचीन है। इन दोनो लिपि-साम्यवाली पुस्तको मे रामकली राग को 'रागमी' लिखा मिलता है।

यह पुस्तक एक असुरक्षित स्थान मे रखे हुये संग्रह की है। अतः जल से भीग जाने के कारण कुछ बिगड़ गई है। अब तो सुरक्षित रूप से रखी हुई है। यह पुस्तक अपूर्ण है। अतः अन्तिम पुष्पिका नहीं मिलती है। यद्यपि लेखन समय का अनुमान किया जा चुका है पर लेखक का नाम नहीं मिलता। ग्रन्थ का अधिकांश विषयानुक्रम नष्ट हो जाने से नहीं मिलता पर पृथक विषयो के लिये स्थान छोड़ देने के कारण उनकी सकलना की जा सकती है। इसमे जितने पद लिखे गये हैं उनकी गणना करने से ७२१ हो जाती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि इसमे कितने पद रहे होंगे।

बन्ध संख्या ४५ पु १ तथा इस ग्रन्थ का लिपि साम्य तो है पर उसमें इस ग्रन्थ का नाम परमानन्ददासजी के कीर्तन' लिखा है। और यह बाद मे लिखा गया प्रतीत होता है। इस प्रस्तुत पुस्तक मे इसका नाम परमानन्दसागर' लिखा हुआ है जिससे यह प्रतीत होता है कि सं १६४५ और सं १६७ के मध्यकाल मे लिखी गई। इन पुस्तको का नाम 'परमानन्दसागर' प्रचलित हो गया था। परमानन्ददासजी के जीवन चरित से यह तो स्पष्ट हो ही चुका है कि उनकी उपाधि सागर' थी। अतः उनके बाद यदि उनका ग्रन्थ सूरसागर की भाँति ही परमानन्दसागर कहलाने लगा तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

लिपि साम्य वाली ये दोनो पुस्तकें अपूर्ण हैं फिर भी प्रकाशन और मुद्रण दोनो दृष्टियो से बड़ी उपयोगी हैं। ये प्रतियाँ शुद्ध और प्रामाणिक होने के कारण अत्यन्त उपयोगी हैं।

तृतीय प्रति—बन्ध ५७ पु०-२। इस ग्रन्थ का नाम 'परमानन्ददासजी के पद' है। आकार १ ×८ इंच है। पुस्तक गुटका साइज् सिली हुई बड़े अक्षरो मे है। इस ग्रन्थ मे पत्र संख्या १ से १५४ तक है। जिसमे पद लिखे हुए हैं।

लेखन शैली—इस ग्रन्थ मे प्रारम्भ से लेकर पद संख्या दी गई है जो पत्र १५१ पर १ १ ६ है और जिसके अन्त मे इस प्रकार पुष्पिका लिखी है

इति श्री परमानन्ददासजी के पद संपूर्ण। पोथी वैष्णव हरिदास की है।

इस पुस्तक का प्रारम्भ 'चरण कमल बन्दौं जगदीश के जे गोधन संग धाए' वाले पद के मंगलाचरण से होता है। यह पुस्तक 'मथुरेश पुस्तकालय' की है।

इसमें समाप्ति के अनन्तर पत्र संख्या १५२ से १५४ तक परमानन्ददासजी के और भी पद लिखे हैं। जिनकी संख्या २ होती है और इस प्रकार कुल मिलाने से १ २१ पद परमानन्ददासजी के इस ग्रन्थ में लिखे मिलते हैं। पदों की इतनी विशाल संख्या अन्य किसी प्रति में उपलब्ध नहीं होती।

ग्रन्थ की लिपि सुपाठ्य सुन्दर और शुद्ध होने के साथ-साथ आद्योपान्त एक सी है। इसमें न तो कहीं संशोधन किया गया है और न कहीं परिवर्तन। राग तथा विषय के नाम लाल स्याही से लिखे गए हैं। हाशिए पर लाल स्याही से रेखाएँ खींची गई हैं।

लेखन समय—पुस्तक का प्रारम्भ इस प्रकार होता है— अंक १ ठो परमानन्ददासजी के पद की पोथी। "गोस्वामि श्री व्रजनाथात्मज गोकुलनाथस्येद पुस्तकम्।

पुस्तक के अन्त में हस्ताक्षर गोकुलनाथजी के हैं। जो व्रजनाथात्मज और श्री गुसाईं विट्ठलनाथजी के तृतीय पुत्र बालकृष्णजी के वंशज एवं कांकरोली निवासी थे। इन गोकुलनाथजी का समय संवत् १८२१ से १८५६ तक का है। अतः यह उन्हीं की पुस्तक है। और संवत् १८५६ के पहिले लिखी गई है। यद्यपि इसमें लेखक का नाम और लेखन काल नहीं दिया गया। तथापि हमारे अनुमान से इसका समय संवत् १ ५ के लगभग ही होना चाहिए।

अन्य प्रतियों की भाँति इसमें विषय की समाप्ति पर खाली पत्र नहीं छोड़े गए हैं और चलती कलम से ही पद लिखे गए हैं। अंक संख्या प्रारम्भ से लेकर अन्त तक बराबर मिलती है। पद संख्या के साथ ही साथ पृष्ठों की संख्या भी प्रत्येक पद के साथ दी गई है। विषय क्रम से पदों की संख्या भी प्रत्येक पद के साथ दी गई है। विषय क्रम से पदों की संख्या इसमें नहीं मिलती। इसमें अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा विषय भी अधिक हैं। जैसा कि अधिक पदों के कारण होना भी चाहिए। कुल मिला कर इसमें ७७ विषय हैं जिनका नाम प्रारम्भ में लिखा है।

यद्यपि अन्य प्रतियों की अपेक्षा यह अर्वाचीन है फिर भी शुद्ध और प्रामाणिक होने के साथ विशाल और महत्वपूर्ण है। डा. गुप्त का मत है कि परमानन्दसागर की यह प्रति देखने में सवासौ वर्ष पुरानी जान पड़ती है।

परमानन्दसागर की इस प्रति के पदों की विषयानुसार पद संख्या का विवरण इस प्रकार है।

पद संख्या का विवरण इस प्रकार है।

पुस्तक संख्या ११३ विद्या विभाग कांकरोली परमानन्दसागर

क्रम संख्या	विषय क्रम	पद संख्या
१	मंगलाचरण	१
२	जन्म समय	२१
३	पलना के पद	९
४	छठी के पद	२

क्रम संख्या	विषय क्रम	पद संख्या
५	स्वामिनीजीके जन्म समयके पद	४
६	बाललीला	८८
७	उराहनेके वचन गोपिकाजूको	३६
८	जसोदाजीको बरजिबो प्रत्युत्तर प्रभुजीको	७
९	गोपिकाजूके वचन प्रभुजीके प्रति	१२
१	प्रभुके वचन जसोदाजीसों	१
११	परस्पर हास्य वाक्य	४
१२	सखासहीं खेल	४
१३	असुर मर्दन	५
१४	जमुनाजीके तीरको मिलन	६
१५	मेघाम्बर वर्णन	८
१६	गोदोहन प्रसंग	१२
१७	वन वनक्रीडा	११
१८	गोचारण	१८
१९	दान प्रसंग	१८
२	द्विजपत्नीको प्रसंग	२
२१	कमधे बकको पीठ मारनो	३
२२	गोपिकाजूके आसक्ति वचन	७६
२३	आसक्तिको वर्णन	१२
२४	आसक्तिकी अवस्था	८
२५	साक्षात् स्वामिनीजूके आसक्तिके वचन	८
२६	साक्षात् भक्तकी प्रार्थना प्रभु प्रति	५
२७	साक्षात् प्रभुजी के वचन भक्तनके प्रति	२
२८	प्रभुको स्वरूप वर्णन	१९
२९	स्वामिनीजूको स्वरूप वर्णन	७
३	पुमरस वर्णन	७
३१	मताचरण प्रसंग	
३२	रास समयके पद	९
३३	मर्मध्यान के पद	९
३४	जलक्रीडा के पद	१२
३५	खण्डिता के वचन	३
३६	खण्डिता के प्रत्युत्तर	१

चतुर्थ प्रति —[बंध सं० ११ पुस्तक ४] इस प्रति का नाम परमानन्ददासजीके कीर्तन है। आकार ८×६ इंच है। इसमे परमानन्ददासजीके कीर्तनोके साथ ही अन्य अष्टछाप के कवियो के कीर्तनोका भी संग्रह है। पत्र संख्या १ से लेकर १७१ तक है।

लेखन शैली—इसमे पदो की संख्या विषय क्रम से चलती है। अर्थात् प्रसंग समाप्त हो जाने पर संख्या समाप्त हो जाती है। इस प्रकार गणना करने पर पदो की कुल संख्या ७४१ निकलती है। इसमे मंगलाचरण के तीन पद भगवल्लीला के ७२८ और फुटकर १ पद हैं।

लिपि सुन्दर और शुद्ध है फिर भी अक्षर उतने अच्छे नही। इसकी अन्तिम पुष्पिका नही मिलती है। इससे ग्रन्थ का लेखन काल और लेखक का नाम नही मिलता। अत पुस्तक अपूर्ण विदित होती है। इस प्रति म अन्य कोई उल्लेख्य बात नही।

पंचम प्रति—[बंध संख्या ११ पुस्तक] इसका नाम परमानन्ददासजी के कीर्तन है। आकार ४×६ इंच है। पुस्तक गुटका साइज मे है। हाशिए पर "परमानन्द" लिखा गया है। जिससे परमानन्ददास के कीर्तन अथवा परमानन्दसागर" दोनो का बोध हो सकता है।

लेखन शैली—ग्रन्थ का प्रारम्भ पत्र १ से होता है। और उसका मध्य भाग १५६ पर है। इस प्रकार इसमे कुल १६४ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र मे १४ पंक्तियाँ है।

लेखन समय—पुस्तक मे अन्तिम पुष्पिका नही अत लेखक तथा लेखन कालका पता नही चल सकता। वैसे पुस्तक सुन्दर और सुवाच्य है।

इस प्रति मे प्रारम से लेकर पदो की संख्या दी गई है। अर्थात् यह विषय क्रमके साथ समाप्त नही होती। और बराबर अन्त तक चलती चली जाती है। गणना करने से पद संख्या ९ तक मिलती है। इस रूप मे यह दूसरी पुस्तक है जिसमे पदो की संख्या एकत्र की गई है। और अधिक से अधिक पदो के संग्रह करने चेष्टा की गई है। इसमे कुल ९१ विषय हैं। यह पुस्तक संपादन और प्रकाशन की दृष्टि से बडी उपयोगी है।

विद्याविभाग कांकरौलीके सरस्वती भंडार मे उपलब्ध उपर्युक्त पाँच प्रतियो का यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसके अतिरिक्त विद्या विभाग मे 'परमानन्दसागर' की दो प्रतियाँ और भी विभाग मे मिलती हैं। उनका विवरण इस प्रकार है —

प्रति न० २।१ 'परमानन्दसागर' ग्रन्थ के प्रारम्भ म लिखा मिलता है अथ परमानन्ददास कृत परमानन्दसागर लिख्यते। उसके उपरान्त मंगलाचरण प्रारम्भ होता है —

चरन कमल बन्दौं जगदीश जे गोधन के संग धाए।

इसके बाद इसमे पदो के विषयानुसार पद दिए हैं। यह पद संख्या लगभग ८ से पद हैं। पद कृष्ण जन्म से लेकर मकरकीव तक हैं। ग्रन्थ मे रामजन्मोत्सव नृसिंह तथा वामन जयन्तियो के पद भी उपलब्ध होते हैं। ऊपर रागो के नाम भी मिलते हैं।

प्रति न २।६—इस प्रति में परमानन्ददासजीके विरह के पदो का संग्रह है। पद संख्या लगभग २ के है। लिपि आदि कुछ नही मिलती। इसमे सूरदासजीके भी विरह परक पद संगृहीत है। प्रति लगभग १ ०—११५ वर्ष की प्राचीन विदित होती है।

उपर्युक्त परमानंदसागर की सात हस्तलिखित प्रतियो के अतिरिक्त मीनाक्षार के निज पुस्तकालय मे पांच हस्तलिखित प्रतियां और संगृहीत है उनका विवरण इस प्रकार है —

प्रति न ११/१ परमानददासजी के कीर्तन। प्रति मे विषयानुसार कीर्तन लिखे है। इसमे लगभग ४ पद संगृहीत है। स १८७१ की लिखी हुई है।

[प्रति १४।१] परमानदसागर—इसमे ८८१ पद है। प्रारम्भ मे 'चरन कमल बंदौ जगदीश के गोधन के संगधाए' वाला मगलाचरण किया हुआ है। पदो का क्रम विषयानुसार है। प्रतिलिपि के समय का पता नही चलता। अनुमान है कि यह प्रति १५ वर्ष पुरानी होनी चाहिये। इस प्रति के प्रारम्भ मे पदो की विषय सूची तथा भिन्न भिन्न समय के कीर्तनो के अनुसार अनुक्रमणिका दी हुई है। इसमे पद संख्या लगभग १ है। वस्तुत यह प्रति कांकरौली वाली तृतीय प्रति के टक्कर की है। इसमे पदो का विवरण इस प्रकार है —

क्रम संख्या	विषय	पद संख्या
१	मगलाचरण	१
२	जन्म समयके पद	१४
३	स्वामिनीजीको जन्म	२
४	बाल लीला	७
५	यमलोद्धार	७
६	ब्याहकी बात	४
७	उराहना यशोदाजूको	२१
८	यशोदाजीको प्रत्युत्तर ग्वालनसौं	१७
९	यशोदाजी के वचन प्रभुसौं	७
१	प्रभुके वचन यशोदासौं	११
११	गोपिकाके वचन प्रभुसौं	११
१२	परस्पर हास्य	४
१३	सखासहित खेल	४
१४	मधुर मर्दन	५
१५	जमुना तीरको मिलिबे के पद	६
१६	मैवान्तर दर्शन	६
१७	दोदोहन	१२
१	वनलीला	१९

क्रम संख्या	विषय क्रम	पद संख्या
१९	गोचारण	९
२	भोजन	
२१	बाललीला	१७
२२	विप्रपत्नीको प्रसंग	२
२३	प्रभुजीको बनते पाउ धारनो	२१
२४	वेणुपान	५
२५	मानापनोदन	९६
२६	किशोरलीला	२
२७	प्रभुको स्वयं दूतत्व	
२८	प्रभुको मान मध्या के वचन	
२९	सत्ताचरण	
३	भक्तनके आसक्तिके वचन	
३१	आसक्तिको वर्णन	११
३२	आसक्तिकी अवस्था	८
३३	साक्षात भक्तनकी आसक्तिके वचन	२४५
३४	साक्षात् भक्तनकी प्रार्थना	४
३५	प्रभुके वचन भक्तन प्रति	२
३६	प्रभुको स्वरूप वर्णन	२२
३७	श्रीस्वामिनीजीको स्वरूप वर्णन	७
३८	युगलरस वर्णन	७
३९	रासप्रसंग	६
४	अन्तर्धान समय	६
४१	जलक्रीडा समय	३
४२	सुरतान्त समय	७
४३	खण्डिता के वचन	३
४४	खण्डिताको प्रत्युत्तर	१
४५	फूल मण्डली	१
४६	दीप मालिका-अन्नकूट	२१
४७	वसन्त समय	३
४८	मथुरालीला	१८
४९	मथुरागमन	३
५	विरह [भ्रमर गीत]	२४१

२—परमानन्दसागर—जमनादास कीर्तनियाँ गोकुलदासो के पास बताई जाती है। पर इस प्रति का खोज लगाने पर भी लेखक को पता नहीं चला।

३—परमानन्दसागर की एक प्रति की चर्चा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने हिन्दी साहित्य मे की है।[1] जयपुर के कोई सज्जन रामचन्द्र के नाम है। पर अब जयपुर मे पता लगाने पर भी लेखक को उसका पता नहीं चला।

उपर्युक्त हस्तलिखित प्रतियो के अतिरिक्त परमानन्दसागर की दो और प्राचीन प्रतियां लेखक को देखने को मिली है। ये पुस्तकें सम्प्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान स्व श्री द्वारकादासजी परीख के अधिकार मे थी। इन दो पुस्तको मे एक तो प्राचीनता की दृष्टि से विद्याविभाग कांकरौली वाली प्रथम दो प्रतियो के बाद रखी जानी चाहिए दूसरी अनुमानतः सबसे पुरानी है ये प्रतियां परीखजी को जूनागढ [गुजरात] से प्राप्त हुई थी।

परमानन्दसागर की पहली प्रति—परीखजी की पास की यह प्रति गुटके के आकार पर ६ × ४ इंच मे है। पुस्तक के ऊपर के कई पृष्ठ फट अवश्य गए है और उपलब्ध प्रथम पृष्ठ माखन चोरी प्रसग के पद सख्या ६ से प्रारम्भ है। इसी पृष्ठ पर ऊपर दूसरे प्रकार के अक्षरों मे लिखा है 'आ पुस्तक के मालीक सेठ छगनलाल नाथाभाई मु लिया है। दोनो ओर हाशियो के लिए स्थान छूटा है। रागो के नाम और विषयो के नाम पर चोका सा गेरू लगा है। पद सख्या विषयो के साथ-साथ चली है। नया विषय पुन न १ से प्रारम्भ किया गया ह। बचे हुए लगभग १२१ पृष्ठ है। पदो की गणना करने से २१७ पद होते है प्रारम्भ मे कितने पद और पद रहे होगे पता नहीं चलता।

लेखन काल—इस प्रति के अन्त मे पुष्पिका इस प्रकार दी गई है। श्रीरस्तु। कल्याणमस्तु। पठनार्थ बाबा मधुरादासजी लिखित भट्ट माधवजी ॥ श्री जीर्णदुर्ग मध्ये लषि छे ॥ स १७४२ फाल्गुण वदि ७ भोमवासरे लषि छे ॥ लेषक पाठकयो शुभं भवतु ॥ मगल लेषकानाथ ॥ पाठकानाथ मगल ॥ मगल दुर्ग जन्तुना भूमौ भूपति मगलम्। ४२ ॥ पुष्पिका मे जीर्ण दुर्ग अर्थात् जूनागढ (गुजरात) इस प्रति का लेखन स्थान निश्चित होता है तथा लेखक कोई माधव भट्ट है। लेखन काल स १७४२ प्रति मे स्पष्ट दिया हुआ है।

प्रति के अक्षर सुन्दर सुवाच्य तथा स्पष्ट है। प्रति मुद्रण प्रकाशन सपादन की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है।[2]

परीखजी की परमानन्दसागर की दूसरी प्रति—यह प्रति बाह्य आकार प्रकार से अत्यन्त क्षीण जीर्ण एव प्राचीन है। कही पत्ताबवाली से रक्खी गई थी अतः अन्तिम पृष्ठ पानी से भीगा हुआ है प्रति का आकार ? × ४ इंच है। इसमे आदि के और अन्त के पृष्ठ फटे हुए है। प्रारम्भ के ११२ पद नहीं है। अन्त मे पुष्पिका नहीं है। अंतिम पद जो उपलब्ध है उसकी सख्या ८१७ की हुई है। हाशिए पर प्रसग अथवा विषय क्रम लाल स्याही से लिखे हुए है। पुस्तक सुन्दर और सुवाच्य है।[3]

---

१ हिन्दी साहित्य पृष्ठ १८०

२ इस प्रति की प्रामाणिकता की जाच अलीगढ विश्वविद्यालय के भतपूर्व हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा हरवंशलाल ने की है। उनका मत है कि यह प्रति अत्यन्त प्रामाणिक और व्यवस्थित लिखन होनी चाहिए होनी चाहिए। प्रारम्भ के पृष्ठों के न होने से बडी क्षति अनुभव होती है

३ १ देखो चित्र नं ८—

देखो चित्र नं ६—१०—११

इस प्रति के लेखन काल का पता चलाना अत्यन्त कठिन है क्योंकि अंतिम पुष्पिका नहीं। किन्तु लेखन शैली और लिपि को देखकर मीतलजी का अनुमान था कि यह १७ वीं शताब्दी की होनी चाहिए। वस्तुतः यह प्रति यदि पूर्ण होती तो बड़े उपयोग की होती और संभवतः सबसे अधिक प्रामाणिक होती। और पद संख्या की दृष्टि से भी अधिक पदों के संग्रह का अनुमान होता। क्योंकि ८२६ तथा ८२७ वें पद भ्रमर गीत के प्रसंग वाले पद हैं। इससे इस संग्रह के शीघ्र समाप्त होने का अनुमान नहीं होता। इस प्रकार परमानंद सागर की यह पूर्ण प्रति अपना विशेष महत्व रखती है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने भी इसे स्वयं देखा है और इसकी प्राचीनता स्वीकार की है।

इस प्रकार परमानन्दसागरकी लगभग ११-१४ हस्तलिखित प्रतियाँ प्रकाश में आई हैं। मुद्रित स्वतंत्र प्रति का अब तक अभाव रहा। परमानन्ददासजी के कुछ पद अवश्य मुद्रित मिलते हैं। परन्तु या तो वे अन्य अष्टछापी कवियों के साथ हैं या वे संगीत एवं रागों की उपयोगिता की दृष्टि से अन्य वैष्णव कवियों के पदों के साथ हैं।

हस्तलिखित के प्रतियों के देखने से हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं —

१—सभी प्रतियाँ प्रतिलिपियाँ हैं। परमानन्ददासजी की हस्त लिखित मूलप्रति कहीं उपलब्ध नहीं होती न चर्चा ही मिलती है।

२—प्रायः सभी प्रतियों में पद विषय क्रमानुसार हैं।

३—कवि ने सूरसागर की भाँति भागवत के स्कंधात्मक क्रमों के अनुसार पद रचना नहीं की।

४—यदि समस्त उपलब्ध प्रतियाँ एक स्थान पर एकत्र करके संपादित की जाँय तो लगभग २५   के लगभग पद मिल पायेंगे।

५—मुख्य रूप से परमानन्ददासजी दशमस्कंध पर ही केन्द्रित रहे हैं। अन्य स्फुट प्रसंग जैसे राम जयन्ती नृसिंह जयन्ती वामन जयन्ती तथा दीप मालिका अक्षय तृतीया आदि उत्सवों के पद सम्प्रदाय की परिपाटी के अनुसार ही हैं।

६—उनके पदों का विषय बाल लीला गोपीभाव विरह मान युगल लीला रास आदि हैं।

७—वे भगवान् कृष्ण की रसमयी भावात्मक लीलाओं के अतिरिक्त अन्य विषयों पर पद रचना नहीं करते थे।

—परमानन्ददासजी की शैली प्रधान रूप से पद शैली है।

९—उनके पदों में १—परमानन्ददास प्रभु २—परमानन्दस्वामी ३—परमानन्ददास ४—दासपरमानन्द एवं ५—परमानन्द इस प्रकार पाँच छापें मिलती हैं।

१ —परमानन्दसागर के अतिरिक्त उनकी अन्य रचनाएँ अप्राप्य और संदिग्ध हैं। वे पुष्ट प्रमाणों के अभाव में अप्रामाणिक ही लगती हैं।

भक्त परमानन्ददासजी 'परमानन्दसागर' कार हैं। कीर्तन सेवा में तल्लीन भक्त कवि को मसि कागदी के स्पर्श की न इच्छा थी न आवश्यकता। अपने ओसरे पर कीर्तन के समय पीछे बैठे हुए साथ-साथ गावरिए एवं श्रद्धावनियों की कण्ठ-परम्परा से ये पद अनेक दशाब्दियों

प्राय हस्तलिखित प्रतियाँ कुछ नित्य कीर्तन क्रम मे वर्षोत्सव क्रम से कुछ तथा कुछ लीलात्मक क्रम से लिखी जान पड़ती है।

नित्य सेवा क्रम मे सम्प्रदाय का अपना क्रम है। उसमे मंगलाएँ महाप्रभुजी तथा गुसाईं जी की यमुनाजी के पद गंगाजी के पद जगायवे के पद मंगला शृंगार आरती ग्वालवे के पद ग्वाल गोदोहन छाक राजभोग शीतकाल के पद बीरी अरोगायवे के पद, उष्णकालके पद मानके पद उत्थापनके पद, शयन मानकी प्यालने पद मान आदिके पद आते हैं।

अष्टयाम की नित्य सेवाके सहसों पद अष्टछाप के कवियों ने रचे हैं फिर नित्य कीर्तनकार या कवि का अपना जोसरा होता था वह नित्य नये पदों की रचना करके भगवान् को रिझाता था। परमानन्ददासजी निरन्तर मे रहकर श्रीनाथजीका कीर्तन सेवा करते हुए सहस्रावधि पदो की रचना करते थे। जैसी कि सम्प्रदाय की प्रणाली थी। प्रत्येक कीर्तनकार के साथ आठ-आठ झाँझरिये रहते थे। जो टेक उठाने का कार्य करते थे। वे स्वयं भी कवि होते थे। परमानन्ददासजीके आठ झाँझरिये जोकि उनके अनुगायक कहलाते थे वे थे—(१) पद्मनाभदास (२) गोपालदास (३ भास्करदास (४) गदाधरदास (५) मधुसूदन (६) हरिजीवनदास (७) मानिकचन्द और (८) रसिकबिहारी।

इस क्रम मे परमानन्ददासजी का जितना साहित्य रहा होगा और उसमे से जितना प्रकाश मे आया और जितना अभी प्रकाश मे आने को पड़ा है इस सबका लेखा-जोखा निकालना साहित्य रसिकों एवं सम्प्रदाय प्रेमियो का कर्तव्य है

वर्षोत्सव का क्रम—वर्षोत्सव का क्रम जन्माष्टमी से प्रारम्भ होकर वर्ष भर चलता है और अगले वर्ष की भाद्रपद बदी ७ मी को समाप्त होता है। वर्षोत्सव के कीर्तनो में जन्माष्टमी बधाई छठी पलना अन्नप्राशन कर्णवेध नामकरण करवट, उत्सव राधाजी की बधाई, बाललीला दानके पद साझी देवी पूजन मुरली बघेरा रास धनतेरस रूपचौदस दिवारी भाव दिवालाकी हटरी अन्नकूट, गोवर्धन पूजा गोवर्धन लीला के पद देव प्रबोधिनी मकरसंक्रान्ति होरी धमार, रामनवमी नरसिंह चतुर्दशी वामन जयन्ती भाव के पद अक्षय तृतीया हिंडोरा तथा पवित्रा आदि के पद आते है। परमानन्ददासजी के पद इस क्रम से भी उपलब्ध होते है।

लीलात्मक क्रम मे उनके वे सरस मधुर पद आते है जो भगवान् की बाललीला पूतना उद्धार के उपरान्त माखन लीला छाक के पद कृष्ण यमुना तट मुग्ध लीला, वंशिका अथवा विप्रपत्नी मुरली रास गोवर्धन आदि भागवत के दशमस्कन्ध के अनुसार उन्होंने रचे है।

परमानन्ददासजी की जितनी भी प्रतियाँ है उनमे उपर्युक्त तीनो ही क्रम मिले-जुले मिलते है। यदि ये प्रतियाँ सर्व सुलभ हो सकें तो इनके व्यवस्थित सम्पादन का कार्य और भी आगे बढ़ाया जा सकता है।

चतुर्थ अध्याय

शुद्धाद्वैत दर्शन और परमानन्ददासजी

अष्टछाप के कवियो का उद्देश्य मुख्य रूप से दार्शनिक सिद्धान्तो का निरूपण नही था। वे अहर्निश कीर्तन सेवा मे आसक्त रहने के कारण भगवल्लीला गान को ही महत्व देते थे। उनके प्रभु जन ताप निवारणार्थ [1] इस भूलोक मे अवतीर्ण होते हैं और विविध मानवीय लीला करते हुए भक्तोके मिलाषो अनुरंजित करते हुए दुष्टदलन भी करते है। और इस प्रकार लीलामय प्रभु भूभार उतारा करते हैं। भगवान् के कपटमानुष देह कृत इस लीला से कही लासरिक जनो से उनका ईश्वरत्व विस्मृत न कर दिया जाय इस हेतु ये भक्त कवि बीच-बीच मे उनका पूर्ण पुरुषोत्तमत्व अथवा पूर्णब्रह्मत्व भी प्रतिपादन करते चलते हैं।

ससार की अनित्यता जीव की प्रपचासक्ति और अविद्याकृत विवशता भक्ति की पूर्णता और आत्म-निर्भरता माया का मिथ्यात्व आदि का भी उन्हें यथास्थान प्रसग चलाना पडा है। अत उनके काव्य मे दार्शनिक प्रसगो का आनुषगिक रूप से यत्र-तत्र आजाना सहज और स्वाभाविक था सभी अष्टछाप के कवि सम्प्रदाय के आचार्य वल्लभ तथा गोस्वामी विट्ठलनाथजी के दीक्षित शिष्य थे। अत सभी के दार्शनिक विचार वल्लभ सिद्धान्तानुसार ही होने चाहिए। अत परमानन्ददासजी के दार्शनिक विचारो और उनके काव्य मे दार्शनिक तत्वो के सकलन से पूर्व महाप्रभु वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तो को सक्षेप मे समझ लेना उचित होगा। यो तो परमानन्ददासजी मुख्यत भक्त कवि ही थे। दार्शनिक सिद्धान्तो की जटिल गुत्थियो मे वे नही उलझे फिर भी इन भक्त कवियो के काव्य मे यत्र-तत्र दार्शनिक विचार मिल ही जाते हैं।

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त अथवा ब्रह्मवाद—भारतीय धर्म साधना की प्रारम्भ से ही दो दृष्टियाँ रही हैं –

१—तात्विक अथवा सैद्धान्तिक पक्ष।

२—साधनात्मक अथवा व्यवहार पक्ष।

सैद्धान्तिक दृष्टि से आचार्य वल्लभ का सिद्धान्त शुद्धाद्वैत अथवा ब्रह्मवाद कहलाता है। इसी को अविकृतपरिणामवाद कहते हैं।

साधनात्मक अथवा व्यवहार दृष्टि से इसे पुष्टिमार्ग या अनुग्रहमार्ग अथवा शरणमार्ग कहा जाता है। और आचार्य वल्लभ भी उसका सस्थापक। [2]

अद्वैत के पूर्व 'शुद्ध' शब्द लगाने का तात्पर्य है 'माया का सबध राहित्य है' [3]। आचार्य के समय मे 'मायावाद' का निरसन अथवा खण्डन है अत इसे शुद्धाद्वैतवाद कहा जाता है।

---

१ प्रगट भयो जनताप निवारन।
भक्त दुष्टजन करवो प्रगट कर जनदास की रच्छा के कारन॥
काकरौली द्वारा प्रकाशित प . सा . पद स . १

२ साकार ब्रह्मवादैक स्थापको वेद पारग। [illegible] स्तो . श्लो
[illegible] शरण मार्गोपदेष्टा—श्रीकृष्णहादविद्। [illegible] , ११

३ माया सबध रहित शुद्धमित्युच्यते बुधै।
कार्य कारण रूप हि शुद्ध ब्रह्म न मायिकम्॥ शु . मा . श्लो .—१०

अर्थात् वेदाध्ययन यज्ञ दान तप आदि करने से मोक्ष होता है। वेदाध्ययन आदि मोक्ष के साधन हैं, इन साधनों से मुक्ति प्राप्त करना 'मर्यादा' है। परन्तु जहाँ ये साधन नहीं गिने जाते और इन साधनों से भी जो श्रेष्ठ है ऐसे भगवान् के स्वरूप बल से ही जो प्रभु की प्राप्ति होती है उसे 'पुष्टि' कहते हैं।

यह पुष्टिमार्ग वेद शास्त्र और पुराणों से प्रतिपादित है। आचार्य ने इसे प्रमाण चतुष्टय से प्रमाणित किया है। पद्मपुराण में लिखा है —

श्री[1] ब्रह्म[2] रुद्र[3] सनका[4] वैष्णवाः क्षितिपावनाः।
चत्वारस्ते कलौ भाव्या सम्प्रदाय प्रवर्तकाः॥

विष्णुस्वामि का सम्प्रदाय रुद्र सम्प्रदाय कहलाया। इसी सम्प्रदाय की आचार्य परंपरा में वल्लभाचार्य को अभिषिक्त किया गया। आचार्य वल्लभ ने अपने साधनमार्ग अथवा शरणमार्ग का नाम पुष्टिमार्ग रखा। यह एक सुगमतम भक्तिधर्म है जिसके विषय में कहा जाता है कि इस राजमार्ग पर यदि कोई आँख मीच कर भी दौड़े तो यह मार्ग इतना स्वच्छ और निष्कण्टक है कि इस पर दौड़ने वाला न गिरता है न फिसलता है। भगवान् व्यास कहते हैं कि यह मार्ग अत्यन्त निष्कण्टक और उत्तम है क्योंकि इसमें श्रीहरि की भलीभाँति अर्चा सेवा होती है।[2]

तात्पर्य यह है कि तत्त्व दृष्टि से अथवा दर्शन के क्षेत्र में जिसे हम शुद्धाद्वैतवाद अथवा ब्रह्मवाद अथवा अविकृतपरिणामवाद पुकारते हैं वही साधना के अथवा भक्ति के क्षेत्र में 'पुष्टिमार्ग' कहलाता है।

अन्य दर्शनों की भाँति शुद्धाद्वैतदर्शन में भी ब्रह्म जीव जगत् मायादि सभी की अपनी परिभाषा है। और आचार्य ने इन सबकी अपनी विशिष्ट शैली से युक्ति युक्त मीमांसा की है। नीचे आचार्य के मतानुसार ब्रह्म जीव जगत मायादि का स्वरूप बतलाने की चेष्टा की गई है।

वल्लभ के ब्रह्म का स्वरूप—आचार्य वल्लभ का ब्रह्म शंकराचार्य के समान अन्ततोगत्वा निर्गुण निराकार नहीं। वे ब्रह्म के निर्गुणत्व का प्रतिपादन करते हुए इसको सर्वोच्च सत्ता मानते हैं। शंकरके अनुसार ब्रह्मका सगुणत्व उसके निर्गुणत्व की अपेक्षा थोड़ा निम्नत्व लिए हुए है। उनके अनुसार ब्रह्म का सगुणत्व केवल उपासना के लिए है। और वह तभी तक जब तक कि पूर्ण ज्ञान की स्थिति में साधक नहीं आ जाता। ज्ञान-दशा प्राप्त होने पर सगुण की आवश्यकता नहीं रह जाती। वल्लभाचार्य का ब्रह्म केवल एक ही है। वही सगुण भी है और निर्गुण भी। वह निर्गुण इसलिए है कि उसमें जागतिक गुण नहीं। वह सगुण इसलिए है कि वह आनन्दादि दिव्यधर्मों वाला है। इसी प्रकार वह निराकार भी है साकार भी। वह आनन्दस्वरूप है।

ब्रह्म को जहाँ अन्य दार्शनिक परमार्थतः अत्यन्त निर्धर्मक निर्विशेष निराकार निर्गुण मानते हैं वहाँ आचार्य वल्लभ उस प्रकार न मानते हुए ब्रह्मसूत्रकार का आश्रय लेकर 'सर्व-धर्मोपपत्तेश्च' सर्वोपेता च तद्दर्शनात् इत्यादि ब्रह्मसूत्रोक्त सिद्धान्तों का अवलम्बन करके ब्रह्म

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्॥

२ धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह॥
एवं निष्कण्टकः पन्था यत्र संपूज्यते हरिः।

मुक्त मानकर भी उसमे नित्यत्वादि धर्म मानती है। फिर 'ब्रह्म मे इतने ही धर्म हैं।'[१] इस प्रकार का नियत धर्मवाद मानने से ब्रह्म की इयत्ता स्थिर हो जाती है। इसलिए अनियत धर्मवाद का स्वीकार करके ब्रह्म में सर्वधर्मवत्ता सहज ही है ऐसा ही मानना चाहिए।

जगत् और जीव मे ब्रह्म के कार्य होते हुए भी ये ब्रह्म रूप ही हैं ब्रह्मानन्य हैं ब्रह्माभिन्न हैं फिर भी प्रापंचिक पदार्थों से ब्रह्म विलक्षण है। उसे जब क्रीडा करने की इच्छा होती है तो आनन्दांश तिरोभूत हो जाता है। वस्तुत समस्त जगत् ब्रह्म मे ओत प्रोत है और अव्यक्त रीति से ब्रह्म में लीन है। इस ब्रह्मवाद में सत्कार्यवाद ही इष्ट है फिर भी द्वैत की भय नही। इसलिए भागवत म कहा है जहाँ जिसके कारण जिससे जिसका जिस लिए, जिस प्रकार जो भी जिस समय होता है वह सब प्रधान पुरुषेश्वर ब्रह्म ही है।[२] अत यह न्यायोपबृंहित सर्व वेदान्त प्रतिपाद्य निखिल धर्म युक्त अनवगाह्य माहात्म्य सर्वभवनसमर्थ है। इस प्रकार का जब उसके माहात्म्य का ज्ञान हो जाता है तो उसके स्वरूप के प्रति सर्वतोधिक स्नेह और भक्ति प्राप्त होती है। और उसी से मुक्ति होती है अन्य से नही।

ब्रह्म का विरुद्धधर्माश्रयत्व—ब्रह्म निर्धर्मक है तथापि सधर्मक है निराकार है, तथापि साकार है निर्विशेष है तथापि सविशेष है निर्गुण है अणु से अणु और महान् से महान् है। अगम्य मूर्ति है तथापि एक और व्यापक है कूटस्थ है तथापि चल है अकर्ता है, कर्ता भी है अविभक्त भी है विभक्त भी है। क्योकि जब इच्छा होती है तब प्रकट होता है। और तभी विभक्त होता है। वह अगम्य और गम्य दोनो है। वह अदृश्य है फिर भी दृश्य है। नाना विधि सृष्टि करता है फिर भी विषम नही। क्रूर कर्म करता है। परन्तु निर्घृण नहीं। ब्रह्म अनेक रूप है तथापि गाढ घनीभूत सैन्धववत् बाह्याभ्यन्तर सदा सर्वदा एक रस है शुद्ध है। वह बालक है तथापि रसिक मूढ रूप है। स्वतन्त्र है तथापि भक्त पराधीन है। अभीत है परन्तु (भक्त के निकट) भीत है। निरपेक्ष है परन्तु (भक्त के निकट) सापेक्ष। चतुर है परन्तु भक्त के निकट महामुग्ध है। सर्वज्ञ है परन्तु (भक्त के निकट) अज्ञ है। आत्माराम है फिर भी रमण करता है। पूर्णकाम है परन्तु (भक्त के निकट) दीन भी है। परन्तु (भक्त की कामना पूर्ण करने के लिए) कामार्त है। अदीन है किन्तु (भक्त के निकट) दीन है। स्वयं प्रकाश है फिर भी (भक्तातिरिक्त) अप्रकाश है। बहिरूप है परन्तु (भक्त के निकट) अरूपम है। पराधीन परवश है और रसिक वश भी है। यह ब्रह्म इन्द्रियातीत अगम्य परन्तु स्वेच्छा से दृश्य होने वाला है और अवतार दशा मे प्राकृतिक धर्म को अंगीकार करने वाला है अद्भुत है और स्तुति रहित है। इस प्रकार विरुद्धधर्मधर्माश्रयत्व का अनुभव कराता हुआ निःसीम अगाध माहात्म्य प्रकट करता है। और तो क्या वह अविकृत है फिर भी कृपापूर्वक परिणामशील भी है।

ब्रह्म का सर्वकर्तृत्व —वस्तुत ब्रह्म अविकृत है। जगत् मे परिणामशील होता हुआ भी अविकारी है और स्वीय अगाध माहात्म्य प्रदर्शनार्थ ही वह अविकृत निर्गुण

---

१ सर्वकः ब नि बल्मोदे।

२ यद येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा
स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधान पुरुषेश्वरः भा न वी स्नो ७०

वह रमणशील क्रीडाशील रसात्मक रस शिरोमणि है फिर भी नन्दनन्दन है—

रसिक सिरोमनि नन्दनन्दन ।

रास रस अनूप बिराजत गोप बधू बर सीतल चन्दन ।।

जब वह रास क्रीडा करता है तब अखिल भुवन मुग्ध हो जाता है—

सरद बिमल निसि चन्द बिराजित क्रीडित जमुना कूलै हो ।

परमानन्द स्वामी कौतुहल देखत सुर नर भूले हो ।। [प स ११८]

वह परब्रह्म कृष्ण अनुपम सौन्दर्यशाली कोटि कन्दर्प लावण्यवपुष नराकृति होकर भी वेद पुराण प्रतिपाद्य है—

सुन्दरता गोपालहिं सोहै ।

कहत न बनै नैन मन आनन्द जो देखत रति नायक मोहै ।

सुन्दर चरन कमल गति सुन्दर गुंजा फल अवतंस ।

सुन्दर बन माला उर मंडित सुन्दर गिरा मनो कल हंस

सुन्दर बेनु मुकुट मनि सुन्दर, सुन्दर सब अंग स्याम सरीर ।

सुन्दर बदन अवलोकित सुन्दर-सुन्दर ते बल बीर ।।

वेद पुराण निरूपत बहु बिध ब्रह्म नराकृति रूप निवास ।

बलि-बलि जाउ मनोहर मूरति हृदय बसो परमानन्ददास ।। [प सं १११]

'रसो वै सः' के अनुसार वह रस स्वरूप है। भागवतादि महापुराणो मे उस रसेश की चर्चा है शुक व्यास आदि मुनि पुंगव उस रसात्मा की ही अहर्निश चर्चा करते हैं। आगम निगम जिसका पार नहीं पाते और अगाध बताकर मौन हो जाते हैं वही यमुना के तट के निकट वंशीवट मे राधिका के साथ विहार करता है—

जो रस रसिक अमीर मुनि गायो ।

सो रस रटत रहित निस बासर सेष सहस मुख पार न पायो ।।

भागवत सिव सारद मुनि नारद कमल कोस मे कौन बतायो ।

जद्यपि रमा रहत चरनन तर निगमनि अगम अगाध बतायो ।।

तरनि तनया तट बंसीवट निकट वृन्दावन बीथिन बहायो ।।

सो रस रसिक दासपरमानन्द वृषभानु सुता उर माझ समायो ।। [प स ११५]

वह दिव्य रस कर्मठ और ज्ञानियो की पहुँच से बाहर है, यह केवल रसिकों को ही सुलभ है और केवल भक्ति-साध्य है। भगवान के अनुग्रह से परमानन्द जैसे भक्तो को यत्किंचित् उपलब्ध हो जाता है—

आनन्द सिन्धु बढ्यो हरि तन मे ।

ना परस्यौ करमठ अरु ज्ञानिनु अटकि रह्यौ रसिकन के मन मे ।

मद-भर अवगाहत सुचि जन भक्ति हेत प्रगटत छिनु मे

कछुक लहत नन्दसुवन कृपातें सो छिरियत परमानन्द जग मे ।। [प स ११६]

संक्षेप में परमानन्ददास पूर्णब्रह्म के उपासक हैं। वही पूर्णब्रह्म उनका त्रिभुवन पति परमात्मा श्रीकृष्ण है अवतार धारण करके भक्तों को सुख देने के लिए वह व्रजभूमि में नाना लीलाएं किया करता है। वह निर्गुण सगुण दोनो है। वह प्राकृत लीला करने के कारण सगुण है। वह लीलावतारी निजेच्छा से नन्द यशोदा और गोप गोपीजनों को सुख देने के लिए ही स्वयं अवतीर्ण होता है। वह ब्रह्मा इत्यादि से वन्दनीय आनन्द स्वरूप रस रूप है। सबसे परे और सर्वमय है। वह निगम प्रतिपाद्य होकर भी राधा का जीवनाधार है। उस गोपीनाथ की परमानन्ददास उपासना करते हैं। कृष्णावतार में परमानन्ददासजी की सहज प्रीति है[1]

अक्षर ब्रह्म—ऊपर कहा जा चुका है कि ब्रह्म के तीन स्वरूप हैं। उनमें आधिदैविक ब्रह्म भक्तों को ही प्राप्य है। आध्यात्मिक ब्रह्म को ही अक्षर ब्रह्म कहते हैं। यदि शुद्धाद्वैत ज्ञानी भक्ति रहित हो तो उसका अक्षर ब्रह्म में लय होता है। अर्थात् ज्ञानी को अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जगत् तो ब्रह्म का आधिभौतिक स्वरूप है।

भगवान् जब जिस रूप द्वारा जो कार्य करने की इच्छा करते हैं तब उसी स्वरूप से वे समस्त व्यापार भी करते हैं। अतः ज्ञानी को जब ज्ञान द्वारा मोक्षदान करने की इच्छा करते हैं तब वे पुरुषोत्तम के आधार भाग चरण स्थानीय अक्षरब्रह्म के अक्षररूप कालरूप कर्मरूप और स्वभावरूप—चार स्वरूप ग्रहण करते हैं। उस समय प्रकृति और पुरुष इस प्रकार द्विरूप होकर वह अक्षरब्रह्म पुरुषोत्तमपूर्णसत् पूर्णचित्, पूर्ण अक्षरानन्द होता है। परन्तु अक्षर ब्रह्म में आनन्द का कुछ तिरोभाव होता है इसलिए वह गणितानन्द कहलाता है। यही उसकी विलक्षणता है।[2] मानवीय आनन्द लेकर अक्षरानन्द पर्यन्त आनन्द की इयत्ता है। इसी कारण तैत्तरीयोपनिषद् में कहा है—

सैषा ऽऽनन्दस्य मीमांसा ॥

'मुझे इस प्रकार से प्रकट होकर यह लीला करना है।

इस प्रकार जब पुरुषोत्तम को इच्छा मात्र होती है तब अन्तःकरण में सत्त्व का समुत्थान होता है और उससे आनन्दांश तिरोभूतवत् हो जाता है। पुरुषोत्तम वस्तुतः लीला की इच्छा मात्र करता है इच्छा में व्यापृत नहीं होता अतः पुरुषोत्तम सर्वदा अतिरोहितानन्द है और अक्षर ब्रह्म की इच्छा में व्यापृत होजाने के कारण सत्त्व के समुद्भूत होने से तिरोहितानन्द हो जाता है।

अक्षरब्रह्म में आनन्द तिरोहित है फिर भी वह जीव से विलक्षण है। वस्तुतः अक्षर ब्रह्म में इच्छा के प्रविष्ट होने से और कार्य व्यापृति आने से उसमें आनन्द का तिरोभाव कहा जाता है अन्यथा है वह है आनन्दमय ही। इसी को ब्रह्म कूटस्थ निर्विकार अव्यक्त आदि कहाए हैं।[3] अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम शाश्वत है और मूल पुरुषोत्तम के साथ अविच्छिन्न होने से ही इस अक्षरब्रह्म की अवस्थिति है। अक्षरब्रह्म में सर्वावरण युक्त कोटिश अण्ड हैं यही परमधाम है परमव्योम है और तुरस्वरूप का पुञ्ज है।

---

१ [illegible] मीत मोपालहि भावै। प. स. १४५

तथा

मोहि भावै देवकि देव। प. स. १९७

२ इच्छामात्रात्—अ. भ. ३ ३ ३४

३ अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्। गीता ८। ११

विस्फुलिंगवत् अणुस्वरूप उत्पत्ति नहीं वह न जन्मता है न मरता है। उसका आविर्भाव होता है। जनन मरण जातकर्मादि औपचारिक धर्म हैं। और शरीर के धर्म हैं। जीव के नहीं। जीव ज्ञाता है ज्ञान उसका धर्म है। जीव धर्मी है। प्रकाशक चैतन्य उसका धर्म है इस कारण जीव तेजोमय ज्योति स्वरूप है चिन्मय है और प्रकाशित होता है। सूर्य और उसकी प्रभा में जिस प्रकार धर्मी और धर्म का अभेद है उसी प्रकार ज्ञाता (जीव) और ज्ञान में अभेद है।

जीव का अणुत्व —

शांकर मत में जिस प्रकार जीव को विभु माना है उसी प्रकार शुद्धाद्वैत में उसे अणु माना है। क्योंकि उसमें उत्क्रान्ति गति अगति आदि की योग्यता स्वीकार की गई है। किन्तु शांकर मत में जीव को अकर्ता अभोक्ता माना है। शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में जिस प्रकार सर्वधर्म विशिष्ट ब्रह्म कर्ता है भोक्ता है तो तदंश जीव भी ब्रह्म के संबंध से कर्ता है भोक्ता है। उसका कर्तृत्व भोक्तृत्व औपचारिक नहीं है। बुद्धि तो कारण मात्र है। जीव सनातन है और ब्रह्मांश है।[1] गीता के इस कथन के अनुसार महाप्रभु वल्लभाचार्य जीव को ब्रह्म का अंश ही स्वीकार करते हैं। और इस प्रकार निर्धर्मी निरवयव निराकार ब्रह्म सधर्मी सावयव साकार हो जाता है। और इसलिए अंशांशी भाव के आधार पर ब्रह्मवाद अथवा शुद्धाद्वैत में ब्रह्म और जीव में अभेद माना जाता है।

'तत्त्वमसि' महावाक्य के आधार पर शांकर मत वाले जीव का अणुत्व स्वीकार नहीं करते। भागत्याग लक्षणा के आधार पर जीव और ब्रह्म में एकत्व स्थापित किया जाता है। और इसी लिए यहाँ शांकर मत वालों का विचार है कि जीव में अणुत्व कैसा? परन्तु सूत्रकार ने इस आपत्ति को— "तद्गुणसारत्वात् तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत्"[2] कहकर समाप्त कर दिया है। 'तत्त्वमसि' में जो एकत्व की ओर संकेत है वह उसके गुण को लक्ष्य करके है। ब्रह्म का प्रधान धर्म आनन्द है। जीव में यह धर्म अप्रत्यक्ष है जब यह प्रत्यक्ष हो जाता है तब जीव ब्रह्म हो जाता है। यही 'तत्त्वमसि' का तात्पर्य है। 'यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात्'[3] सूत्र में यही बात कही गई है।

परमानन्ददासजी के जीव विषयक विचार—

परमानन्ददासजी ने अपने लीला प्रधान काव्य में शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के आधार पर जीव की बहुत लम्बी चौड़ी व्याख्या न करके उन्होंने अंशांशी भाव की बड़ी ही बढ़िया कल्पना की है।

वे लिखते हैं कि —

तातें गोविंद नाम में गुण नामो नाहीं।
चरण कमल हित प्रीति करि सेवा निरवाहीं ॥
जो हौं तुम में मिलि रहौं कछु भेद न पाऊं ॥
ऐसे काम के नेम क्यों तुम मांझ समाऊं ॥

---

१ ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः गीता १५।७

२ ब्रह्मसूत्र—२ ३–२९

३ वही—२ ३–३

जसे सुक नारद मुनि ग्यानी यह रस अनुदिन पीवत ।।
आनन्दमूल बचाके अपर या रस ऊपर जीवत ।।
देखु विचार कहा धौं कीजे जेहि भव सागर ते छूटै ।।
परमानन्द भजन बिन सावे बंध्यौ अविद्या छूटै ।। [प स ६८६]

इस अविद्या से ही यह जीव माया ममता मे फसा हुआ आत्मस्वरूप या भगवत्स्वरूप को भूला हुआ है। इसी को लक्ष्य करके महाकवि परमानन्ददास कहते हैं कि ये जीव तीनों काल में भगवत्स्वरूप है परन्तु जीव ने अविद्या के कारण आत्मस्वरूप को भूला हुआ है।

हरि बस भावत।
जीव एक अविद्या भासत वेद विदित यह बात।
सूर भी यही कहते है.—
अपुनपौ आपुन ही बिसर्यौ।
जैसे स्वान कांच मंदिर महँ भ्रमि भ्रमि भूंकि मर्यौ ।।

× × ×

सूरदास नलिनी को सुवटा कहि कौने जकर्यौ। [सूरसागर प्र स्कंध]
आत्मस्वरूप की इस भयंकर विस्मृति को लक्ष्य करके परमानन्ददासजी ने कहा है —
माई हौं अपने गोपालहि गाउ।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन देखि-देखि सुख पाउ।

× × ×

जो ग्यानी ते ग्यान बिचारो जे जोगी ते जोग।
कर्मठ होय ते कर्म बिचारो जे भोगी ते भोग ।।

× × ×

अपने धनी की सुरत सजी ? भोग लियो संसार ।।
परमानन्द प्रभु मथुरा मे उपज्यौ बड़े बिचार ।। [प स १ २]

धनी (परमात्मा) की विस्मृति से यह जीव संसारी हो गया है। इस विस्मृति के कारण ही यह जीव कहलाता। यह जीव अनन्त काल से भटक रहा है। गुरु के द्वारा पुनः आत्मस्वरूप का बोध कराये जाने पर उसका तिरोहित हुआ आनन्दांश आविर्भूत होता है और वह फिर 'वही भूत भगवदात्मा' हो जाता है। सूर ने इस विस्मृति के चले जाने और आनन्दांश के प्रकट हो जाने को इस प्रकार कहा है कि —

"अपुनपौ आपुन ही में पायौ।
सब्द ही सब्द भयौ उजियारो सतगुरु भेद बतायौ।"

संक्षेप मे परमानन्ददासजी ने भी आचार्य वल्लभ और सूर की भाँति ईश्वर और जीव मे सान्निध्य अंश और अंशवान वाली भावना स्वीकार किया है।

परमानन्ददासजी के काव्य में जगत् और संसार—

भगवल्लीला मे मस्त रहने वाले भक्तप्रवर परमानन्ददासजी ने जगत और संसार का पृथक रूप से तात्विक निरूपण नही किया। उन्होने ससार अथवा भवसागरके तापोकी चर्चा करके उससे पार जाने अथवा उबर जाने के लिए प्रार्थना अवश्य की है। जगत के भगवद्रूप होने का उन्होंने सकेत कर दिया है। वे कहते हैं—

हरि प्रभु भावत होइ सो होई।

× × × × ×

आदि मध्य अवसान विचारत हरि रूप सब ठहरात।

जीव एक अविद्या भासत वेद विदित यह बात॥

जगत ब्रह्म की भाँति आदि मध्य अवसान रहित भगवद्रूप ही है। जीव को जीव मे अविद्या के कारण उसके भगवद्रूप होने की प्रतीति नही होती।

एक और स्थान पर एक गोपी कहती है—

नैननि को ठकुरकु तेरो।

म्याह गुपाल लाल बस कीन्हौं मोहन रूप जगत केरो॥

मुग्धा बना गोपिकाओ को सवत्र कृष्ण ही कृष्ण दिखाई देते हैं—

जित देखो तित कृष्ण मनोहर दूजी दृष्टि न परे री॥

इस प्रकार यह दृश्यमान जगत भी कृष्ण रूप ही है। परन्तु परमानन्ददासजी ने ससार या भवताप की चर्चा अवश्य की है। पच पर्वा [1] अविद्या जनित क्लेशों से युक्त ससार प्रवाह म बहते हुए जीव की कोटि में अपने को रख कर एक स्थान पर यह कहते हैं कि—

"श्री वल्लभ रतन जतन करि पायो।

बहौ जात मोहि राख लियो है, पिय सग हाथ गहायो।

× × × × ×

परमानन्द दास को ठाकुर, नैनन प्रगट दिखायो॥

उपर्युक्त पद मे 'ससार प्रवाह' मे पडे हुए प्रवाही जीव के समान अपनी पूर्व दुर्दशा को 'बह्यौ जात' म व्यक्त करते हुए अपने गुरुदेव वल्लभाचाय की शरण मे आने से शान्ति मिल जाने की बात परमानन्ददासजी ने कही है। उन्होंने जीवन नौका के कर्णधार गुरुदेव से पार उतारने और प्रभु से मिलाने की बात को बार-बार दुहराया है। वे कहते हैं—

खेवटियारे बीर अब मोहे क्यों न उतारे पार॥

× × × × ×

× × × × ×

परमानन्द प्रभु सौ मिलाय तोहि देहुँ गरे को हार॥ प स २७६

गुरु के पदाम्बुज रूप पोत भव सागर के तरने के लिए है—

'गुरु को निहारि पदांबुज भव सागर तरिबे को हेत'

---

१ पंच पर्वाविद्ययेति यद् प्रोक्तं जाति संसृतिम्।

विद्याविद्या हरे शक्ती मायया एव विनिर्मिते॥ त दी नि ११

उसने अपनी शक्ति अथवा माया का आश्रय लिया। भगवान् मे बहुरूप होनेकी शक्ति है। यह शक्ति अथवा माया भगवान् से भिन्न नही। यह शक्तियाँ १२ हैं—

श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया।
विद्ययाविद्ययाशक्त्या मायया च निषेवितम् ॥
भा १ । ३९ । ५५

जिस प्रकार कोई राजा सेवको द्वारा समस्त कार्य करता है ठीक उसी प्रकार भगवान् भी अपनी १२ शक्तियो द्वारा समस्त कार्य करते है। इनमे माया दो प्रकार की है एक विद्या दूसरी अविद्या। विद्या माया भगवत्साक्षात्कार कराती है और अविद्या जीव को बन्धन ग्रस्त करती है। विद्या माया जो भगवद्‌शक्ति रूपा है भगवान् की कार्य साधिका है इसलिए आचार्य कहते हैं—"या चमत्कारणमूला भगवच्छक्ति सा योगमाया।[1] यह योगमाया ऐश्वर्यादि षड्‌धर्मों से युक्त है। किन्तु दूसरी अविद्या अथवा व्यामोहिका माया है। यह जीव को मोह ग्रस्त करने वाली है। इस माया का वर्णन करते हुए भागवत मे कहा है कि वास्तव मे होने पर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मा मे (आँख पर उँगली लगाने से जैसे चन्द्रमा दीखने हैं वैसे) जो मिथ्या प्रतीति होती है अथवा आकाश मण्डल में नक्षत्रो की भाँति नही होती इसे मेरी *माया ही समझना चाहिए।*[2] *इस माया के कारण बुद्धि यथार्थ* ज्ञान से वंचित रहती है। बुद्धि को यथार्थ ज्ञान हो इसी हेतु से शास्त्रो मे नाना उपाय बतलाए गए है। श्रवणादि नवधा साधन और सत्सगादि इसी हेतु हैं। अन्यथा यह माया भ्रम को उत्पन्न करती है और शुद्ध-बुद्धि को आच्छादित कर देती है। इसे विपर्यय अथवा विपरीत ज्ञान कहते हैं। इसमे जो नही है उसकी सत्ता का भान होने लगता है और जो है उसका ज्ञान नही होता है। इसीलिए इसे व्यामोह कहते है। वस्तुत भगवान् बिम्ब हैं और माया बिम्बता है। बिम्बता से जो ज्ञान होता है वह भ्रम है। और बिम्ब से जो ज्ञान होता है वह यथार्थ है। योगमाया भगवान् की लीलोपयोगिनी माया है। यह सर्वात्मभाव का उद्‌बोध करती है। अत भक्तो के लिए लीलोपयोगिनी माया ही प्रभु से साक्षात्कार कराने वाली है। देह गेह स्त्री पुत्रादि *म आसक्त कराने वाली व्यामोहिका माया से रक्षण पाने के लिए भक्तो* ने सदैव भगवान् से प्रार्थना की है। वृत्रासुर कहता है—"हे भगवान् जो लोग आपकी माया से देह गेह और स्त्री पुत्रादि मे आसक्त हो रहे हैं उनके साथ मेरा किसी प्रकार का संग भी न हो।[4] क्योकि सासारिक जनो की बुद्धि माया से अपहृत होकर आसुरी भाव को प्राप्त हो जाती है।[5] परन्तु जो लोग भगवान् की शरण ग्रहण कर लेते हैं उन्हें यह माया कष्ट नही

---

१ देखो टीका—दशमस्कंध—रास-प्रकरण।
२ दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ गीता ७ । १४
३ ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥ भाग २ । ९ । ३३
४ ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यम्।
संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभि ॥
त्वन्माययात्मात्मजदारगेहे—
ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥ भा ६ । ११ । २७
५ माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिता—गीता

देती न यह उनका ज्ञान ही हरण कर पाती है। इसलिए भक्त गण सर्वत्र प्रभु से यही याचना करते हैं कि उनकी माया उन्हें किसी प्रकार के झमेले में न डाले।[१]

परमानंददासजी के माया विषयक विचार—परमानंददासजी ने अविद्या माया की चर्चा करते हुए उसका प्रभाव ब्रह्मा मार्कण्डेय और शंकर तक पर माना है। उसकी प्रबल मोहिनी शक्ति को करोड़ों उपायों से भी अधिक बलवती ठहराया है। उनका विश्वास है कि यह प्रबल व्यामोहिका माया केवल भगवत्कृपा से ही दूर हो सकती है। अत वे कहते हैं—

"जाकी कृपा करे कटाक्ष वृन्दावन के नाथ।
साधन हीन अहीरन कोलें मिलि साथ॥
नाभि सरोज बिरंचि को हुतो परम स्थान।
बच्छ हरण अपराध ते कीन्हीं हुती अपमान॥
मारकंड से को बड़ो मुनी ध्यान प्रवीन।
माया उपजि ता सबनें किये मति लीन॥
बड़ी तपस्या कौन करी शंकर की नाई।
जाते मन सम सब फिरे मोहिनी के ठाईं॥

× × ×

जो कोउ कोटिक करे बुद्धि बल जाल।
'परमानंद' प्रभु साँवरो दीनन को दयाल॥

[प स १७२]

वह प्रभु यदि कृपा करे तो माया व्याप्त नहीं होती। साधनहीन गोप बधूटियाँ भगवत् तत्व समझती हैं परन्तु नाभिसरोज से उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजीकी बुद्धि पर मायाका ऐसा भ्रमात्मक परदा पड़ा कि उन्होंने वत्सहरण जैसा अपराध किया। इसी प्रकार ज्ञानी मार्कंडेय मुनि की बुद्धि चकरा गई। शंकर जैसा कौन तपस्वी होगा परन्तु वे भी मोहिनी के पीछे-पीछे भागे फिरे। अत माया से छुटकारा प्रयत्नसाध्य नहीं कृपा साध्य ही समझना चाहिए।

यदि भगवत्कृपासे भगवद्भक्तिका रंग चढ़ जाय तो देहाभ्यास छूट जाता है और विषयों में से प्रवृत्ति हट जाती है—

'रंगे जो श्री वृन्दावन रंग।
देह अभिमान सबै मिटि जैहै और विषयनको संग।

× × ×

'परमानंदस्वामी' गुण गावत मिटि गये कोटि अनंग॥

उस माया से एकदम छुटकारा पाने की विधि यही है कि योग्य चिन्हों से चर्चित भगवान् के चरणारविंद का ध्यान करे तो मायाकृत दोष नहीं व्याप्त होते—

---

१ प्रभु की माया से अभिभूत कौशल्या भी भगवान् से यही वरदान माँगती है:—
बार-बार कौसल्या बिनय करइ कर जोरि।
अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहि माया तोरि॥ रा च मा बा २०१

रसात्मक लीला में ले लेते हैं। नित्यलीला में स्थान पाना ही साधक की अभीष्ट स्थिति या मुक्ति है। श्रीहरिरायजीने कहा है कि जीवों का भगवान् के साथ सम्बन्ध हो जाना ही भक्तिमार्गीय मुक्ति है।[1] इस मुक्ति में भगवत्कृपा ही एकमात्र कारण है। आचार्य वल्लभ कहते हैं—

"आविर्मूतः कृष्ण एव सेव्यः सायुज्यकाम्यया।"

परमानन्ददासजी के मोक्ष विषयक विचार—

परमानन्ददासजी आचार्य वल्लभ के सिद्धान्तानुसार साधक के भगवल्लीलात्मक रसास्वादन को मुक्ति मानते हैं। ऐसी मुक्ति की उपलब्धि भक्ति से ही संभव है अतः वे भक्ति को ही महत्व देते हैं चाकरी भई ही मुक्ति को नहीं। स्थान-स्थान पर उन्होंने ज्ञान द्वारा प्राप्य मुक्ति का तिरस्कार किया है और भगवल्लीला रस को देव-दुर्लभ मानते हुए उसी की साधना पर जोर दिया है। ज्ञान द्वारा मुक्ति का तिरस्कार करते हुए वे कहते हैं

"मेरो मन गह्यो माई मुरली को नाद।
आसन पौन ध्यान नहि जानौं कौन करे यह वाद विवाद॥
मुक्ति देहु सन्यासिन कौं हरि कामिन देहु काम को राज॥
करमिन देहु करम को आरभ मो मन रहे पद अम्बुज पास॥
जो कोऊ कहै जोति सब व्याप सपनेहु छिपो न तिहारो जोग॥
× × × ×
परमानन्द स्याम रसराती सबै सही मिलि इक रस भोग॥

[प० सा० २११]

प्राणायामादि अष्टाग योग से मिलने वाले मोक्ष को लेकर परमानन्ददासजी की गोपियाँ क्या करेंगी। इसी प्रकार न्याय (वाद-विवाद) शास्त्र के चक्कर में नहीं पड़ना चाहती। मोक्ष तो सन्यासियों को चाहिए, इसीभांति कर्मकाण्डियों को कर्मवाद और धर्मियों को धर्म चाहिए। यहाँ तो रसेश श्रीकृष्ण से रसात्मक गोपियाँ रस की ही याचना करती हैं। उन्हें शुष्क ज्ञान से उपलब्ध होने वाली मुक्ति की कोई आकांक्षा नहीं। ऐसी मुक्ति की कुत्सा निन्दा परमानन्ददासजी ने अनेक स्थलों पर की है अथवा गोपियों से करवाई है। स्वरूपानन्द मुक्ति और भगवल्लीलानुभव को भक्त्यैकसाध्य और कृपा साध्य बतलाते हुए वे कहते हैं—

"आनन्द सिंधु बढ्यो हरि तन मे।
श्री राधा पूरन ससि निरखत उमगि चल्यो ब्रज वृन्दावन मे।
जहँ बस्यो जमुना इत गोपिन कछु यक फैलि परयो त्रिभुवन मे॥
नहि परस्यो कर्म अरु ग्यानिनु अटकि रह्यो रसिकन के मन मे॥
भव भव भवनाहुल सुनि बस भक्ति हेत प्रगटे छिनु-छिनु मे।
अद्भुत सहज सरूप अनूपम कृपा ते जो विदित परमानन्द जन मे॥

[प० सा० ४२४]

---

१ श्रीमद्‌कृष्णसम्बन्धो भक्ति भाव विशेषणम्
सर्वथा श्रीहरिरायप्रकटितविवरणा [illegible]
[illegible]
[illegible]

कहत सुनत फिरत हैं भटकत छाँडि भगति उजियारी।
जिन जगदीस हूँ धरि पुरमुख एको छिनु बिचार्यौ ॥
बिन भगवन्त भजन परमानन्द जनम जुआ ज्यौं हार्यौ ॥ [प सं ८९]

जब भगवद्भजन से ही सब कुछ प्राप्त हो सकता है तो ज्ञान साधना अथवा कर्मकाण्ड के पचड़े में पड़कर यह जीव क्यों अपने शरीर को कष्ट देता है और सुखाता है—

हरि के भजन में सब बात।
ग्याम कर्म सौं कठिन करि करत देत हौ दुख गात ॥

अतः परमानन्ददासजी की तो भगवान् से यही प्रार्थना है कि वे चरणकमल की सेवा उन्हें दें और मुक्ति आदि सन्यासियों को अथवा कर्मठों को।

"माधौ हम उरगाने जोग।
प्रात समै उठि जाऊं चरण चित पाऊं सबै उपभोग।
दुर्लभ मुकुति तुम्हारे घर की सन्यासिन को दीजै॥
अपने चरण कमल की सेवा इतनी कृपा मोहि कीजै॥
जहाँ राखौ तहँ रहौं चरण तर पर्यौ रहौं दरबार।
जाकी जूठनि खाऊँ निस दिन ताकी करौ विचार॥
जहँ पठवौ तहाँ जाऊँ विधा ई दुखकारी अधीन।
परमानन्ददास की जीवनि तुम पानी हम मीन॥ [प सं ८७५]

भगवच्चरण कमल की सेवा मुक्ति से भी अधिक मीठी है। वे कहते हैं—

'सेवा मदन गोपाल की मुकुति हूते मीठी।
जाने रसिक उपासिका सुक मुख जिन दीठी॥
× × × × ×
परमानन्द विचारि कै परमारथ सोध्यौ।
राम कृष्ण पद प्रेम बढ़यो लीला रस बाध्यौं॥ [प सं० ८५१]

आचार्य वल्लभ के सिद्धान्तानुसार परमानन्ददासजी भी श्री गोकुल अथवा व्रज से वैकुण्ठादि धामों को हीन और निम्न समझते हैं अतः वैकुण्ठ प्राप्ति की (सालोक्य मुक्ति की) भी उनमें लेशमात्र वासना नहीं है।[1] वे कहते हैं —

कहा करौं वैकुण्ठहि जाय।
जहाँ नहिं नन्द जहाँ न जसोदा नहिं गोपी ग्वाल न गाय।
जहाँ न जल जमुना को निर्मल और नहीं कदमन की छाय॥
परमानन्द प्रभु चतुर ग्वालिनी व्रज रज तजि मेरी जाय बलाय॥ [प सं० ८११]

तात्पर्य यह है कि गोपी भाव भावित श्रीपरमानन्ददासजी को ज्ञान मार्ग से साध्य सायुज्य सालोक्य सामीप्य सारूप्य आदि मुक्तियों की कामना नहीं उन्हें तो एकमात्र व्रजानन्द साध्य लीला रस का आस्वादन ही अपेक्षित है। उसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

---

१ प्रकृति कालमायादे वैकुण्ठात्परमात्पुरात् श्री गोकुल तत् अनीति [illegible]
अणुभाष्य अ ४ पा १ सूत्र १९-पृष्ठ १

उनकी मुक्ति अहर्निश प्रभु के मुखका अवलोकन ही है। इसी भौतिक देह से निरन्तर प्रभु के मुखारविन्दके दर्शन ही मुक्ति (सामीप्य) का आनन्द है —

'हौं मन साध लिया न रहूँ।'[1]
मनसा वाचा और कर्मणा हित की तोसौं कहूँ।
चोकहु कहीं छोरि सिर ऊपर छोहीं सबै सहूँ॥
सदा समीप रहूँ गिरधर के सुन्दर बदन चहूँ॥
यह तन अर्पण हरिको कीनो यह सुख कहाँ लहूँ।
परमानन्द मदन मोहन के चरण सरोज गहूँ।

कविको भक्ति भावनासे ओतप्रोत इसी नर देह से प्रभुकी उपासना करते हुए अपने परमाराध्य का सामीप्य ही चाहिए और कुछ नहीं यह सुख इसके अतिरिक्त अन्यत्र नहीं। यही उसने अपने गुरु देव महाप्रभु वल्लभाचार्य से शिक्षा में पाया था और कुछ नहीं। अतः परमानन्ददासजी के मुक्ति अथवा मोक्ष विषयक विचार पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तानुकूल ही हैं। वे भगवल्लीलोपयोगी जीवन को ही मुक्त जीवन मानते हैं। इस मुक्त जीवनकी निरन्तर अनुभूति 'निरोध' की स्थिति में होती है। पुष्टि सम्प्रदाय में निरोध को बहुत महत्व दिया गया है। अतः यहाँ निरोध की चर्चा करना अप्रासंगिक न होगा। 'निरोध' भारतीय दर्शन में अपने अपने ढंग से अन्तिम लक्ष्य माना गया है। 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध'[2] पातञ्जल योग दर्शन का प्रमुख सूत्र है। ज्ञानियों और योगियों की निरोध स्थिति जो कठोरतम साधनों से साध्य है वह भक्ति प्रधानमार्गों और विशेषकर पुष्टिमार्ग में कितनी सुगम है किन्तु अपेक्षतया साध्य है। साथ ही अत्यन्त वांछनीय एवं अत्यानन्दित है।

क्योंकि पुष्टिमार्गीय त्रिविध सृष्टियों—प्रवाह, मर्यादा और पुष्टि में प्रवाही सृष्टि कर्मात्मक है और भव-प्रवाह में आकर वह जन्म-मरण के चक्कर में फँसी रहती है। मर्यादा सृष्टि ज्ञानात्मक है उससे अक्षरानन्द या अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। किन्तु पुष्टि सृष्टि भक्त्यात्मक है। इससे पूर्ण पुरुषोत्तम की प्राप्ति होती है। भक्ति नित्य है भगवल्लीला भी नित्य है। पुष्टि भक्तों का निरोध भगवल्लीला में होता है। अतः इस निरोध के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है:—

निरोध—निरोध का अभिधेयार्थ रोकना हटाना अथवा प्रतिबंध करना है। *मन को विषयों से हटाकर वृत्ति विशेष को अटकाने या जोड़ने का नाम निरोध है।* मन को जोड़ने अथवा विशेषरूप से अटका देने से पातञ्जल योगसूत्रकारने योग की परिभाषा देते हुए कहा था चित्त का (चंचल) वृत्ति के निरोध करने को ही योग कहते हैं। अतः निरोध शब्द से तात्पर्य है मन जहाँ-जहाँ चञ्चलता-वश जाय वहाँ-वहाँ से रोक कर उसे भगवदभिमुख करना। आचार्य वल्लभ ने अपने ग्रन्थ 'निबन्ध' में कहा है कि 'श्री कृष्ण' में मन निरुद्ध कर देने से भक्त लोक मुक्त हो जाते हैं।[3] कृष्ण में मन तभी निरुद्ध होगा जब

---

१ परमानन्दसागर पद संख्या ५०१

२ देखो—पा० यो० द० सू० पा०

३ कृष्णे निरुद्ध करणात् सकल मुक्ता भवन्ति 'निबंध'।

बाह्य प्रपंचों की सम्पूर्ण विस्मृति होगी। अतः निरोध का स्वरूप है[1] बाह्य प्रपंचों की विस्मृति और भगवान में आसक्ति। यह एक पुष्ट दशा है। और भगवत् कृपा सम्य है। आसक्ति अथवा प्रेमभाव हृदय का एक गूढ़भाव है। यही गूढ़भाव व्यक्त होने पर प्रेम प्रणय स्नेह, राग अनुराग और व्यसन इन स्थितियों में प्रवाहित होता है। यदि इसे एक लता या वृक्ष का रूपक दें तो अंकुर, तना शाखा पल्लव कलिका पुष्प और फल की तुलना में रखा जा सकता है।

आचार्य ने अपने 'भक्तिवर्धिनी' ग्रन्थ मे प्रेम की तीन विकास दशाएँ बतलाई हैं—

१—स्नेह आसक्ति और व्यसन—

व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्त श्रवणादौ यतेत् सदा।

ततः प्रेम तथाऽऽसक्तिर्व्यसनं च यदाभवेत्—भ व०।

आसक्ति बीज रूप में सभी मे विद्यमान रहती है। इसको 'बीज' इसलिए कहा गया है कि इसका नाश नहीं होता।[2]

अतः बीजभाव अथवा गूढ़भाव का मूल रूप प्रेम है। इसी बीज के पूर्ण विकास से रसात्मक श्रीकृष्ण रूपी कल्पद्रुम पल्लवित और फलित होता है। इस 'बीज भाव' की भूमि हृदय है। अतः बीज या 'गूढ़ भाव' एक मानसभाव है। इस भाव से चित्त की समस्त वृत्तियाँ केन्द्रित हो जाती हैं। भाव की निष्पन्नावस्था निरोध मे होती है। निरोध केवल दुर्दमनीय इन्द्रियो की पूर्ण तन्मयता है। क्योंकि संसार के सारे अनर्थ इन्द्रियो की चंचलता के ही कारण है। समस्त शास्त्र इन्द्रियो को वश में करने का ही उपदेश देते हैं। इन्द्रियाँ ही समस्त अनर्थ परम्पराओं की कारणभूता हैं। कहीं तो इनके दमन करने का आदेश है कहीं इनकी अशुभ प्रवृत्तियों को शुभ की ओर मोड़ देने की सलाह है। आचार्य वल्लभ ने इन्द्रिय रूपी घोड़े को ढीला न करना परम कर्तव्य कहा है।[3] इसलिए—है सर्वत्र इन्द्रियो को ही वश करने की बात।

सांसारिक यावन्मात्र भोग्य पदार्थ हैं वे प्रभु के हैं उनको भगवान को ही विनियोग कर देना चाहिए। इस हेतु यज्ञों की परम्परा चली थी। इन यज्ञो मे सांसारिक द्रव्यों एवं पदार्थों का वहिनियोग हो जाता था। परन्तु कुछ लोगों ने हठयोग द्वारा इन्द्रिय निग्रह का मार्ग खोजा था। हठयोगी इन्द्रियो को बलवान् उपायों से वश मे लाने लगे। जो भी हो दान यजन तप स्वाध्याय सभी का उद्देश्य बलवान इन्द्रिय-ग्राम को वश में करना था। यहाँ तक कि गृह त्याग कर वानप्रस्थ संन्यासादि आश्रमों की रचना भी इन्द्रियो के वश करने के उद्देश्य से ही है। यम नियमादि अष्टांग योग हठयोग राजयोग सभी का उद्देश्य चञ्चल मन एवं इन्द्रियो के वश करने के लिए ही है। परन्तु भक्ति साधन मे एक प्रकार का ऐसा उपाय है जिसमे मन एवं इन्द्रियों के साथ बलात्कार नहीं होता।

---

[1] [illegible]
[illegible]
निरोधलक्षण।

[2] बीजं तदुच्यते शास्त्रे दृढं यन्नापि नश्यति भ व०—४

[3] इन्द्रियाश्च [illegible] । सर्व नि० ल० ११

यह एक निर्विवाद सिद्ध नियम है कि जहाँ पर जितने जोर का आघात किया जाता है वहाँ उसके विपरीत उतना ही बलवान् प्रत्याघात होता है। अतः हठ या बलप्रयोग का परिणाम अच्छा नहीं होता। अतः इन्द्रियाँ हानिकारिणी नहीं हैं इन्द्रियों की विषयासक्ति हानिकर है। अतः इन्द्रियों का निग्रह बलप्रयोग का विषय नहीं 'ज्ञान' का विषय। बलप्रयोग या हठयोग में विश्वास करने वाले इन्द्रिय निग्रह के क्षेत्र में प्रायः असफल हुए हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इन्द्रियों के वश करने के लिए मानसमार्ग[1] का उपदेश दिया है। इससे उत्तरोत्तर धर्म-निष्ठा पुष्ट होगी और भक्ति का उदय होगा।

क्योंकि इन्द्रियों को सांसारिक-पदार्थों से खींचकर फिर उनको किसका आश्रय बनाया जाय? यह प्रश्न तत्काल विचारणीय हो जाता है क्योंकि इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों के बिना रह ही नहीं सकती। उदाहरणार्थ हमारे श्रवण सुनने का कार्य करते हैं उन्हें सांसारिक निन्दा-स्तुति से हटाया तो जा सकता है परन्तु श्रवणों को श्रवण कार्य से विरत नहीं किया जा सकता। अतः उन्हें प्रापंचिक निन्दा-स्तुति आदि से हटा कर प्रभु गुण-गान तथा भक्त कीर्तन आदि में लगाना ही उनका ठीक उपयोग है। इसीलिए भारतीय भक्तों एवं सन्तों ने कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों को प्रभु अभिमुख करने के लिए इन्द्रियों को आदेश दिया है और प्रभु प्रार्थना की है—

> जिह्वे ! कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरम्।
> पाणिद्वन्द्व समर्चयाच्युत कथा श्रोत्रद्वय त्वं शृणु॥
> कृष्णं लोकय लोचनद्वय हरेर्गच्छाङ्घ्रि युग्मालयम्।
> जिघ्र घ्राण ! मुकुन्दपाद तुलसीं मूर्धन्नमाधोक्षजम्॥[2]

[अर्थात्—ओ मेरी जिह्वा मुररिपु केशव का कीर्तन करो ओ चित्त श्रीधर भगवान् का भजन करो मेरे दोनों हाथो ! अच्युत की अर्चना करो दोनों कानो ! तुम भगवान् की कथा सुनो। हे मेरे दोनों नेत्रो ! कृष्ण को देखो और मेरे चरणो ! भगवान् के मन्दिर को ही जाओ। नासिके ! तू भगवच्चरणारविन्द की तुलसी का गन्ध ही सदैव लिया कर और ओ मस्तक अधोक्षज भगवान् के चरणों में ही झुक जा।]

तात्पर्य यही है कि यदि इन्द्रियाँ भगवदभिमुख नहीं होंगी तो अवश्य ही पतन की ओर ले जायेंगी। मूर्ख और विद्वान् सभी बलवान इन्द्रिय-ग्राम से अभिभूत हो जाते हैं।[3] क्योंकि यत्न करते हुए विद्वान् पुरुषों के मनों को भी इन्द्रियाँ ले जाती हैं।[4] यदि कदाचित् कोई अनशन द्वारा इनको शिथिल बनाकर इनको निर्बल कर भी दे तो भी इनकी सूक्ष्म वासना रहती है। और अपना रसास्वाद नहीं भूलती। इनका लौकिक रसास्वाद तो भगवद्रस से

---

१ गुरुसेवा परं इन्द्रियलीन स्वधर्मं भजेत्।
स्वाध्यायेन तथा [illegible] भावत्या भक्त्या। ष. सि. ग्र.— १४

२ कुर्वतोऽन्यत् [illegible] मुकुन्दमाला—श्लो. १९

३ [illegible] गी.

४ यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः। गीता २।६०

ही निवृत्त होता है।[1] अनशनादि से इन्द्रियाँ निर्बल तो हो जायेंगी परन्तु दुःख-निवृत्ति अन्यस्य पुरुषार्थ नहीं है। पुरुषार्थ है—सर्वानन्द की प्राप्ति। यह सर्वानन्द इन्द्रियों के प्रभु चरणों में सुविनियोग से ही है।

इन्द्रियों के कुमार्ग में प्रवृत्त होने से साधक को शान्ति मिलना प्रारंभ हो जाता है। अतः सांसारिक विषयों से मन और इन्द्रियों को हटाकर प्रभुकी ओर लगाने का ही आदेश महाप्रभु वल्लभाचार्य देते हैं। अपने निरोध लक्षण ग्रन्थमें कहते हैं—

सांसारिक कामों में लगी हुई दुष्ट इन्द्रियों के हित के लिए समस्त वस्तुओं को भी जगदीश्वर भगवान् कृष्णचन्द्र के साथ लगाकर देना ही सर्वोत्तम है।[2]

"जिनका चित्त निरंतर मुरारी भगवान्के गुणोंसे आविष्ट है उनको सांसारिक विरह अथवा क्लेश नहीं होते। और वे श्रीहरि के तुल्य सर्वत्र सुखमय रहते हैं।"[3]

"गोविन्द के गुणगान से सुख की जैसी प्राप्ति होती है वैसी शुकदेवजी आदिको आत्मसुखसे भी नहीं होती तो फिर दूसरों की क्या बात?"[4]

'इसलिए समस्त वस्तुओं का परित्याग करके सदानन्दपरायण निरुद्ध भक्तोंके साथ प्रभु के गुण सर्वदा गाते रहना चाहिए। उसीसे सत् चित् और आनन्दमयता प्राप्त होती है।[5]

प्रभु गुणगान कीर्तन भक्ति है। अतः कीर्तन भक्ति से प्रभु के तथा उनकी महत्ता सतत स्मरण रहती है। उससे वैराग्य से इन्द्रियों की अनायास ही निर्विषयता विषयों से पराङ्मुख हो जाती है। और लोक वेद व्यापारों से साधक की उपरति हो जाती है।[6] यही निरोध का लक्षण है।

निरोध प्राप्ति का उपाय

निरोध की उपर्युक्त व्याख्या और लक्षण देने के उपरान्त यह बतलाना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है कि उक्त प्रकार की निरोध सिद्धि किस प्रकार हो। इसका उपाय बतलाते हुए आचार्य ने स्पष्ट कहा है—

जिस इन्द्रिय का भगवत्कार्य अथवा सेवा में उपयोग नहीं होता हो उसका निग्रह करके अवश्य ही उसे भगवत्कार्य में लगाना चाहिये।

---

१ विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ गीता २ ५९

२ संसारावेशदुष्टानामिन्द्रियाणां हिताय वै।
कृष्णस्य सर्ववस्तूनि भूम्न ईशस्य योजयेत् ॥ नि. ल. श्लो. ११

३ गुणेष्वाविष्टचित्तानां सर्वदा मुरवैरिणः।
संसारविरहक्लेशौ न स्यातां हरिवत् सुखम् ॥ ,, ११

४ गुणगाने सुखावाप्तिर्गोविन्दस्य प्रजायते।
यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतोऽन्यतः ॥ ,, ६

५ तस्मात् सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणाः।
सदानन्दपरैर्गेयाः सच्चिदानन्दता ततः ॥ १८॥ वही

६ निरोधस्तु लोक वेद व्यापार [illegible]

भगवत्कार्य से आचार्य महाप्रभुजी का तात्पर्य 'सेवा' है। इसीलिए स्वमार्ग में आचार्यजी ने सेवा पर बहुत जोर दिया है। 'निरोध' के उपरान्त ही साधक भगवत् सेवा का अधिकारी होता है।[1] सेवा से चित्त स्वयमेव ही भगवान् में रमण करने लगता है। अहोरात्र आबद्धमन भगवान् में लगा रहे—यही सेवा है।[2] सेवा से स्वरूपभावना और लीला भावना दोनों ही उत्पन्न होती हैं। और भगवान् के सिवाय भक्तको दूसरा कोई विचार ही नहीं आता। 'तन्मयता' की पुष्टि निरोध का लक्ष्य है—सेवा से ही प्राप्य होती है। यह सेवा देह तथा वित्त से निरन्तर करते रहना चाहिये। देह और वित्त द्वारा सेवा करने से आन्तरविक्षेप दूर होते हैं और कर्मेन्द्रियाँ सेवा में व्यस्त रहती हैं और कभी विषयगामी नहीं बनती। इसके उपरान्त ही मानसी सेवा सिद्ध होती है।

ऐसे भक्तका मन फिर सांसारिक पदार्थों में नहीं जाता और वह अनासक्त होकर मानसी सेवा का अधिकारी बन जाता है। यह मानसी सेवा ही 'व्यसनावस्था है'। इसकी चरम अभिव्यक्ति साधक को लोक वेदातीत बना देती है। व्रज गोपिकाओं की व्यसनावस्था की ही चर्चा अष्टछापी काव्य का प्रधान विषय है।

श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध की श्रीकृष्ण लीलाओं का रहस्य 'निरोध' ही है। इसीलिए आचार्यजी ने अपने दोनों 'सागरों' को भागवत के दशम स्कंध की अनुक्रमणिका सुनाकर उन्हें लीलासागर बना दिया था।

परमानन्ददासजी और निरोध तत्त्व—

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने चार शिष्यों में से दो शिष्यों को ही भागवत के दशमस्कन्ध की लीला क्यों सुनाई। फिर संपूर्ण भागवत में से केवल दशमस्कन्ध को सुनाने का क्या रहस्य हो सकता था यदि इस तथ्य पर गहरी दृष्टि से विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि महाप्रभु ने जिन पर विशिष्ट और आशु अनुग्रह किया उन्हें निरोध तत्त्व तक सरल सुगम मार्ग से पहुँचाकर उन्हें संपूर्ण भगवत्लीला के रहस्य का उद्घाटन कर दिया।

दशमस्कन्धीय लीलाओं को श्रवण करने से पूर्व तक ये दोनों भक्त दैन्य और वैराग्यपरक पदों की रचना करते थे। लीलापूर्व के इन पदों का पता नहीं चलता जो दो चार पद महाप्रभु के सान्निध्य में गाए गए वे दैन्य परक ही हैं। अतः कि दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाने का कारण स्पष्ट है श्रीमद्भागवत लीला प्रधान और भक्ति रस पूर्ण ग्रन्थ है। उसका प्रयोजन आनन्दस्वरूप भगवान् की दशविध लीलाओं का उद्घाटन है। लीलायें रसस्वरूपा हैं। इसी कारण ज्ञानी भक्त शुकदेवजी और सभी भक्त्याचार्य श्रीमद्भागवत के सतत् पारायण पर बल देते हैं। महर्षि वेदव्यास ने लिखा है "पिबत भागवतं रसमालयम्" अर्थात् जीव जब तक परमतत्त्व में लय न हो जाय तब तक श्रीमद्भागवत रस का पान करता रहे। अतः भक्तों का निरोध पुष्टि मार्ग में सतत भागवत पारायण से होता है।

१ [illegible] कदा [illegible] ।
तदा [illegible] कर्तव्य इति [illegible] ॥ नि. श्लो. १९
[इसी हेतु से आचार्य ने निरोधलक्षण के उपरान्त ही सेवाफल ग्रन्थ लिखा। —लेखक]
२ चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।
ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम् ॥ सि. मु. २

श्रीमद्भागवतपारायण भक्तों के लिए निरोध प्राप्ति के लिए सरलतम उपाय है आचार्य श्री कहते हैं—

अथापि धर्ममार्गेण त्यक्त्वा कृष्णं भजेत्सदा।
श्रीभागवत मार्गेण स कथंचित् तरिष्यति।
त वी स नि प्र २१

यही एकमात्र साधन है—

पठेच्च नियम कृत्वा श्री भागवतमादरात्।
× × × × × ×
साधनं परमेतद्धि श्रीभागवतमादरात्।
पठनीयं प्रयत्नेन निर्हेतुकमचञ्चल ॥
त वी स नि प्र

साधक की गृहासक्ति किसी प्रकार न छूटे तो श्रद्धापूर्वक भागवतपुराण का पाठ निरन्तर करता रहे। आचार्य ने दृढ़ता से कहा है—

अथवा सर्वदा शास्त्रं श्रीभागवतमादरात्।
पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतु विवर्जितम्॥ स नि प्र

श्रीमद्भागवत से जीविका न चलावे। वे कहते हैं—

वृत्त्यर्थं नैव युञ्जीत प्राणैः कण्ठगतैरपि।

श्रीमद्भागवतग्रंथ लौकिक हेतुओं का साधक नहीं। वह भगवत्साक्षात्कार का साधन है। और स्वयं भगवत्स्वरूप है।[1] "श्रीभागवतमेवात्र परं तस्य हि साधनम्।"

श्रीमद्भागवत का स्वरूप इस प्रकार है—द्वादशस्कंध द्वादशो वै पुरुष श्रुति के इस कथन के अनुसार वह पुरुषाकार है। श्रीनाथजी का शब्द रूप श्रीमद्भागवत है। श्रीनाथजी अपने उठे हुए बाँए हाथ से भक्तों को बुलाते रहते हैं। उसी प्रकार दशविध लीलाओं का रहस्य जानने के लिए भागवत पुराण भी भक्तों का आह्वान करता है।

दशविध लीलाओं की चर्चा श्रीमद्भागवत में इस प्रकार है—

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रय ॥ श्रीमद्भाग २-१ -१

अर्थात् इस भागवत पुराण में सर्ग विसर्ग स्थान पोषण ऊति मन्वन्तर ईशानुकथा निरोध मुक्ति, और आश्रय इन दस विषयों का वर्णन है। यदि प्रथम स्कंध का विषय अधिकारी तथा द्वितीय स्कंध का विषय साधन मान लिया जाय तो तीसरे से बारहवें स्कंध तक स्कंधो के विषय इस प्रकार रहेंगे—

प्रथम स्कंध—अधिकारी
द्वितीय स्कंध—साधन
तृतीय स्कंध—सर्ग—आकाशादि पञ्च भूतोंकी उत्पत्ति
चतुर्थ स्कंध—विसर्ग—विभिन्न चराचर सृष्टि का निर्माण

---

१ देखो भागवतार्थ प्रकरण—
"यदीयं द्वादशस्कन्धं पुराणं हरिरेव तत् ॥ भा प्र श्लो १

पंचम स्कंध—स्थान—सृष्टि मर्यादा से विष्णु का श्रेष्ठत्व
षष्ठ स्कंध—पोषण—भक्तों पर अनुग्रह
सप्तम स्कंध—ऊति—कर्मवासनाएं
अष्टम स्कंध—मन्वन्तर—धर्मानुष्ठान
नवम स्कंध—ईशानुकथा—अवतारकथा
दशम स्कंध—निरोध—मन का लय
एकादश स्कंध—मुक्ति—अनात्मभाव का त्याग और परमात्मा में स्थिति
द्वादश स्कंध—आश्रय—ब्रह्म अथवा परमात्मा

नव प्रकार की लीलाओं आश्रय ही शुद्ध पुरुषोत्तम हैं। और दशवीं लीला—आश्रय की सिद्धि के लिए ही इन 'नव विधा' लीलाओं की चर्चा श्रीमद्भागवत में है। कहा गया है—

यस्य लीला नव विधा स शुद्ध पुरुषोत्तमः।
दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्॥

तात्पर्य यह है कि दशम स्कंध का विषय 'निरोध' है इसीलिए आचार्यश्री ने कृपालु होकर अपने प्रिय शिष्यों को दशम स्कंध की अनुक्रमणिका सुनाई थी। इसी अनुक्रमणिका को सुनकर सूर और परमानन्ददासजी को 'निरोध' की सिद्धि हुई थी और हृदय में भगवल्लीला का स्फुरण हुआ था। इस लीला स्फूर्ति से पदरचना पर उनके हृदय सागर से तरंगित हुये। इसी कारण ये दोनों महानुभाव ही सम्प्रदाय में सागर नाम से विख्यात हुये।

आचार्यश्री ने दशमस्कंध की सुबोधिनी के मंगलाचरण की प्रथम कारिका में—

नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धिशायिनम्।
लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्॥

कह कर भगवान को प्रणाम किया है। अर्थात् "लीलासागर भगवान जो लक्ष्मी रूपी सहस्रावधि लीलाओं से सेवित हैं उन्हें मैं (वल्लभ) प्रणाम करता हूँ।" तात्पर्य यह है कि दशम स्कंध की जितनी लीलायें हैं वे निरोध सिद्धि के लिये हैं। इस निरोधवाले स्कंध के पाँच मुख्य प्रकरण हैं। महाप्रभुजी ने दशमस्कंध के सम्पूर्ण अध्याय इन पाँच प्रकरणों में विभाजित कर दिये हैं—

१—जन्म प्रकरण	(अध्याय १—४)	कुल ४
२—तामस प्रकरण	(अध्याय ५—३२)	कुल २८
३—राजस प्रकरण	(अध्याय ३३—६०)	कुल २८
४—सात्विक प्रकरण	(अध्याय ६१—८१)	कुल २१
५—गुण प्रकरण	(अध्याय ८२—८७)	कुल ६

इनमें दशम स्कंध के प्रथम अध्याय से ४९ अध्याय पर्यन्त पूर्वार्द्ध लीला तथा ५० से ८७ के अध्याय तक उत्तरार्द्ध लीला कही जाती है। इस प्रकार महाप्रभु वल्लभाचार्य ने दशमस्कंध में कुल ८७ अध्याय माने हैं। बालकृष्ण लीला वाले ३ अध्यायों को वे प्रक्षिप्त मानते हैं। दशमस्कंध के उपर्युक्त प्रकार के प्रकरण विभाजन को आचार्यश्री सुबोधिनी में इस प्रकार कहते हैं—

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा।
षड्भिर्विराजते योऽसौ पंचधा हृदये मम ॥

अर्थात् "जन्म प्रकरण के चार अध्यायोंकी लीलाओं से तथा तामस प्रकरणके प्रमाण प्रमेय साधन फलादि चार प्रकरणो से युक्त, राजसके प्रमाण प्रमेयादि चारों प्रकरण तथा सात्विकके प्रमेय साधन और फल सहित ऐश्वर्य वीर्य यशादि छ गुणोंके छ अध्यायों द्वारा पाँच प्रकार से वह भगवान् (ग्रन्थ रूप—श्रीमद्भागवत) मेरे हृदय मे निवास करते है।"

दशमस्कंध की जो लीलायें आचार्य वल्लभ के हृदयमे विराजती थी उन्ही को उन्होने सूर और परमानन्ददासजी के हृदयमे स्थापित कर दिया। तामस प्रकरण नि साधन भक्तो के निरोध के लिये है। इस प्रकरण मे पूतना वध से लेकर युगलगीत तक की समस्त लीलाएँ आ जाती है। परमानन्ददासजीके सपूर्णकाव्य का यही केन्द्र बिन्दु है। यही लीलाएँ उनके पदो का विषय रही है।

चौरासीवैष्णवनकी वार्तामें और उस पर हरिरायजीके भावप्रकाश नामक टिप्पण मे स्पष्ट सकेत मिलता है कि परमानन्ददासजी को आचार्यजी से बाललीलागानकी आज्ञा मिली थी और उन्होंने बाललीला परक अनेक पद रच कर आचार्य जी को सुनाये थे। नित्य की श्रीसुबोधिनी की कथा श्रवण कर लेने के उपरान्त वे उस प्रसग को अपने पदों में पुन उतार देते थे। भगवान का बालस्वरूप और बाललीला का ध्यान ही कवि का 'निरोधस्थल' था। इस निरोधस्थल को पाकर कवि ने अपनी सपूर्ण काव्य प्रतिभाको वहीं केन्द्रित कर दिया और कवि के कोकिल कठ से अनायास ही फूट पड़ा—

माई री ! कमलनैन स्यामसुन्दर झूलत है पलना।
बाललीला गावति सब गोकुल की ललना ॥[1]

इस प्रकार के भगवत पदकी सुरसरि कवि के कठ से नित्य ही प्रवाहित होने लगी। कविके मानस पटल पर नित्य किसी दिव्यलीला-धाम के दर्शन होते रहे। दिशा और काल का व्यवधान हट गया और वह किसी लीला-लोक का साक्षात्कार करने लगा। वहाँ पर उसने अपने आराध्यका कोटि-कन्दर्प-लावण्यमय बालरूप देखा और देखा उनका भगवदैश्वर्य। बस इसी अनुभूति-गोमुख से पद प्रवाह बह चला। कवि देश काल को चीरता हुआ अवतार युग का जीव बन गया और माता यशोदा को बधाई देता हुआ बोल उठा—

जसोदा ! तेरे भाग्य की कहीय न जाई।
जो मूरति ब्रह्मादिक दुर्लभ सो प्रगटे है आई ॥
शिव नारद सनकादि महामुनि मिलिबे करत उपाई।
ते नन्दलाल धूरि धूसर वपु रहत कठ लपटाई ॥
रतन जटित पौढाय पालने बदन देखि मुसुकाई।
झूलो मेरे लाल जाऊँ बलिहारी परमानन्द बलिजाई ॥ [प सा ४१]

उसने बाल रूप भगवान् को नन्दालयके मणि कुट्टिम पर घुटनो के बल रेंगते देखा।

---

1 चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृष्ठ ८०९
  प सा० ११

मनिमै आँगन नन्द के खेलत दोउ भैया।[1]
गौर स्याम जोरी बनी बल कुँवर कन्हैया॥

× × × ×

बाल बिनोद प्रमोद सों परमानन्द गावै॥ [प सा ७७]

इस प्रकार कवि जीवन भर भगवानके बाल विनोद मे संलग्न रहा इसके अतिरिक्त उसे न कोई काम था न व्यापार, न व्यसन।

बाल रूप से मन का निरोध एक मनोवैज्ञानिक तथ्य —यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि एक साधारण से बालक की चेष्टाओं में भी बड़ा आकर्षण होता है—उसकी क्षण क्षण की चेष्टाएँ बड़े-बड़े चिन्तकों और वीतरागों को बरबस आकर्षित कर लेती हैं। फिर अलौकिक लीला अनुसारी भगवान के बाल रूप के आकर्षण की तो बात ही क्या हो सकती होगी। भगवान के जिस बाल रूप पर ब्रह्मा इन्द्रादि देवगण भी व्यामोह में फँस जाते हैं। और जिनकी "लरिकाई" से ज्ञानी भक्त काग-भुशुण्डि जी भी अपना मानसिक विश्राम खो बैठे हैं।[1] उस बालरूप पर अष्टछाप के इन दो सागरों को—विशेषकर परमानन्ददासजी को निरोध सिद्धि होगई तो आश्चर्य ही क्या? इसका कारण शायद यह हो कि अतिशय चंचल मन का निरोध चंचलतम वस्तु से ही करना सरल होगा। 'कंटक कंटकेनैव' के अनुसार चंचल मन की औषध बालक की चंचल चेष्टाएँ ही हो सकती हैं। मन-तन सर्वत्र भागने वाला मन यदि कहीं स्थिर होता है तो वह बालक की चंचल चेष्टाओं पर ही। जितना अधिक छोटा शिशु होगा चंचलता उतनी ही अधिक होगी। चंचलता की तीव्रतम गति को देखने और शिशु की स्वच्छन्द क्रीड़ा के प्रत्येक स्पन्दन के माधुर्य का आस्वादन लेने के लिये मन को कितना सावधान और एकाग्र अथवा निरुद्ध रखना होता होगा यह शिशु क्रीड़ा देखने वालों से छिपा नहीं है। शिशुक्रीड़ा मे चिर मग्न रहने वाली वात्सल्यमयी जननी अपने बालककी हरकतों के प्रति कितनी जागरूक और सावधान रहती है—यह किसी अनुभवी से छिपा नहीं है। फिर यदि वह एक मात्र दुलारा जीवन और आशा-आकांक्षाओं का आधार हो तो उसकी चेष्टायें उसे कितनी प्रिय होंगी। जीवनाकाश के ऐसे ज्योतिर्मय स्नेहनिधि अर्भकको पाकर किस अभिभावक का मन इधर-उधर भटकेगा। उसको तो अपने प्रिय वत्स का क्षणिक वियोग भी असह्य हो उठेगा और वह तड़प कर पुकार उठेगा।

हरि तेरी लीलाकी सुधि आवै।[2]
कमलनैन मोहन मूरतिकी मन-मन चित्र बनावै।
कबहुँक निविड़ तिमिर आलिंगन कबहुँक पिककुल गावै।
कबहुँक संभ्रम 'क्वासि क्वासि' कहि संग हिलिमिलि उठि धावै॥
कबहुँक नैन मूँदि अन्तरगति मनिमाला पहिरावै।
'परमानन्द' प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे विरह गँवावे [प सा ११८]

---

१ मोरे लरिकाई मोहित भ्रम कवन रूप गुनि राम
कोटि भाँति मनुभाव मन न लहै विश्राम [रा च मा उ का दोहा—१११

२ इस पद को सुन कर श्रीमत्प्रभु वल्लभाचार्य तीन दिन तक देहानुसंधान भूले रहे थे [८४ वार्ता]

कभी पालनेमें झूलते हुए किलकारी मारते हुए ऐसे दिव्य बालकको जब माँ देखती तो उसकी तृप्ति नहीं होती। अतः उसे कल नहीं पड़ती।

रतन जटित कंचन मनिमय
नंद भवन मधि पालनो।
ता ऊपर गजमोतिन लट लटकत अति
तहँ झूलत जसोदा को लालनो॥
किलकि किलकि विहसत मन ही मन
चितवत नैन विशालनो।
परमानन्द प्रभु की छवि निरखत
कल न परत ब्रज बालनो॥ [प. सा. ४१]

मन की इसी स्थिति को लक्ष्य कर महाप्रभुजी ने कहा है—

यच्च दुःखं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले
गोपिकानां तु यद्दुःखं स्यान्मम क्वचित्॥
गोकुले गोपिकानां तु सर्वेषां व्रजवासिनाम्।
यत् सुखं समभूत् तन्मे भगवान् किं विधास्यति॥

अर्थात् भगवान् कृष्ण के मथुरा चले जाने पर जो विप्रयोग-जन्य दुःख माता यशोदा और नन्दादि गोकुलवासियों को हुआ और जो विरहजन्य दुःख व्रज गोपिकाओं को हुआ क्या वह दुःख कभी मुझे मिलेगा? क्या वह (स्वरूपानन्द का) सुखानुभव मुझे होगा?

महाप्रभु निरोध लक्षण में विप्रयोग दुःख और स्वरूपासक्ति जन्य प्रत्यक्ष सुखानुभव दोनोंकी ही याचना करते हैं। परमानन्ददासजी के काव्य में निरोध-सिद्धि तीन प्रकार से मिलती है—

१— लीलापरक निरोध
२— स्वरूपासक्ति जन्य निरोध
३— विप्रयोगजन्य निरोध

लीलापरक निरोध का उदाहरण—व्रजगोपिकाओं में मिलता है। व्रज गोपिकाएं अहर्निश हरिलीला में मस्त रहकर, गृहकार्य करती हुई भी प्रतिक्षण भगवान श्रीकृष्णके ध्यानमें ही रत रहती थी—

हरि लीला गावत गोपीजन आनन्द में निशिदिन जाई।
बालचरित्र विविध मनोहर कमलनैन व्रजजन सुखदाई॥
दोहन मथन खंडन लेपन मज्जन गृह सुत पति सेवा।
चारियाम अवकाश नहीं पल सुमिरत कृष्ण देवदेवा॥
चलन भवन प्रतिदीप विराजत कर कंकन नूपुर बाजे।
'परमानन्द' वोव कौतूहल निरखि भाँति सुरपति लाजे॥ [प. सा. ८२]

माताएं तथा व्रजजन क्रीडा रस में रात दिन मस्त रहते हैं—

छाँड़ि अहार देहु सुख औरन चाहौं काज ।
'परमानन्द' बसत है घर में जैसे रहत बटाऊ [प सं १२१]

अत: कवि ने अपने आराध्य को सब कुछ समर्पण कर दिया है और वह उस देशमें जाना चाहता है जहाँ नंदनंदन से भेंट हो जाय और उसका विरह ताप मिट जाय ।

'जाइए वह देस जहाँ नंदनंदन भेटिए ।
निरखिए मुख कमल कांति विरह ताप मेटिए ।।
× × × × × × ×
× × × × × × ×
छिन-छिन पल कोटि कल्प बीतत अति भारी ।
'परमानन्द' प्रभुकृपा तब जीवन दुख हारी ।। [प स ८४६]

इस प्रकार क्षण-क्षण पर अपने प्रियतम आराध्यका ध्यान कर विरह गमाने वाले परमानंददासजी के मनोराज्य में विविध अमलल्लीलाओं के सजीव चलचित्रों की सृष्टि चलती रहती थी । सिवाय अपने प्रभुके भक्तका मानस अन्यत्र घूमकर भी आन्दोलित नही था । विरह—मिलन की वीचियों में कभी वह भाव-विह्वल होकर पुकार उठता था "क्वासि क्वासि" । अर्थात् 'प्यारे तू कहाँ है तू कहाँ है ? भक्त को एक क्षणका भी विरह सह्य नही होता अत: वह कभी अतीत की मधुमय स्मृतियोंमें डूब कर कहता—

वह बात कमल दल नैन की ।
बार-बार सुधि आवत सजनी वह दुरि दैनी सैन की ।।
वह लीलारस रास शरद को वह गोरंजनि आवनि ।
अब वह ऊँची टेर मनोहर मिस करि मोहि बुलावनि ।।
वे बातें सालें उर अन्तर की अब पीरहि उपजावैं ।
'परमानंद' कहत न परै कछु हियो सो कंप्यो आवै ।। [प स २६]

उत्फुल्लमल्लिकावाली उस शरद्यामिनीमें कोटि-कन्दर्प लावण्य-वपु-धारी प्रभु ने अपनी जिस भुवनमोहिनी रासलीला से चराचरको मुग्ध और स्तब्ध कर दिया था वह अब केवल स्मृति-पथ की वस्तु ही रह गई है । और वह स्मृति भक्त के अन्तस् में शल्य की भाँति कसक रही है और उसकी वाणी से परे हो गई है । भला उनके विरह में भक्त गोपिकाएँ कैसे जीवित रह सकती हैं ।

'परमानंद प्रभु सो क्यो जीवै जो पोषी मृदु बैन की ।

संक्षेप में हम देखते हैं कि परमानन्ददासजी के बाललीला स्वरूपासक्ति एवं विप्रयोग विषयक पदोंमें बड़ी सहज समाधि रूप अनुभूति है जिसमें देहानुसंधान को विस्मृत करा देने की अनुपम सामर्थ्य है । इनमें तन्मयता की पराकाष्ठा है और है मिलन की उत्कट अभिलाषा । इस अभिलाषा का पर्यवसान प्रियतम की गाढालिंगन में होता है जबकि वक्षःस्थल पर पड़े हुए हार का व्यवधान भी अत्यन्त असह्य हो जाता है—"हारो नारोपितो कण्ठेमया विश्लेषभीरुणा ।

रस पायो मदनगुपाल को ।
सुनि सुन्दरि तोहि नीको लाग्यो या मोहन मतवारको ॥
कंठ बाहु धर अधर पान दै प्रमुदित हँसत बिहारको ।
× × × × × × × × ×
गाढ़ आलिंगन दै-दै मिलिबो बीच न राखत हार को ॥
× × × × × × × × ×
परमानन्ददास को जीवनि राधा परिरम्भ सार को ॥ [प स ४ ६]

तात्पर्य यह है कि भक्त प्रवर परमानन्ददासजी की निरोध-भूमि भगवान का बाल और किशोर रूप ही है। जिसमें अनन्त लीला अनन्त सौन्दर्य और अनन्त प्रेम का समावेश है उसमें स्वरूप भावना और लीला भावना की ही प्रधानता है। दार्शनिक सिद्धान्तो मे वे अधिक नहीं फँसे ।

पञ्चम अध्याय

परमानन्ददासजी और पुष्टिमार्गीय भक्ति

महाकवि परमानन्ददासजीके जीवन वृत्त और उनकी काव्य रचना से उनके भक्त, दार्शनिक कवि और संगीतज्ञ होने मे कोई सदेह नही रह जाता। वार्ता से ज्ञात होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण मे आने के पूर्व से ही वे कीर्तन-सत्संग किया करते थे और 'स्वामी' नाम से प्रसिद्ध थे। वे सेवक (शिष्य) भी बनाया करते थे। तात्पर्य यह है कि महाप्रभुजी की शरण मे आने से पूर्व परमानन्ददासजी का जीवन एक आध्यात्मिक जिज्ञासु का था परन्तु तब तक वे किस सम्प्रदाय के अनुयायी थे—यह स्पष्ट नहीं होता। उनका गान बहुत अच्छा था और वे कीर्तन बहुत अच्छा करते थे। उनकी कीर्तन की इतनी प्रसिद्धि थी कि जब एक बार मकर-संक्रान्ति के अवसर पर जब वे प्रयागमे सगम पर सत्संग कर रहे थे तो महाप्रभु वल्लभाचार्य के जलघरिया कपूर क्षत्री ने उनकी कीर्तन-गान सम्बन्धी कीर्ति सुनी और वे अवसर पाकर उनसे सुनने पहुँचे। विचारणीय तथ्य है कि परम अनन्यता के पोषक एव समर्थक महाप्रभु वल्लभाचार्य के सेवक भी अनन्य ही होते थे। अत: कपूरक्षत्री एतन्मार्गातिरिक्त देव-कीर्तन मे सम्मिलित क्यो हुए और यदि केवल सगीत-प्रेम से अभिभूत होकर उनका वहाँ सम्मिलित होना मान भी लें तो एकादशी के रात्रि-जागरण की बात फिर विशेष अर्थ की नही रह जाती है।

एकादशी रात्रि का जागरण हरिभक्त वैष्णवो मे ही प्रचलित है। फिर रात्रि के अन्तिम प्रहर मे परमानन्ददासजीको श्रीनवनीतप्रियके दर्शन हुए। स्वप्न-विज्ञान के आचार्यों का कहना है कि मन की अन्तर्लीन भावनाएँ ही स्वप्न मे साकार हुआ करती है। अत: परमानन्ददासजीके भी नवनीतप्रियजी के दर्शन करना उनकी साकार भक्ति मे रत रहने का ही प्रमाण है। स्वप्नोपरान्त वे भगवद्दर्शन के लिए व्याकुल हुए होंगे और तभी कपूर क्षत्रिय उन्हे श्रीनवनीतप्रियजी के दर्शन तथा आचार्यजी से मिलन कराने के लिए अडैल ले आए।[1] अडैल में महाप्रभु वल्लभाचार्य के प्रथम दर्शन मे ही उनका भक्ति-भाव उमड पड़ा और वे तत्काल उनके सेवक होने का सत्सकल्प कर लेते है। श्रीमहाप्रभु के भगवल्लीला गान की आज्ञा पाकर उन्होने वही तीन चार पदोकी रचना कर डाली।[2] शरणापत्ति के पूर्व के इन पदो में परमानन्ददासजी की आध्यात्मिक भावनाका स्पष्ट सकेत मिल जाता है। उनमे भगवद्-विषयक विरह-भावना भी प्रकट होती है। इस सबसे इतना ही निष्कर्ष निकलता है कि परमानन्ददासजी महाप्रभुके शरण मे आने से पूर्व भी सगुणोपासक वैष्णव थे और भगवद् गुण-कीर्तन मे ही रत रहते थे।

---

१ देखो चौरासी वैष्णवन वार्ता सपा परीख पृ १ (परिशिष्ट)

२ वे पद है—१ कौन बेरे भई चलेरी गुपालै ॥
२ जिय की साध जियहि रही री ॥
३ ब्रज बात कमलदल नैनकी ॥
४ हरि खरत कमल दल नैन की ॥ श्री मे भा पृ ४

भक्ति की प्राचीनता—परमानन्ददासजीकी भक्ति भावना के स्वरूप का विश्लेषण करने से पूर्व यहाँ भारतीय भक्ति-साधना में कृष्ण भक्तिकी महत्ता प्राचीनता और उसके विकासकी अत्यन्त संक्षिप्त चर्चा अप्रासंगिक न होगी। श्रीकृष्ण भक्तिकी जिस मनोहारिणी दिव्य भाव-स्थली पर स्थित होकर सूरदासादि अष्टछापके कवियोंने तथा रसखान मीरां व्यास हित हरिवंश आदि अनेक महात्माओंने भाव-तन्मयता में आत्मविस्मृत होकर जिस दिव्यसाहित्यका सर्जन किया वह दुर्लभ भक्तियोग भारत की अपनी आन्तरिक प्राण चेतना है। यही समस्त वेदों, उपनिषदों दर्शन शास्त्रों पुराणों का सार सर्वस्व है और यही सम्पूर्ण उपासना विधियों का एकमात्र लक्ष्य है। समस्त अध्यात्म साधनाओंमें सुमेरुरूपा भक्ति-साधना कोरा मध्ययुगीन आन्दोलन नहीं है अथवा न यह कोई पलायन अथवा लौकिक स्वार्थसिद्धि का साधन-भूततत्व है। यह तो मानवीय चिरन्तन भाव है जो कृतज्ञता की अनुभूति से उद्भूत होकर परमप्रेम का रूप धारणकर लेती है। इसीलिए भारतीय भक्तिसूत्र में इसे परमप्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा कहा है। जिसे पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है। यह ईश्वर के प्रति जीवकी परा अनुरक्ति है।[2] इसके मूल तत्व अनादिकालसे मानव में और बाद में वैदिक साहित्य में मिलते हैं। बड़े पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार न तो इसे ईसाइमत की देन मानना चाहिए, न ही 'कृष्ण' शब्द का क्राइस्ट शब्द से भाषा वैज्ञानिक व्याकरणगत सम्बन्ध जोड़कर उससे सम्बद्ध करना चाहिए। यह तो भारतीय साधना का वह चिरन्तन सिद्धान्त है जिसकी जीवन-धारा अनादि काल से अक्षुण्ण प्रवाहित होता चली आरही है। वास्तव में वेद तो भक्ति-भावनाके विकसित भावकोष हैं।

वैदिक साहित्यमें भक्ति-सिद्धान्त के अतिरिक्त अन्य कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं है। जिस प्रकार देह में चैतन्य व्याप्त है उसी प्रकार वैदिक साहित्य में भक्ति सिद्धान्त व्याप्त है। वैदिक श्रुतियाँ भक्ति-सिद्धान्तसे ही ओत प्रोत हैं। सूर्य अग्नि इन्द्र वरुण विष्णु आदि देवताओं के प्रति कही वैदिक ऋचाओं में प्राचीन आर्योंकी भक्ति-भावनाएँ ही तो मिलती हैं। इनमें उनका चरम दैन्य विनय और समर्पण और अनन्यभाव ही समाया हुआ है। वेदों में बहुदेवोपासना नहीं। अपितु एक ही देवकी विभिन्न शक्तियाँ समय-समय पर प्रधानता में आई हैं। "एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" के अनुसार एक ही तत्व की भिन्न-भिन्न प्रकार से उपासना की गई है। निरुक्तकार महर्षि यास्कने अपने निरुक्तके सातवें अध्याय में स्पष्ट कर दिया है कि वेदों में जुदे-जुदे देवताओंकी प्रार्थना न होकर आत्मा अथवा ब्रह्म की ही प्रार्थना है। वह ब्रह्म ही अग्नि है वही वरुण है वही इन्द्र है इसीलिए इन्द्रादि देवताओंकी पूजा ब्रह्म अथवा आत्मा की ही उपासना अथवा बहुधा पूजा है। और इसीलिए वेद अद्वैत भक्ति भावना का ही प्रतिपादन करते हैं। इसी वैदिक अद्वैत-भावना का जब ह्रास होने लगता है और बहुदेववाद अथवा अन्य कोई भय-मूलक-देव-पूजावाद चल पड़ता है तो निगमात्मा पुनः एक सर्वात्मवाद अथवा अद्वैत भक्ति-मार्ग की प्रतिष्ठा करके लोक-भावना का वही परिमार्जन करती है।

---

१ सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च ॥
यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति, तृप्तो भवति ॥
(ना भ सू २ ३ ४)

२ सा परानुरक्तिरीश्वरे (शा भ सू० २)

वेदो के उपरान्त उपनिषदों मे भी वही अद्वैती भक्ति-भावना विकसित हुई है। इनमे आत्म-तत्त्व की उपासना पर ही बल दिया गया है। कठोपनिषद् मे भगवान् की अनुग्रहैकसाध्य भक्ति की ओर सकेत किया गया है। और स्पष्टत अनुश्रम चिंतन एवं वेदपाठादि का तिरस्कार सा कर दिया है।[1] तैत्तरीयोपनिषद् मे रसो वै स कहकर उस परब्रह्म को 'रस' या आनन्दरूप बतलाया गया है।

तात्पर्य यह है कि वेदो और उपनिषदो का प्रतिपाद्य विषय भगवद्भक्ति है। "यमेवैष वृणुते तेन लभ्य मे पुष्टि अथवा अनुग्रहतत्त्व का ही प्रतिपादन है। तैत्तरीय उपनिषद् के "रसो वै स से रसस्वरूप परब्रह्म ही मानव का चरमध्येय माना गया है। 'रस" "आस्वाद्य' है। कथनीय नही। इसी प्रकार श्वेताश्वतरोपनिषद् के तीसरे अध्याय के १७ वें मत्र मे आया है—

सर्वेन्द्रिय गुणाभास सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशान सर्वस्य शरण बृहत् ॥

मे भक्तिमार्गीय शरणागति की चर्चा है। और "शरण" शब्द का स्पष्ट उल्लेख है।

कैवल्योपनिषद् मे 'भक्तिध्यान योगादवै। कहा गया है। पाँचवी ऋचा मे "भक्त्या स्वगुरु प्रणम्य" मे 'भक्ति' और प्रणति का सम्बन्ध बोध किया गया है। नारायणोपनिषद् मे नक्षत्यतिमथेन नारायण सब म्य सर्वावस्थासु विभाति।" मे भक्तितत्त्व का सकेत है। गोपाल पूर्वतापिन्युपनिषद्मे अन्तमे भगवान श्रीकृष्णका ध्यान करने और उन्ही के भजन करने के लिए कहा गया है—

त रसयेद्। त यजेत्। त भजेत्। इत्यादि।

इस प्रकार उपनिषदो मे भी भक्ति तत्त्व की पर्याप्त चर्चा है। अब देखना है कि श्रीकृष्ण भक्ति की प्राचीनता कब से है। क्योकि कुछ विद्वानों ने कृष्ण भक्ति के मूल वेदो मे खोजने का प्रयास किया है। और वैदिक ऋचाओ मे कृष्णलीला परक अर्थ लगाए हैं। इस प्रकार वे कृष्ण भक्ति का मूल वैदिक साहित्य मे खोजने की चेष्टा करते हैं। इसलिए गोकुलादि स्थानो और भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओ की चर्चा वेदो मे बतलाते हैं। इस बात का सकेत अणुभाष्य मे आचार्य ने व्याससूत्र के चौथे अध्याय के द्वितीय पाद के १५ वें सूत्र[2] की व्याख्या मे किया है। वे लिखते हैं—

"ननु हृदि बहिश्चरसात्मक भगवत्प्राकट्य तद्दर्शन जनितोऽनिर्वचनीयाभाव तज्जनित स्वापस्तेन मत्स्योपस्थितिस्वप्निवर्तन तदीयत्वदृश तथा प्राकट्य तत पूर्णस्वरूपानंदलाभादिक लोके क्वचिदपि न दृष्ट श्रुत वा वैकुण्ठेऽपीति "श्रुत इत्याशकायामाह। तानि जनानि वस्तूनि परे प्रकृति कालातीते वैकुण्ठादप्युत्कृष्टे श्री गोकुल एव सन्तीति शेष। तत्र

1. नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
   यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥
   कठो अ अ वल्ल २ २३।
2. "तानि परे तथा ह्याह' ब्र सू ४ २।१५—×

और इसीसे साधक परमपद का भागी होता है।[1] ज्ञान और योग के क्षेत्र में भी श्रद्धा निर्भर होने के कारण भक्ति विरहित नहीं। तात्पर्य यह है कि आस्था श्रद्धा तथा उसका व्यवहार (साधना) ये भक्ति के ही पूर्व रूप हैं। इस प्रकार किसी भी प्रकार की भारतीय-साधनामें कहीं भी ऐसा स्थान नहीं जो भक्ति-तत्त्व से रिक्त हो। ज्ञान-मार्ग और योग-मार्ग निर्गुण की आराधना बतलाते हैं। भक्ति-मार्ग सगुण की। निर्गुण-मार्ग साधक के लिए कठिन और क्लेशकारक होता है सगुण मार्ग सुगम और सरल।[2] अत निर्गुण की क्लिष्ट साधना ने ही सगुण भक्तिको परिपुष्ट और पल्लवित किया है।

श्रीमद्भागवत पुराण मे भक्ति तत्त्व—वैदिक काल से चली आने वाली भक्ति की अजस्र धारा पुराण युग तक आते-आते अत्यन्त पीनोन्नत हो गई और भागवत के काल में तो उसका महत्त्व चरम सीमा पर पहुँच गया। श्रीमद्भागवत पुराण प्रमुख भक्ति-पुराण है और सात्वत श्रुति[3] है। भागवत धर्म का अथवा भक्ति-भाव का प्रतिपादक इससे बढ़कर कोई अन्य ग्रन्थ नहीं है। यही कारण था कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने सिद्धान्त के लिए प्रमाण-चतुष्टय के अन्तर्गत श्रीमद्भागवत को स्वीकार किया है।[4] और उसे व्यास देव की 'समाधि भाषा' कह कर अत्यन्त सम्मान और महत्त्व दिया है। आचार्य के अनेक ग्रन्थ श्रीमद्भागवत पर ही आधारित हैं। पुरुषोत्तम सहस्रनाम तो भागवत का संक्षिप्त संस्करण है इसके अतिरिक्त दशमस्कन्ध अनुक्रमणिका त्रिविधलीलानामावली दशमस्कन्ध के ही संक्षिप्त रूप हैं। तत्त्वदीपनिबन्ध का श्रीभागवतार्थ प्रकरण श्रीमद्भागवत की स्वरूप-साधना को और उसके बहिरंग परिचय को स्पष्ट करता है। श्री सुबोधिनी भागवत के अन्तरंग रहस्य का बोध कराती है। श्रीमद्भागवत के प्रति आचार्य की कितनी निष्ठा थी इसका परिचय सर्वनिर्णय प्रकरण के अनेक श्लोकों से मिल जाता है। भागवत के उपक्रम-उपसंहार, अभ्यास अपूर्वता फल अर्थवाद-उपपत्ति सभी का तात्पर्य भक्ति है। सात्वत पति श्रीकृष्ण वासुदेव के प्रति एकतान भक्ति ही उसका लक्ष्य है।[5] यही उसका प्रतिपाद्य है।[6] श्रीमद्भागवत के एकान्त अनन्य गौरव के मूल मे उसका भक्ति-प्रतिपादन ही

---

१ भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते।
स्वभाव गुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते॥ भाग ३-२९-७

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥ श्री भ. १२ श्लो ५

३ तथा समभूत्वात यथैषा सात्वती श्रुति। भ. प. १ ४-७

४ वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्॥ त. दी. नि.

५ स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति॥
वासुदेवे भगवति भक्तियोग प्रयोजित —वही
जनयत्याशु वैराग्यं च ज्ञानं यदहैतुकम्॥ श्रीमद्भागवत १ २६-७

६ तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा॥ वही १ २-२ ।

है। इस ग्रन्थ के माहात्म्य में ही भक्ति की उत्पत्ति और विकास की कथा एक रूपक के आश्रय से बड़े ही मनोहर ढंग से व्यक्त की गई है।

व्रजप्रदेश में ज्ञान और वैराग्य नाम के अपने दोनों मुमूर्षु पुत्रों के पास बैठी हुई भक्ति युवती नारद जी से कहती है कि "मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न हुई कर्णाटक में बड़ी कहीं-कहीं महाराष्ट्र में सम्मानित हुई हूँ किन्तु गुजरात में मुझे वार्धक्य ने आ घेरा था। वहाँ घोर कलियुग के प्रभाव से पाखण्डियों ने मुझे अंग-भंग कर दिया। चिरकाल तक यही अवस्था रहने के कारण मैं अपने पुत्रों के साथ घोर निस्तेज हो गयी थी। अब जब से मैं वृन्दावन आई हूँ तब से पुनः परम सुन्दरी स्वरूपवती नवयुवती हो गयी हूँ।[1]"

प्रस्तुत रूपक में भक्ति के विकास का बड़ा सुन्दर संकेत मिलता है। एक प्रकार से यह भारतीय भक्ति-भावना के विकास की कहानी है जिसमें न केवल भौगोलिक सीमाओं का संकेत है अपितु काल-क्रम का भी संकेत मिलता है। मानव-मन से उदित भक्ति-भावना वैदिक-साहित्य में उल्लसित हुई और भगवान् बुद्ध (ईस्वी सन् पूर्व छठी शताब्दी) से पूर्व वासुदेव भगवान् ने इस भक्ति-योग का महान् उपदेश किया था। परिणाम स्वरूप वासुदेव धर्मानुमत भक्तिमार्ग का प्रचार हुआ। पाणिनि तथा प्राचीन शिलालेखों में वासुदेव की पूजा के प्रमुख प्रमाण मिल जाते हैं। फिर संहिताओं में पुराणों में तथा ईस्वी सन् की दूसरी तीसरी शताब्दी से लेकर दसवीं शताब्दी तक के संस्कृत-साहित्य में तथा इस काल की वास्तुकला शिलालेखों तथा मंदिरों-मूर्तियों आदि में मध्यकालीन पौराणिक वैष्णव-धर्म के दर्शन होते हैं। यह सारा काल भक्ति-पादप के उद्भव और विकास का मनोहर इतिहास प्रस्तुत करता है। ११ वीं शताब्दी से इसमें बड़ी-बड़ी शाखाएँ फूटनी आरम्भ हुईं। भागवत माहात्म्य का आद्य वाक्य— उत्पन्नाद्रविडे साहं ईस्वी सन् की ४थी छठी से ८ वीं शती के भक्ति-आन्दोलन का संकेत देता है। यह काल आलवारों के उदय और अस्त का समय है। चौथी शताब्दी में उत्तर भारत में गुप्त वंश के आश्रय में ब्राह्मण धर्म को प्रोत्साहन तो मिला परन्तु बौद्ध और जैन धर्म जोर पकड़े हुए थे। अतः यहाँ वैष्णव धर्म कुछ अधिक उन्नत अवस्था में नहीं था। दक्षिण में बौद्ध और जैन धर्म निराश्रित थे। वहाँ केवल प्रदेश में ब्राह्मण-धर्म को अच्छा आश्रय मिला हुआ था। इस प्रकार उत्तर भारत में जबकि ७ वीं ८ वीं शताब्दी तक बौद्ध और जैन धर्म जोर पर थे दक्षिण में पल्लव और चोल वंशीय नरेश पौराणिक वैष्णव धर्म की उन्नति में पूरा-पूरा योग दे रहे थे। और अनेक भव्य मंदिरों के निर्माण में व्यस्त थे। तात्पर्य इतना ही कि भक्ति आन्दोलन दक्षिण से प्रारम्भ हुआ। और वहाँ शैव और वैष्णव धर्म के आचार्यों ने मिलकर बौद्ध और जैन

---

१ उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता॥
तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डिताङ्गका।
दुर्बलाहं चिरं याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम्॥
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी।
जाताहं युवती सम्यक् श्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम्॥

पद्मपुराणान्तर्गत—भाग. माहात्म्य अ. १ श्लो. ४८, ४९, ५०।

है। इस ग्रन्थ के माहात्म्य में ही भक्ति की उत्पत्ति और विकास की कथा एक रूपक के माध्यम से बड़े ही मनोहर ढंग से व्यक्त की गई है।

व्रजप्रदेश में ज्ञान और वैराग्य नाम के अपने दोनों मुमूर्षु पुत्रों के पास बैठी हुई भक्ति युवती नारद जी से कहती है कि "मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न हुई कर्णाटक में बढ़ी कहीं-कहीं महाराष्ट्र में सम्मानित हुई हूँ। किन्तु गुजरात में मुझे वार्द्धक्य ने आ घेरा था। वहाँ घोर कलियुग के प्रभाव से पाखण्डियों ने मुझे अंग-भंग कर दिया। चिरकाल तक यही अवस्था रहने के कारण मैं अपने पुत्रों के साथ घोर निस्तेज हो गयी थी। अब जब से मैं वृन्दावन आई हूँ तब से पुनः परम सुन्दरी स्वरूपवती नवयुवती हो गयी हूँ।"[1]

प्रस्तुत रूपक में भक्ति के विकास का बड़ा सुन्दर संकेत मिलता है। एक प्रकार से यह भारतीय भक्ति-भावना के विकास की कहानी है जिसमें न केवल भौगोलिक सीमाओं का संकेत है अपितु काल-क्रम का भी संकेत मिलता है। मानव-मन से उदित भक्ति-भावना वैदिक-साहित्य में पल्लवित हुई और भगवान् बुद्ध (ईस्वी सन् पूर्व छठी शताब्दी) से पूर्व वासुदेव भगवान् ने इस भक्ति-योग का महान् उपदेश किया था। परिणाम स्वरूप वासुदेव मर्यादायुक्त भक्तिमार्ग का प्रचार हुआ। पाणिनि तथा प्राचीन शिलालेखों में वासुदेव की पूजा के प्रभूत प्रमाण मिल जाते हैं। फिर संहिताओं में पुराणों में तथा ईस्वी सन् की दूसरी तीसरी शताब्दी से लेकर दसवीं शताब्दी तक के संस्कृत-साहित्य में तथा इस काल की वास्तुकला शिलालेखों तथा मन्दिरों-मूर्तियों आदि में मध्यकालीन पौराणिक वैष्णव-धर्म के दर्शन होते हैं। यह सारा काल भक्ति-पादप के उद्भव और विकास का मनोहर इतिहास प्रस्तुत करता है। ११ वीं शताब्दी से इसमें बड़ी-बड़ी शाखाएँ फूटनी प्रारम्भ हुईं। भागवत माहात्म्य का प्राप्त वाक्य—उत्पन्नाहं द्रविडे साहं ईस्वी सन् की ५वीं शती से ९ वीं शती के भक्ति-आन्दोलन का संकेत देता है। यह काल आलवारों के उदय और अस्त का समय है। चौथी शताब्दी में उत्तर भारत में गुप्त वंश के आश्रय में ब्राह्मण धर्म को प्रोत्साहन तो मिला परन्तु बौद्ध और जैन धर्म जोर पकड़े हुए थे। अतः यहाँ वैष्णव धर्म कुछ अधिक उन्नत अवस्था में नहीं था। दक्षिण में बौद्ध और जैन धर्म निराश्रित थे। वहाँ केरल प्रदेश में ब्राह्मण-धर्म को अच्छा प्रश्रय मिला हुआ था। इस प्रकार उत्तर भारत में जबकि ७ वीं ८ वीं शताब्दी तक बौद्ध और जैन धर्म जोर पर थे दक्षिण में पल्लव और चोल वंशीय नरेश पौराणिक वैष्णव धर्म की उन्नति में पूरा-पूरा योग दे रहे थे। और अनेक भव्य मन्दिरों के निर्माण में व्यस्त थे। तात्पर्य इतना ही कि भक्ति आन्दोलन दक्षिण से प्रारम्भ हुआ। और वहाँ शैव और वैष्णव धर्म के आचार्यों ने मिलकर बौद्ध और जैन

---

१ उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता॥
तत्र घोर कलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डिताङ्गका।
दुर्बलाहं चिरं याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम्॥
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी।
जाताहं युवती सम्यक् प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम्॥
पद्मपुराणान्तर्गत—भाग माहात्म्य अ १ श्लो ४८ ४८-५० ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है सम्प्रदायों का युग १ -११ ई० से प्रारम्भ होता है। स्मरण रखना चाहिए कि इन आचार्यों को आलवारों की गहरी भक्ति-भावना विरासत में मिली थी। आलवारों का सर्वाधिक प्रभाव रामानुज पर पड़ा। आलवारों की वाणी का संग्रह-जिसे 'दिव्यप्रबन्धम्' कहा जाता है-परवर्ती आचार्यों की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिकी संपत्ति थी।

सम्प्रदायाचार्यों में सर्वप्रथम रामानुज हुए। इनका समय १ १७ ई० से ११ ७ तक का है। आलवारों के 'दिव्य प्रबन्धम्' का सम्पादन सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप में इन्होंने करवाया। इनके उपरान्त निम्बार्काचार्य हुए। इनका समय ११६४ तक है। इन्होंने भी रामानुज की भाँति ब्रह्मसूत्र पर टीका की। इनके उपरान्त मध्वाचार्य हुए। रामानुज एवं निम्बार्क ने अद्वैत को आंशिक प्रश्रय दिया है। किन्तु मध्व ने अद्वैत का बिल्कुल ही तिरस्कार किया है। इनका युग ११९९ ई० से १२७८ तक का है।

तात्पर्य यह कि महाप्रभु वल्लभाचार्य के आविर्भाव के पूर्व अपनी-अपनी पद्धति के अनुरूप भक्तिमार्ग का प्रतिपादन करने वाले ४-५ सम्प्रदाय हुए। इन सब सम्प्रदायों की भक्ति पद्धति के तारतम्य को दृष्टि में रख कर महाप्रभु ने अपने भक्तिमार्ग को सर्वाधिक मधुर बनाने का यत्न किया था।

उपर्युक्त विभिन्न सिद्धान्तों के आचार्य-गण महाप्रभु वल्लभाचार्य के पूर्ववर्ती थे। निम्नांकित कतिपय सम्प्रदाय आचार्य वल्लभ के समसामयिक कहे जा सकते हैं

चैतन्य सम्प्रदाय टट्टी सम्प्रदाय सखी सम्प्रदाय राधावल्लभीय सम्प्रदाय आदि। इन सम्प्रदायों के अतिरिक्त बंगाल तथा महाराष्ट्र में और भी छोटे-मोटे सम्प्रदाय थे। इन सम्प्रदायों के द्वारा प्रतिपादित भक्ति का स्वरूप उत्तरोत्तर प्रभावी होता गया और भक्ति के रागात्मक पक्ष को विशेष बल मिलता चला गया। और प्रपत्ति अर्थात् शरणागति उसका अंग होता गया। आचार्य वल्लभ की प्रशस्ति में एक विद्वान् का कथन है—

निम्बार्के बिम्बमार्के गतवति शमिते शेष मायावलेपे।
मध्वेऽध्वान च विष्णोः भूतवति मिमिते धवर धवरार्थे ॥
वेदान्तद्रुम्माणि प्रमाणकर कलियुगवासवस्वरूपेण रक्षन्।
श्री श्रीमद्वल्लभार्यो जगदखिल मुखस्थानमारोहतिस्म ॥

तात्पर्य यह कि महाप्रभु वल्लभाचार्य के आचार्यत्व पर अभिषिक्त होने के समय तक अनेक सम्प्रदाय एवं मत लगभग समाप्त हो चले थे। आचार्य ने तीन बार पृथ्वी पर्यटन किया और भक्ति सुरसरि का भगीरथ-श्रम करके एक बारगी समूचे देश को श्रीकृष्ण भक्ति में आप्लावित कर दिया।

महाप्रभु वल्लभ के भक्ति विषयक विचार

आचार्य वल्लभने भक्ति की परिभाषा देते हुए कहा है कि "भगवान् के माहात्म्य ज्ञान पूर्वक जो सुदृढ़ सर्वाधिक स्नेह है वही भक्ति है।"[1] अर्थात् आचार्य के मत मे भगवन्माहात्म्य का ज्ञान और उनमे सुदृढ़ स्नेह यही दो वस्तुएँ भक्ति के लिये मुख्यतः अपेक्षित है। आचार्यजी की परिभाषा शाण्डिल्य एवं नारदीय भक्ति सूत्रों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक है। भगवान् मे परम अनुराग होना चाहिए परन्तु यह परम अनुराग हो कैसे ? जब तक जीवको प्रभुके माहात्म्य का ज्ञान नही होता तबतक दृढ़ अनुराग होना कठिन है। विचार करने की बात है कि आचार्य 'महात्म्य ज्ञान' की बात कहते हैं स्वरूप ज्ञान की नही माहात्म्यज्ञान भक्त को अनेक प्रकार से हो सकता है। फिर इस भक्ति मे देश और काल की मर्यादा नही। न वैदिक विधि निषेधो की चर्चा है। साथ ही स्त्री शूद्रादि सभी के लिए इस भक्तिका द्वार उन्मुक्त है यह ऊपर कहा जा चुका है 'भक्ति' शब्द मे भज् धातु का अर्थ सेवा है। और सेवा का अर्थ देते हुए आचार्यजी ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तमुक्तावली मे स्पष्ट कहा है कि 'चित्त की प्रवणता ही सेवा' है। अतः मानसी-सेवा ही सर्वोत्तम और फलरूपा है।[2] मानसी-सेवा को सर्वोत्तम कहने का कारण भी यही है कि मन ही तो ससार का मूल है। ससार के नश्वर पदार्थों मे भटका हुआ यह मन प्रभु की ओर नही जाता। यदि यह भगवान की ओर जाय तो उन्ही को अपना प्रियतम मान कर उनमे आसक्त हो जाय। अतः मनका ही निरोध सर्व प्रथम अपेक्षित और आवश्यक है। निरोध' की स्थिति भगवदनुग्रह से ही सभव है। इसी भगवदनुग्रह को लक्ष्य करके आचार्य ने कहा था 'पुष्टिमार्ग मे एक मात्र अनुग्रह ही नियामक है।'[3] यह अनुग्रह ही पुष्टि भक्ति का मूल है।

इस पुष्टि भक्ति का निरूपण महाप्रभु वल्लभाचार्य ने लगभग अपने सभी ग्रन्थों मे किया है। और भक्ति के इसी आदर्श को सभी अष्टछापी भक्तो ने अपनाया है। परमानन्ददासजीके साहित्य मे भक्ति तत्त्वको देखने से पूर्व उनके दीक्षा गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य की भक्ति का स्वरूप समझ लेना समीचीन होगा।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की भक्ति का स्वरूप

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने निखिल जगत् के जीवों को त्रिधा विभक्त किया है

१—पुष्टिमार्गीय जीव

२—मर्यादामार्गीय जीव

३—प्रवाहमार्गीय जीव

आचार्य के इस त्रिधा विभाजन का आधार श्रीमद्भगवद्गीता का यह श्लोक है—

"द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।

---

१ माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़ः सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा ॥ त. दी. नि.—शा. प्र. श्लो.—४६

२ [illegible]
[illegible] सि. मु. श्लोक

३ अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः।

अर्थात् इस लोक में दो प्रकार की सृष्टि है एक दैवी सृष्टि और दूसरी आसुर सृष्टि।" इस प्रमाण से वर्णाश्रमादि वैदिक धर्मकी मर्यादा में आबद्ध जीव समुदाय मर्यादा मार्गीय और जगत् प्रवाह में बहने वाला जीवसमाज प्रवाहमार्गीय है।

परन्तु जो मेरा भक्त है वह मेरा प्यारा है।"[1] इस भगवद्वाक्य के अनुसार भगवान के भक्त हैं वे उक्त दोनों प्रकार के जीवों से प्रथम और श्रेष्ठ हैं। ये ही "पुष्टिमार्गीय जीव हैं। इनका सर्वत्र उत्कर्ष रहता है।[2] ये पुष्टिमार्गीय जीव भगवान् की देहसे उत्पन्न उनका ही अहैतुक अनुग्रह प्राप्त किए होते हैं। इस अनुग्रह के लिए वेद का ज्ञाता होना तपस्वी दानी अथवा याज्ञिक होना आवश्यक नहीं।[3] इसके लिए तो केवल भगवदनुग्रह ही अपेक्षित है। ऐसा अनुगृहीत जीव लोक और वेद में निष्ठा नहीं रखता।[4] इस प्रकार पुष्टिमार्गीय जीवप्रवाह और मर्यादा दोनों से परे है।[5]

ये पुष्टिमार्गीय जीव देह चिह्न क्रियादि में मुखों में अन्य प्रवाही तथा मर्यादा मार्गीय जीवों जैसे ही होते हैं। अर्थात् तीनों प्रकार के जीवों के देहादि बाह्य स्वरूप एकसे ही होते हैं।

पुष्टिमार्गीय जीव दो प्रकार के होते हैं—

१ शुद्ध पुष्टि जीव।
२ मिश्र पुष्टि जीव।

मिश्र पुष्टि जीव तीन प्रकार के होते हैं—

१ प्रवाही मिश्र पुष्टि।
२ मर्यादा मिश्र पुष्टि।
३ पुष्टि मिश्र पुष्टि।

भेदों का कारण—शुद्ध मिश्रादि भेद में भगवद् इच्छा ही प्रधान एवं बलवान् है। इन भेदों का रहस्य विविध रस एवं भावों के प्रकट करने में ही है। अतः भगवान् जीवों की विविध विविधताओं को निजेच्छा से अङ्गीकार करते हैं। संक्षेप में "लोकवत्तु लीला कैवल्यम्" का तत्वसूत्र का यही रसिक अभिव्यक्ति है।

शुद्ध और मिश्र पुष्ट भक्तों का साधन दशा में ही साध्यात्मधर्मों के साथ सम्बन्ध होता है। उन्हें प्रवाहिक विषय अथवा मार्यादिक कर्म उपासना ज्ञान विहित भक्ति आदि कुछ नहीं सुहाता। वस्तुतः शुद्ध मिश्र भेद भगवद्रस निष्पत्ति के ही लिए है अतः शुद्ध पुष्टि भक्त एवं मिश्र पुष्टि भक्त दोनों का ही रस निष्पत्ति के हेतु समान महत्व है।

---

१ यो मद्भक्तः स मे प्रियः—श्रीमद्भगवद् गीता

२ सर्वत्रोत्कर्ष कथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः। प्र पु म ४

३ नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन चेज्यया।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥ गी अ ११ श्लोक ५३

४ यदा यस्यानुगृह्णाति भगवानात्मभावितः।
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्॥ श्रीमद्भागवत

५ "प्रवाहभेदात् भिन्नो हि पुष्टिमार्गो निरूपितः"—प्र पु म—श्लोक

६ स्वरूपेणावतारेण लिङ्गेन च गुणेन च।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा॥ प्र पु म ११

प वा १८

१ प्रवाह मिश्रित पुष्टि भक्त —यह भक्त क्रियात्मक होता है। व्रज भूमि आदि स्थलों में तीर्थ पर्यटन आदि अनेक क्रियाएँ कराते हुए भगवद्रस प्रकट कराना ही इस भक्त के प्रति भगवदिच्छा हुआ करती है।

२ मर्यादा मिश्रित पुष्टि भक्त—यह भक्त गुणज्ञ होता है। भगवद्धर्म में उसकी रुचि होती है। यह भगवान् के गुणगान करता हुआ कालयापन करता है। भगवान् की इस मर्यादा पुष्टि भक्त के प्रति यही इच्छा होती है।

"तव कथामृतं तप्तजीवनम्।
कविभिरीडितं कल्मषापहम्॥" गोपीगीत

इस प्रकार मर्यादा पुष्टि जीव अपने भव-ताप-तप्त जीवन को श्रवण मनन भगवत् कथामृत से शांत करता हुआ अपने कल्मषों को धोता रहता है। इस प्रकार वह भागवत धर्म का पालन करता है। ऐसे भक्त की कभी अत्याग दशा और कभी मानस त्याग दशा होती है। तदनन्तर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् स्वगुण श्रवण करके ऐसे परम भावुक भगवदीयों को स्वरूपानन्द में प्लावित कर देते हैं।

"तदनन्तर स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णं प्लावयते जनान्।"

आदि वचनामृतों का यही आशय है। कितने ही इस प्रकार के मर्यादा पुष्टि जीवों का भगवदिच्छा से ही साक्षात् पुरुषोत्तम में सायुज्यमय होता है। और पुनः रमण के अवसर पर भगवान प्रकट होकर इन्हें परिपूर्णता का दान करते हैं। यह भक्त स्वकीय देह प्राण इन्द्रिय अन्तःकरण और उनके धर्म एवं दार आगार पुत्र आप्त वित्त सर्वात्मभाव से समर्पित करके प्रभु विनियोग के हेतु इन सबको अङ्गीकार करता हुआ निरंतर भगवत्सेवा करता है। और भगवान के चरण कमलों का मकरंद पान करता हुआ कृतार्थ होता है। प्रियतम प्रभु के गुणगान में रत यह भगवदीय निरुपधि कृपामय सुधा का आस्वाद करता है।

पुष्टि विमिश्रित पुष्टि भक्त—यह भक्त सर्वज्ञ होता है। और भगवान् के रसात्मक स्वरूप के समस्त अभिप्रायों का ज्ञाता होता है। स्वयं पुष्टिमार्ग का तत्त्व ही अत्यन्त सूक्ष्म है और दुर्गम है। फिर यह भक्त तो पुष्टि मर्यादा का अतिक्रमण करके पुष्टि मिश्रित पुष्टि मार्ग में प्रवेश करता है अतः जो इसकी स्थिति पर पहुँचता है वही इसकी स्थिति का अनुभव कर सकता है, परन्तु इस स्थिति में पहुँचना अत्यन्त कठिन है। यह भगवान् के अतिशय अनुग्रह के बिना किसी प्रकार सम्भव नहीं। इस मार्ग का उपदेश भी नहीं किया जा सकता। इस स्थिति के भक्त की दो ही दशाएँ होती हैं या तो परम विरह दशा या संयोग दशा। विरह दशा अत्यन्त दुःख होती है। इस दुःख दशा में सर्वभाव का उपमर्दन होता है। अतः ऐसी स्थिति में उपदेश सम्भव नहीं। और संयोग दशा में प्रियतम भगवान निकट रहते हैं अतः तो भी उपदेश सम्भव नहीं। और इस कोटि के विरल रसिक भगवदीयजन यद्यपि जैसे-तैसे अपने काल को यापन करने के लिए दो अक्षर बोल भी दें तो परदृष्ट अधिकारी को निस्सीम लाभ ही जाता है।

---

१ कितो भर परम अर्थ वस्तु। और
कितो दुर्गति भयामो॥

पुष्टि मिश्रित पुष्ट भक्त को भगवान् एक प्रकार से संन्यस्त बना देते हैं। त्याग तो इस भक्त का पुष्ट मन होता है। वह तो सर्वत्र भाव-भावना मे ही डूबा रहता है। विकलता और बेचैनी इसकी सहचरियाँ होती हैं। 'भाग गुणाश्च तस्य एव बलमानस्य बाधका' इस श्लोक में पुष्टि मिश्रित पुष्ट भक्त की दशा का ही वर्णन है। 'स्वस्थता' तो इस भक्त के भाग्य में है ही नहीं।

शुद्ध पुष्टि—शुद्ध पुष्टि पुष्ट भक्त मे प्रेम के अतिरिक्त दूसरा कोई तत्व होता ही नहीं है। "शुद्धा प्रेम्णातिदुर्लभा।" के अनुसार ऐसा शुद्ध पुष्टि-पुष्ट रसिक भगवदीय अत्यन्त दुर्लभ होता है। इस स्थिति मे भक्त "प्रियतम मधुमसवाताहास्यरूप सलिल" मे स्नान करता है। प्रिय के चर्वितताम्बूल का अधिकारी बनकर "करुणामृतस्मितावलोक" का भाजन बन जाता है। परमाराध्य के चरणारविन्द मे उसकी निस्सीम प्रगति और प्रकृष्ट दैन्य ही उसकी नित्य सन्ध्या बन जाती है। तापक्लेश युक्त प्रगाढ भाव ही उसका नाम-संकीर्तन है। भक्तराजवत्सूर्याग्नि मे अपने सम्पूर्ण विषय के सुख का विसर्जन ही उसका होम है। और प्रियवार्ता कथन ही ब्रह्मयज्ञ और मनोरथ सिद्धि द्वारा सर्वेन्द्रिय का आप्यायन ही उसका तर्पण है।

"रस" ही इस भक्त का जीवन रस ही धन और रस ही इसकी संपत्ति है। निरुपधि स्नेह एवं निर्भर स्थिति के बिना यह एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। तात्पर्य यह है कि 'रसोवैसः हि सहजम्' इसका स्वरूप है और अन्तर्बाह्य रसाविष्टत्व ही इसका स्वाभाविक धर्म है। गोपी गीत का यह वाक्य "त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्" से ही इसकी स्थिति का आभास मिल सकता है। रसात्मक प्रावेश के प्रत्यक्ष दर्शन के बिना एक-एक पल इसे युग जैसा लगता है। भगवान् भी ऐसे भक्त को काम भोग समर्पण करने के लिए क्रीडा करते हैं। और क्रीडा मे विजयेच्छा करते हैं। भक्त के साथ प्रेम व्यवहार करते हैं। भक्त को स्वमाहात्म्यादि का बोधन कराते हुए उसकी स्तुति करते हैं। भक्त को मोद दान देते हुए उसके भक्ति-मदका उपादान करते हैं। और भक्त को उसके 'भुरत-भाव' के दर्शन हों—इस हेतु वे स्वप्न दान भी देते हैं। भक्त की कान्ति बढ़ाते हैं और भक्त के पास ही आ विराजते हैं। "दिवो दामाडा दीपकामाडा चोतनाडा कस्य नो मन्दतीति का न देव।" इस प्रकार "देव' शब्द का सम्पूर्ण अर्थ[1] इस रसिक भगवदीय को प्रत्यक्ष हो जाता है।

परमानन्ददासजी की भक्ति का स्वरूप :—

साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से भक्ति के सामान्य निरूपण के उपरान्त हम परमानन्द दास जी के भक्ति विषयक विचारों की चर्चा प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि वार्ता मे आया है—परमानन्ददासजी ने महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण ग्रहण करने के उपरान्त श्रीमद्भागवत की दशम स्कंध की भगवल्लीलाओं के आधार पर पदों की रचना की। उनके इन समस्त पदों को द्विधा विभाजित किया जा सकता है।

---

१ देव "दिवु" धातु से बना है। दिवु धातु क्रीडा विजिगीषा व्यवहार द्युति स्तुति मोद मद स्वप्न कान्ति और गति के अर्थ में आता है। "दिवु-क्रीडा विजिगीषा व्यवहार द्युति, स्तुति मोद, मद, स्वप्न कान्ति गतिषु।"—धातु पाठ।

१ भगवल्लीला विषयक पद।
२ स्वरूप-आत्मानुभूति दैन्य एवं आत्मनिवेदनपरक पद।

उनके लीला विषयक पदों में यत्र-तत्र भगवद्धर्म की चर्चा है। पुनः-पुनः पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम का अहेतुक भक्त-कृपावत्सत्व और अवतार धारण करके नरलीला करने की बात है।

परन्तु दूसरे प्रकार के आत्मनिवेदन अथवा दीनता के पदों में उनकी भक्ति का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने भागवत का पूर्ण अनुसरण किया है। "नामूलं लिख्यते किञ्चित्" के अनुसार वे भागवतीयता में पूर्ण आस्थावान् हैं। अतः सामान्य भक्ति-भावना की दृष्टि से वे नवधा भक्ति को उत्तम बतलाते हैं। भागवत में नवधा भक्ति का क्रम इस प्रकार दिया हुआ है —

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥[1]

अर्थात् भगवान के गुणों का श्रवण उनका कीर्तन स्मरण चरण सेवा अर्चन वन्दन दास्य (प्रणति) सखाभाव और आत्म-निवेदन इस प्रकार से नौ प्रकार की भक्ति है। दसवीं प्रेमलक्षणा भक्ति है जो किसी पात्र में ही प्रकाशित होती है।[2]

परमानन्ददासजी ने भागवतोक्त नवधा भक्ति तथा दसवीं प्रेम लक्षणा भक्ति की इस प्रकार चर्चा की है।

ताते नवधा भक्ति भली।[3]
जिन जिन कीनी तिन तिन की गति नैक न मिलत चली॥
श्रवण परीक्षित तरे राजरिषि कीर्तन तें शुकदेव।
सुमरन तें प्रहलाद निरमें हरि पद कमला सेव॥
अर्चन पृथु बंदन गुफलकसुत दास भाव हनुमान।
सख्य भाव अर्जुन बस कीने श्रीपति श्री भगवान॥
बलि आतम निवेदन कीनों राखे हरिकौं पास।
प्रेम भक्ति गोपी बस कीनी बलि परमानन्ददास॥ प० सा० ६६२॥

"राजर्षि परीक्षित श्रवण भक्ति से शुकदेव जी कीर्तन से भक्तप्रवर प्रह्लाद स्मरण और लक्ष्मीजी पादसेवन से भगवान की आराधना करती है। महाराज पृथु अर्चन भक्ति के लिए अक्रूर वन्दन भक्ति के लिए, श्री हनुमान जी दास्यभाव के लिए, अर्जुन सख्यभाव के लिए एवं महाराजा बलि आत्मनिवेदन के लिए सर्व विदित हैं। परन्तु ब्रज-गोपिकाओं ने प्रेमलक्षणा भक्ति में ही भगवान को वश में किया है। परमानन्ददासजी उन्हीं (गोपियों) पर बलिहारी जाते हैं।

---

१ भागवत ।५ ३
२ [illegible] वार्ता [illegible] ८०-८१
३ [illegible] लिखित प्रति में यह पद इस प्रकार मिलता है।
ताते नवधा भक्ति भली

उपर्युक्त पद में नवधा भक्ति की चर्चा भक्ति के साधन रूप में है। इसकी भक्ति प्रेम लक्षणा अनुरागात्मक साध्य है। और उसकी आदर्श स्वरूपा व्रज-गोपिकाएँ हैं। इसलिए परमानन्ददासजी बार-बार गोपीजनों पर बलिहारी जाते हैं। ये कृष्ण भक्ता व्रज गोपिकाएँ भक्ति क्षेत्र में सर्वोत्तम आदर्श रूपा ठहराई गई हैं। इनका भाव लोक अनन्य और इनकी प्रेम पद्धति नितान्त निराली है। अतः गोपी प्रेम अथवा गोपियों की कृष्ण भक्ति का स्वरूप समझ लेने पर परमानन्ददासजी की भक्ति का आदर्श स्वयमेव ही स्पष्ट हो जाता है।

वस्तुतः व्रज गोपिकाएँ रसात्मकता सिद्ध कराने वाली शक्तियों की प्रतीक रूपा हैं। और राधा रसात्मक सिद्धि की आधिदैविक स्वरूपा। गोपी प्रेम अनन्य और लोकोत्तर है उसे आधिभौतिक न समझ कर आधिदैविक ही समझना चाहिए।

ये व्रज गोपिकाएँ तीन प्रकार की थीं—[1]

१—अन्य पूर्वा [गोपांगना—पुष्टि]
२—अनन्य पूर्वा [गोपी—मर्यादा]
३—सामान्या [व्रजांगना—प्रवाह]

अन्यपूर्वा वे गोपिकाएँ थीं जो विवाहिता थीं। और जिन्होंने भगवान् के प्रति आत्मनिवेदन 'जार भाव' से किया था। वल्लभ सिद्धान्त का भक्ति आदर्श और अनन्यप्रेम की अनन्यता एवं सर्वसमर्पण अथवा सर्वतोभावेन आत्मनिवेदन का लोक वेद से परे का आदर्श इन्हीं में पूरा-पूरा घटित होता है। यही वे गोपिकाएँ हैं जिनमें दारागार पुत्राप्तवित्तादि का निखिल विनियोग प्रभु के चरणों में तुलसी दल के साथ हो जाता है। और साधक अथवा भक्त का 'स्व' समाप्त हो जाता है। यहीं यह कथन चरम उतरता है—"तेरा तुझको सौंपते क्या लागे है मोर।"

भक्त गोपी भाव के इस सम्पूर्ण समर्पण में इतना निश्चिन्त आनन्दमय निस्वरत एवं आश्वस्त हो जाता है कि उसे किसी प्रकार का सांसारिक क्लेश दुःख पीड़ा अथवा अभाव नहीं सताता और आनन्दार्णव में निमज्जन करता हुआ 'निजलाभ तुष्टः' की परम अनुभूति में पहुँच जाता है। आत्मा और परमात्मा के मिलन का आध्यात्मिक रूपक भी इसी "अन्यपूर्वा गोपी भाव" में पूरा उतरता है। यह शुद्धपुष्टि की स्थिति है। इसमें माहात्म्य-ज्ञान का अभाव है। माहात्म्य-ज्ञान शून्य भक्त सांसारिक कार्यों को तो निभाता है परन्तु प्रतिक्षण भगवच्चरणारविन्द में ही उसका मन संलग्न रहता है यही 'जारभाव' है। भक्त प्रवर नरसी कहते हैं—[2]

---

१ गोपीजनास्तु त्रिविधाः। गोपीषु मर्यादा। व्रजांगनासु प्रवाहः। या व्रज कुमारिका ...... तासां मर्यादात्मकत्वम्। गोपांगनास्तु कुलस्त्रियः पुष्ट गृहे सम्भुक्ता कामिन्यः विना जाताः सोऽपि तेन भुक्तो कामिन्यः पुष्टाः सङ्कल्पमात्राकारवत्वेनात्र तेषामपि रसानुभवः इत्यादि सकल मर्यादा शून्या कामिन्यः सर्वान् धर्मान्परित्यज्य केवलं पुरुषोत्तममेव भजन्ति तस्मात्तासां पुष्टित्वम्। व्रज गोपीनां व्रज कुमारीणां गोपीजन वल्लभ अनन्येन भजनं ज्ञानम्। ...... तस्मात्तासां मर्यादात्वं निश्चयम्। अतएव तासां मर्यादा भक्तिः। व्रजांगनानां मातृभावेनैव धर्मरता। तासां ईश्वरे पुत्रभावो वर्तते। तस्मात्तासां प्रवाहत्वम्। इति त्रिविधा गोप्य श्री ...... टीका

२ "जार भाव" के इस गम्भीर आत्म निवेदनात्मक गूढ़ रहस्य को न समझने के कारण ही सम्प्रदाय एवं कृष्ण लीला पर आलोचकों की दृष्टि मलीन हो चुकी थी। परन्तु भागवतकार स्पष्ट कहते हैं—

तमेव परमात्मानं जार बुद्ध्यापि संगताः।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीण बन्धनाः—भागवत—१० ।२९।११
तथा—हरिरेव तु जारत्वामित—भा १०-२९—११

'खातापीतां हरतां फरतां करतां कर्म नाम ।
स्वामि नारायण स्वामि नारायण मुख रटिए हरिनाम ॥

अर्थात् खाते-पीते घूमते-फिरते और सम्पूर्ण सांसारिक काम निभाते स्वामी का ध्यान रखो और मुख से उसका नाम लेते रहो ।

इस "पुष्टि पुष्ट" भक्ति भाव में प्रेम की सर्वोच्च स्थिति रहती है लोक वेद और मर्यादा का भेदभाव लगाव नहीं रहता । यह स्थिति प्रवाही मर्यादा एवं पुष्टि भक्ति से भी ऊँची है । जिस प्रकार कोई अन्यासक्त रमणी अपने पतिगृह में रह कर सम्पूर्ण कर्तव्यों को निभाते हुए भी मन को अपने "यार" में लगाए रहती है । उसी प्रकार का यह भक्त है । प्रेम की यह स्थिति उत्कृष्ट कोटि की है । मन की यह स्थिति स्वरूपासक्ति और लीलासक्ति के परिणाम स्वरूप होती है । इस प्रेमासक्ति के प्रबल प्रवाह में विधि-निषेध अथवा लोक-लाज कुल-मर्यादा वेद मर्यादा सभी अनायास बह जाते हैं बह जाते हैं और भक्त सिवाय अपने प्रियतम के कुछ और जानता ही नहीं । परमानन्ददासजी की भक्ति का आदर्श यही "अन्य पूर्वा" गोपी प्रेम है । इसकी चर्चा आगे चलकर की जायगी ।

२ अनन्य पूर्वा—गोपिकाएँ वे थी जो अविवाहिता थी । और कात्यायनी आदि देवी की उपासना करके श्रीकृष्ण को अपने पति रूप में मांगा था । इनमें कुछ तो आजन्म कुमारिकाएँ ही रहीं और कुछ का विवाह श्रीकृष्ण से हो गया था । यह अनन्यपूर्वा भाव भी गोपी भाव है जिसका उद्देश्य यही है कि जप तप व्रत एवं कृष्णातिरिक्त देवी देवताओं के आराधन का एकमात्र लक्ष्य श्रीकृष्ण प्रेम ही हो । अष्टछाप परमानन्ददासजी ने इस भक्ति की ओर भी संकेत किया है ।

३ सामान्या—वे गोपिकाएं थीं । जो भगवान् के बाल रूप पर मुग्ध थीं । और उन पर उनका वात्सल्य भाव था । इनमें माता यशोदा एवं अन्य व्रजांगनाएं आ जाती हैं । परमानन्ददासजी ने इस प्रकार के गोपी भाव के भी चित्र प्रस्तुत किये हैं । यहाँ पर हम अलग अलग उनके उपयुक्त गोपी भाव के चित्र प्रस्तुत करते हुए उनके भक्ति के आदर्श के निरूपण की चेष्टा करेंगे ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है परमानन्ददासजी की भक्ति का मूल आदर्श 'गोपी भाव' है अतः इनके भक्ति परक पदों में उक्त प्रकार के सभी गोपी भावों का समावेश मिलता । इसके उपरान्त राधा की चर्चा में तो वे शुद्ध पुष्टि वाले गोपी भाव पर आ जाते हैं । उनकी राधा साक्षात् मूर्तिमती रसात्मा ही प्रतीत होने लगती है ।

परमानन्ददासजी में अन्यपूर्वा गोपी भाव—यह कहा जा चुका है कि परमानन्ददासजी के काव्य में दो ही प्रमुख तत्व हैं —

१ स्वरूपासक्ति

२ लीलासक्ति

युगल मोहन नयनाभिराम घनश्याम के अगत कोटि कंदर्प दर्प-दलन सौन्दर्य को देख कर व्याकुल मुग्ध हो गई है । यह मुग्धावस्था कामवैषम्य की सीमा को स्पर्श कर गयी है ।

परायन राधिका को नीको।
जाके संग मिले हरि मेनन जो ठाकुर सबही को।
पूरब प्रेम लियो सो साँचो नन्दनन्दन पति करिलौ ॥

" "

गौर स्याम तन यह गोरी पर बलि परमानन्ददासा ॥ २१२ ॥

बड़े पुण्यों से भगवान् के प्रति यह भक्ति भाव मिलता है—

ऐसी भक्ति नन्द नन्दन की पुण्यन पुंज लह्यौ।

रवनी अधिक भई परमानन्द लोचन नीर बह्यो।

राधा के भाग्य पर अन्य गोपियाँ सिहाती हैं और कृष्ण की विशिष्ट प्रिया होने का उससे रहस्य भी पूछती हैं —

राधे कौन गौर तैं पूजी।"

" "

परमानन्ददास को ठाकुर तो सम और न दूजो ॥

ब्रज गोपिकाएँ कार्तिक स्नान भी इसी आशा से करती हैं कि नन्दगोपसुत (कृष्ण) पति रूप में उन्हें मिलें।

हरि गुन गावत चली ब्रज सुंदरी जमुना नदिया के तीर॥

" " "

जल प्रवेस करि मज्जन लागी प्रथम हेम के मास।
हमरे प्रीतम होयें नन्दसुत तप ठान्यौ इहि आस॥

" " "

परमानन्द प्रभु बर दैबे को उद्यम कियो मुरारि॥

सामान्या गोपी भाव —

तीसरे प्रकार की गोपिकाएँ सामान्या (प्रवाही) हैं। क्योंकि वे कृष्ण को पुत्र भाव से भजती हैं। माता यशोदादि इसी कोटि में आती हैं। पुत्र भाव में गोद में लेकर माता श्रीकृष्ण का मुख देखती हैं परन्तु साथ ही साथ उनके ऐश्वर्य से भी पूर्ण परिचित हैं।[1]

बदन निहारत है नन्दरानी।
कोटि काम सतकोटि चन्द्रमा कोटिक रवि कान्ति जिय जानी॥
सिव बिरंचि जाको पार न पावत सब निगम गावत ज्ञानी॥
गोद खिलावत महरि जसोदा परमानन्द जिय बलिहारी॥

ब्रज में रासलीला इत उपरान्त जब आनन्द हो जाता है तब गोपिकाएँ उनके माहात्म्य का वर्णन करती हैं —

---

१ तदापि व परमानन्द दास कि कृष्णरास
 वा० भा० ९०-९१

मोहन ब्रज को री रतन ।
एक चरित्र आज मैं देख्यौ पूतना पतन ।।
तृणावर्त सौं गयो आकाशै ताही कौ मरन ।
जे जे दुष्ट उपद्रव ठाने तिनही को हनन ।
सुनि री जसोदा या मोहन को रीझत ।
परमानन्ददास को जीवन स्याम है सुत न ।।

वस्तुतः परब्रह्म में पुत्र भाव रखते हुए भी ये ब्रजकी गोपियाँ उनके महात्म्य को एक क्षण भी भूलती नहीं है ।

लीला गान में आसक्त रह कर ये ब्रज की गोपियाँ आनन्द से दिवस व्यतीत करती हैं ।

हरि लीला गावत गोपी जन
आनन्द में निशिदिन जाई ।
बाल चरित्र विचित्र मनोहर,
कमल नैन व्रजजन सुखदाई ।।
दोहन मथन खंडन लेपन
मंडन गृह सुत पति सेवा ।।
चारि याम अवकाश नहीं पल
सुमिरत कृष्ण देव देवा ।।
भवन भवन प्रति दीप विराजत
कर कंकन नूपुर बाजै ।।
परमानन्द गोप कौतूहल
विरंचि भांति सुरपति लाजै ।।

एक गोपी आकर भगवान को गोद में ले लेती है और हृदय से चिपका कर प्यार करती है । माता यशोदा उसे मना करती है । ग्वालिन अनमनी होकर चली जाती है । वात्सल्य-निधि कृष्ण उसके अन्तर का प्रेम पहिचानते हैं । अत माता यशोदा उसे फिर बुला लाती है —

रहि री ग्वालिन जोबन मद माती ।
मेरे छगन मगन से लालहि किन लै उछंग लगावति छाती ।।
खीजत है अबही राखे हैं न्हानी न्हानी दूध की दाँती ।।
खेलन दे घर अपने गोकुल काहे को एती इतराती ।।
उठि चली ग्वालि लाल लगे रोवन तब यशुमति आई बहु भांति ।।
परमानन्द प्रीति अन्तर गति फिरि आई नैननि मुसकाती ।।

---

१ परमानन्दसागर पद संख्या—
पूतना लीला—
[illegible]
[illegible]परिशोधय ।
[illegible]
[illegible]

इस प्रकार गोपी प्रेम के समक्ष चित्र विविध परमानन्ददासजी ने प्रस्तुत कर भक्ति का आदर्श गोपी-प्रेम को ही ठहराया है। वे गोपी प्रेम को इतना उत्कृष्ट मानते हैं कि उन्हें प्रेम की ध्वजा बतलाते हैं—

गोपी प्रेम की ध्वजा।
जिन जगदीस किए बस अपने उर धरि स्याम भुजा।
सिव बिरंचि प्रसंसा कीनी उधौ सन्त सराही॥
धन्य भाग गोकुल की बनिता अति पुनीत भुव माँही।
कहा बिप्र घर जन्महि पाए हरि सेवा बिधि नाँही॥
तेहि पुनीत दासपरमानन्द जे हरि सन्मुख जाँही॥

इन गोपियों के प्रेम की प्रशंसा शिव ब्रह्मा और उद्धव भी करते हैं अतः इनका ही प्रेम धन्य है। गोपी प्रेम के सामने कुलीनता अथवा विप्रकुल में जन्म का अभिमान आदि सब व्यर्थ है।

गोपी-प्रेम के दिव्य आदर्श की प्रशंसा करते हुए वे अपनी भक्ति का आदर्श भी गोपी भाव बतलाते हैं और उन पर बलिहारी जाते हैं—

'प्रेम भक्ति गोपी जस कीनी बलि परमानन्ददास।

वे सखी-भाव की अतिशय प्रशंसा करते हैं और उसे बड़े पुण्यों का परिणाम बतलाते हैं—

लागे जो श्री वृन्दावन रंग।
देह अभिमान सबै मिटि जैहै अरु विषयन को संग।
सखी भाव सहज हि होय सजनी पुरुष भाव होय भग॥
श्री राधावर सेवत सुमिरत उपजत लहर तरंग॥
मन को मैल सबै छुटि जैहै मनसा होय अपंग॥
परमानन्दस्वामी गुन गावत मिट गए कोटि अनंग॥

सखी भाव या कान्ता भाव आत्म समर्पण में बड़ा ही सहायक होता है। सेवा और समर्पण भक्ति के अनिवार्य अङ्ग हैं। यह एक तथ्य है कि नारी भक्तात्मा को प्रभु के प्रति अपना प्रियतम मानकर सर्व समर्पण करने में जो स्वाभाविकी सुविधा होती है वह पुरुषों को नहीं होती। पुरुषों को अपने पुरुषत्व का अभिमान आत्मसमर्पण के लिए अत्यन्त बाधक होता है। अत दास्य अथवा सख्यभाव की अपेक्षा कान्तासक्ति को ही नारी भक्तात्माओं ने प्रायः अधिक अपनाया है। इसलिए बार-बार भक्ति के आदर्श के लिए वे गोपी-प्रेम को ही सर्वोच्च ठहराते हैं। वे कहते हैं यदि गोपी-प्रेम का आदर्श न होता तो इस कलिकाल में औघड़ पथ फैल जाता और श्रद्धा धर्म आदि का लोप हो जाता।

माधौ या घर बहुत धरी।
कहन सुनन की लीला कीनी मर्यादा न टरी।
जो गोपिन की प्रेम न होती अरु भागवत पुरान॥
तो सब औघड़ पन्थहि होतौ कथत पर्यौ ध्यान॥
बारह बरस को भयो दिगम्बर ग्यानहीन संन्यासी॥
खान-पान घर-घर बकहिन कैं भस्म लगाय उदासी॥

पाखंड दंभ बढ्यो कलियुग में श्रद्धा धर्म भयो लोप ॥
परमानन्ददास वेद पढ़ि बिगरे कापै कीजै कोप ॥

संक्षेप में परमानन्ददासजी आत्म-साधना के एकान्त क्षेत्र में गोपी भाव को ही सर्वोत्तम भक्ति भाव ठहराते हैं। इसी की प्राप्ति के लिए उन्होंने भागवतोक्त नवधा भक्ति का भी प्रतिपादन किया है क्योंकि नवधा भक्ति का अन्तिम सोपान ही प्रेमलक्षणाभक्ति का श्री गणेश है। इस नवधा भक्ति को वैधी भक्ति भी कहा जाता है। इसमें 'राग' का तो अभाव होता है और शास्त्र का अनुशासन ही साधक को भक्ति में प्रवृत्त करता है।[1]

परमानन्ददासजी की वैधी भक्ति—परमानन्ददासजी में जैसा कि पहले कहा जा चुका है शास्त्रीय वैधी भक्ति के तत्त्वों को खोजना व्यर्थ है। क्योंकि प्रेम लक्षणा भक्ति का निरूपण करना ही उनका लक्ष्य था। अतः यहाँ उन्होंने गोपी भाव को भक्ति के क्षेत्र में सर्व श्रेष्ठ ठहराया है और उसे एकान्त साधना का चरम लक्ष्य माना है। वहाँ शास्त्रीय नवधा भक्ति (वैधी) की भी आनुषंगिक चर्चा की है और उसकी पूर्व भूमिकाओं का भी यत्र-तत्र समावेश किया है। अपने प्रसिद्ध पद 'ताते नवधा भक्ति भली' में उन्होंने नौ प्रकार की भक्ति के विभिन्न आदर्शों अथवा उदाहरणों को भी दिया है। परन्तु अपने भक्तिपरक पदों में उन्होंने व्यावहारिक की स्वतन्त्र चर्चा करते हुए रागानुगा भक्ति का ही प्रतिपादन करना अपना लक्ष्य समझा था क्योंकि उसके बिना भक्ति की सर्वोच्च सिद्धि असम्भव होती है।

नवधा भक्ति में श्रवण कीर्तन स्मरण पाद सेवन अर्चन वन्दन दास्य सख्य और आत्म निवेदनादि आते हैं उपर्युक्त नवधा भक्तियाँ परमानन्ददासजी में इस प्रकार है—

वे एकमात्र भागवत को ही श्रवणीय मानते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में वही भक्ति का एक मात्र ग्रन्थ है—

श्रवण—जब लग जमुना गाय गोवर्धन
जब लग गोकुल गाम गुसाईं।
जब लग श्री भागवत कथा
तब लग कलियुग नाहीं ॥

परमानन्द दासो हरि कीरत
श्रीवल्लभ चरन रेनु जिन पाई ॥ प स १२१

एक स्थान पर वे प्रभु से याचना करते हैं कि यदि जन्म मिले हैं तो निरन्तर श्रवण भक्ति मिलती रहे।

यह मांगों संकर्षण बीर।
चरन कमल अनुराग निरन्तर भावै मोहि भक्तन की भीर।
संग देहौ तो हरि भक्तन को वास देहौ तो जमुना तीर ॥
श्रवण देहु तो हरि कथा रस ध्यान देहु तो स्याम शरीर ॥
मम कामना करौ परिपूरन पावन करन सुरसरि नीर ॥
परमानन्ददास को ठाकुर त्रिभुवन नायक गोकुल पति बीर ॥ प स २६६

---

१ यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरुपजायते
शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते हरिभक्तिरसा १ लहरी—२

एक और स्थान पर गोपीजनवल्लभ से प्रार्थना है —

"यह मांगों गोपीजनवल्लभ।
मानुष जन्म और हरि सेवा ब्रज बसिबो दीजे मोहि सुल्लभ।
" "
श्री भागवत श्रवण सुनि नित इन तजि चित कहुँ अनत न जाऊं॥
परमानन्ददास यह मांगत नित्य निरखौ कबहुँ न अघाऊं॥ प स १६७

एक और स्थल पर वे कहते हैं —

सेवा मदन गुपाल की मुकतिहू तैं मीठी॥
" " "
चरन कमल रज मन बसी सब धर्म बहाए॥
श्रवण कथन चिंतन बाढ्यो पावन जस गाए॥

कीर्तन —कवि को प्रभु यश गान मे चरम सुख की प्राप्ति होती थी। उन्हे प्रभु के कीर्तन से आपूर्ण निर्भरता प्राप्त थी। वह कहते हैं —

"हरि जस गावत होई सो होई।
विधि निषेध के कीच परे हौ जिन अनुभव देखौ कोई॥
" "
राम कृष्ण अवतार मनोहर भक्त अनुग्रह काज॥
परमानन्ददास यह मारग कीरत राम के राज॥

जो कृष्ण कीर्तन नही करता परमानन्ददासजी के मत से वह प्राणी व्यर्थ जीता है —

कृष्ण कथा बिन कृष्ण नाम बिन कृष्ण भक्ति बिन दिवस जात।
वह प्रानी काहे को जीवत नही मुख कहत कृष्ण की बात॥

वे एक मात्र *अनन्यतापूर्वक अपने आराध्य का ही कीर्तन करना चाहते हैं* —

'बहुतै देवी बहुतै देवा कौन कौन को भलो मनाऊँ॥
हौं स्यामसुन्दर को कमल-करन पावन जसु गाऊँ॥
" " "
हौं बलिहारी दास परमानन्द कमला छांपर काहे न जाई॥ प स १८७

कवि के कीर्तन का उद्देश्य यही है कि वह भगवान् के चरण कमल मे अहर्निश प्रेम *करता हुआ उनकी सेवा का निर्वाह करता रहे।*

तातै गोविन्द नाम लै गुन गायो चाहौं।
चरन कमल हित प्रीति करि सेवा निरबाहौं॥
"
जिन सेवा अनुसरए पद अम्बुज आसा।
जो मूरति मेरे हिय बसौ परमानन्ददासा॥ ७२८॥

स्मरण —*कवि का भगवन्नाम मे दृढ विश्वास था। वह कहता है कि* प्रभु का स्मरण जिसने भी किया उसने उच्च से उच्च स्थान पाया —

माधौ तुम्हारी कृपा तें का को न तर्यो ।
मन क्रम बचन नाम बिन लीनो ऊँचो पदवी छोड़ि चढ्यो ॥
तुम चाहि अजामल दियो जग जीवन तो पुराण पुकार कह्यो ॥
गनिका व्याध अजामिल गजेन्द्र तिनन कहा हो बेद पढ्यो ॥
ध्रुव प्रह्लाद भक्त हैं जेते तिनको निशान बज्यो जिनही मढ्यो ॥
परमानन्दप्रभु भक्त बत्सल हरि यह जानि जिय नाम रट्यो ॥ प० सं० १६८

भगवन्नाम-स्मरण कामधेनु के समान है —

"कामधेनु हरि नाम लियौ ।
मन क्रम बचन की कौन कहै महा पतित द्विज धर्म दियो ॥
कौन नृपति की हुती कुल बधू गणिका को कहा पवित्र हियो ॥
जन्म-कोष तो कियो महा दुख कौन बेद जन पाढ़ कियो ॥
कुंजर सुता बिन हरि सुमिरें नृपति नमन बधु करि न दियो ॥
असुर जात त्रैलोक्य सुमण्डित सुत को काहू न पोष कियो ॥
भव जल व्याधि असाध्य रोग की जप तप व्रत औषध न कियो ॥
गुरु-प्रसाद ताकी सम्पति जन परमानन्द रंक लियो ॥ प० सं० ७१८

एक स्थान पर वे कहते हैं —

हरिजूको नाम सदा सुखदाता ।
करो जु प्रीति निश्चल मेरे मन आनन्द मूल विधाता ॥
जाके सरन गए भय नाहीं सकल बात को ज्ञाता ॥
परमानन्ददास को ठाकुर, समर्पण को भ्राता ॥ प० सं० ११४

पाद सेवन —पुष्टि सम्प्रदाय में पाद-सेवा का बड़ा भारी महत्त्व है । प्रभु के स्पर्श मात्र से भक्त में तन्मयता आती है और वह आराध्य को सर्वस्व देने के लिए कटिबद्ध हो जाता है । कवि की भगवान् से यही याची भाव है —

यह मांगों जसोदा नन्दनन्दन ।
बदन कमल मेरो मन मधुकर नित प्रति छिन छिन पाऊँ दरसन ॥
चरन कमल की सेवा दीजै कोउ जन रावत विपुलता धन ॥
नन्दनन्दन वृषभान नन्दिनी मेरे सर्वसु प्रान जीवन धन ॥
ब्रज बसि सदा जमुना जल पीऊँ श्री वल्लभ कुल को दास सही मन ॥
महाप्रसाद खाऊँ हरि गुन गाऊँ परमानन्ददास दासी जन ॥ प० सं० ७१६

परमानन्ददासजी ने अपने को अकिंचनीकृत जीवों की श्रेणी में माना है अतः वे भगवच्चरणारविंद की सेवा ही मांगते हैं कुछ और नहीं —

माधौ हम बड़भागे लोग ।
प्रात उठें कर जाऊँ चरन नित पाऊँ सब उपभोग ॥
दुर्लभ भुक्ति तुम्हारे घर की सन्यासिन को दीजै ॥
अपने चरन कमल की सेवा इतनी कृपा मोहि कीजै ॥

जहँ राखौ तहँ रहूँ चरन तर परयौ रहूँ दरबार ॥
जाको पूछन जाऊँ निसदिन ताको करौं विचार ॥
जहँ पठवौ तहँ जाऊँ विदा लै दूतकारी मलीन ॥
परमानन्ददास को जीवनि तुम पानी हम मीन ॥ प सं ९ २

अर्चन—अर्चा अथवा पूजा भक्ति की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। भक्त को उसमें असीम सन्तोष मिलता है। भक्तवर परमानन्ददासजी को भगवान् की सेवा में मुक्ति से भी अधिक मधुरता प्रतीत होती थी—

सेवा मदन गोपाल की मुक्तिहू ते मीठी।
जानें रसिक उपासिका सुक मुख जिन दीठी ॥

"

परमानन्द विचारि कै परमारथ साध्यौ ॥
रामकृष्ण पद प्रेम बढ़यौ सीमा रस बाध्यौ ॥
ताते गोविंद नाम सौं तुम लागौ चाहौ ॥
चरन कमल हित प्रीति करि निरबाहौ ॥

अहर्निश सेवा करने की अभिलाषा ही परमानन्ददासजी की अर्चन भक्ति है।

वन्दन—वन्दन अर्थात् चरणों में प्रणिपात अथवा साष्टांग प्रणाम दैन्य का प्रथम लक्षण है।

बलिहारी पद कमल की जिन में नवसत लच्छन।
धुजा वज्र अंकुस जव रेखा ध्यान करत विचच्छन ॥
ते चिन्तत भव ताप हरत सीतल सुखदायक ॥
नखमनि की चंद्रिका जोति उज्जल जगनायक ॥ प स १८७

भगवच्चरणारविंद में तन्मय होकर कवि एक स्थल पर कहता है—

तिहारे चरन कमल को मधुकर मोहि कबहूँ करोगे।
कृपावंत भगवंत गुसाईं यह बिनती चित्त धू धरोगे ॥ प स १२८

गुरु गोविंद में अभेद बुद्धि वाले परमानन्ददासजी ने एक और अन्य स्थान पर इस प्रकार चरण वन्दना की है—

श्री वल्लभ रतन जतन करि पायौ। (घरी मैं)
बूड़ौ जात मोहि राखि लियौ है दिय नग हाथ गहायौ ॥
दुष्ट सब दूरि किए हैं चरनन सीस नवायौ ॥
परमानन्ददास ने ठाकुर नवधन प्रगट दिखायौ ॥ प स १५०

दास्य—पुष्ट भक्तों के लिए दास्य-भाव अत्यन्त स्वाभाविक और सुविधा जनक होता है। दास्य भाववाला भक्त भगवान परिकरों की चर्चा में असीम उल्लास का अनुभव

करता है। कवि ने दास्य भाव से भगवान के चरणकमलों का बड़ी भक्ति भाव से स्मरण किया है—

> अपने चरण कमल को मधुकर हमहू काहे न करहु जू ॥
> कृपावन्त भगवन्त गुसाईं हरि बिनती चित धरहु जू ॥ प० सं० ११२

अन्यत्र वे कहते हैं—

> माधौ हम उरपाने मोल ।
>
> "
>
> जहाँ राखो तहँ रहूँ चरन तर परयो रहूँ दरबार ॥
> जानी झूठन खाऊँ निसदिन ताकी करौ किवार ॥
> जहँ पठवौ तहँ जाउँ जिवा लौं हुलकारौ प्रवीन ॥
> परमानन्ददास को जीवनि तुम पानी हम मीन ॥ प० सं० १ २

और अन्त मे एक पद मे तो भक्तराज परमानन्ददास जी ने अपने को भगवान् का दासानुदास बताया है। अपनी चरम दैन्य भावना और भक्ति भावना मे वे विनय करते हैं—

> माधो यह प्रसाद हौं पाऊँ ।
> तव भृत भृत्य परिचारक दास को दास कहाऊँ ॥

श्रीमद्भागवत मे पुष्टि-सूत्र जो वृत्रासुर चतुःश्लोकी मे मिलता है उसका पूर्ण निर्वाह परमानन्ददासजी मे इस स्थल पर मिल जाता है। वृत्रासुर कहता है—

> अहं हरे तव पादैकमूल दासानुदासो भवितास्मि भूयः ।
> मन स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः ॥

सख्य—सख्य भाव मे दास्य की अपेक्षा कुछ अधिक संकोच राहित्य रहता है। उसमे विनय और दीनता का वह गंभीर रूप नही मिलता जो दास्य मे होता है। परन्तु प्रेम की गहराई अवश्य बढ़ जाती है और सतत साहचर्य की निरंतर अभिलाषा बनी रहती है। यहीं से रागानुगा भक्ति का प्रथम सोपान समझना चाहिए। कान्ताभाव में भी गंभीर सख्यत्व का समावेश रहता है।

> जपे जो श्री वृन्दावन रज ।
> सखीभाव सहज होय सजनी पुरुष भाव होय भग ॥
> श्री राधावर सेवत सुमिरत उपजत लहर तरंग ॥
> मन के मैल तबै छूटि जैहैं ममता होय भंग ॥
> परमानन्दस्वामी गुन गावत मिटि गए कोटि अनंग ॥ प० सं० ७२८

परमानन्ददास भगवान को छोड़कर किसी और को अपना स्नेही अथवा प्रेमास्पद बनाना ही नहीं चाहते। क्योंकि परम उदार प्रियतम भगवान के अतिरिक्त वैसा स्नेह कोई निभा भी नहीं सकता।

इस दिव्य आत्म-निक्षेप की स्थिति में माता पिता घर समाज कुटुम्ब का न तो कोई भय है न ही उसकी चिंता। यहाँ तक कि लोक परलोक की भी पर्वाह नहीं।

> माई री गुपाल सौं मेरो मन मान्यौं कहा करैगो कोउ री ॥[1]
> अबतौं चरन कमल लपटानी जो भावै सो होउ री ॥
> माई रिसाउ बाप घर मारै, हँसै बटाउ लोग री ॥
> अब तौ जिय ऐसी बनि आई बिधना रच्यौ संजोग री ॥
> बरु ये लोक जाहु किन मेरो अरु परलोक नसाइ री ॥
> नंद नंदन हौं तऊ न छाँडौं मिलौं निसान बजाइ री ॥
> बहुरि यह तन धरि का पैहौं वल्लभ भेष मुरारि री ॥
> परमानंद स्वामी के ऊपर सरबसु देहौं वारि री ॥ प सं १ २

आत्म-निक्षेप का इससे उत्तम उदाहरण और क्या हो सकता है। प्रिय के सौंदर्य से अभिभूत गोपिका को प्रिय का प्रत्येक अंग उसका श्रृंगार भ्रू भंग मुरली-वादन यहाँ तक कि उसका प्रत्येक स्पंदन आत्म-विस्मृति के लिए पर्याप्त है।

> भावै मोहि मोहन बेनु बजावन।
> नंद गोपाल देखि हौं ही रीझी मोहन की मटकावन।
> कुण्डल लोल कपोल मधुरतम लोचन चारु चलावन ॥
> कुन्तल कुटिल मनोहर आनन मीठे बैनु बुलावन।
> स्याम सुभग तन चंदन मंडित उर पर भृग नचावन ॥
> परमानन्द ठगी नंद नंदन हसन कुन्द मुसकावन।

सौंदर्य की इस दिव्यानुभूति ने ही आश्चर्य भावना को जन्म दिया है। और इस आश्चर्य ने समस्त लोक लाज को मात मार दी है। परमानन्ददासजी इसी रागानुगा एकान्त भक्ति के प्रबल पोषक हैं। उनके काव्य में पद पद पर सौन्दर्य और आश्चर्य के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। परन्तु जहाँ एक ओर वे विधि-निषेध से परे एकान्त भक्ति की दिव्य भूमि में पाठक को घसीट लेजाते हैं वहाँ दूसरी ओर सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्तों का समन्वय भी करते चलते हैं। उपर्युक्त राग अथवा स्नेह की इस स्थिति में सांसारिक राग अथवा गृहासक्ति का सर्वथा नाश हो जाता है। जिसका निदर्शन परमानन्ददासजी ने पदे-पदे किया है।[1] कृष्ण रति जन्य जीवन की इस कृतार्थता की ओर कवि ने बार-बार संकेत किया है।

> सुन्दरता गोपालहि सोहै।

> वेद पुरान निरूपत बहुविधि ब्रह्म नराकृति रूप निवास।
> बलि बलि जाऊँ मनोहर मूरति हृदय बसो परमानन्ददास ॥ प सं ४४६

---

१ 'स्नेहाद्राग विनाशः स्यादासक्त्या स्याद्गृहारुचिः। भ र ४
गृहस्थानां बाधकत्वमनात्मत्वं च भासते ॥
यदा स्यात् व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात्तदैव हि ॥ भक्ति-व

इस चरम दैन्य मे वे भक्तों को सहिष्णु बनने की सलाह देते हैं —

बृज बसि बोल सबन के सहिए।
जो कोउ भली बुरी कहै लाखें नन्दनन्दन रस महिए॥
..
परमानन्द प्रभु के गुन गावत आनन्द प्रेम बढ़ैये॥ प सं १७१

एक स्थान पर वे कहते हैं—

तुम तजि कौन नृपति पै जाउँ।
काके द्वार पैठि सिर नाउँ परहथ कहा बिकाउँ॥
तुम कमलापति त्रिभुवन नायक विस्वभर जाको नाउँ॥
..
परमानन्द हरि सागर तजि के नदी शरण कत जाउँ॥ प स १६८

मानमर्षता :—इसमे भक्त अपना अभिमान विसर्जित कर देता है। और दैन्य की स्थिति पुष्ट हो जाती है। जिसे सिवाय भगवच्चरणारविंद के दूसरा कुछ नहीं सुहाता। परमानन्ददासजी अपनी विह्वल दशा में पुकार उठते हैं —

अपने चरण कमल को मधुकर हमहू काहे न करहू जू॥
कृपावत भगवत गुसाईं इहि बिनती चित धरहू जू॥ प सं १६२

भयदर्शन —चचल और दुष्ट मन यदि अन्य उपाय से नहीं मानता तो उसके लिए भय दिखाना आवश्यक हो जाता है परमानन्ददासजी ने "बड़ी हानि" का भय एक स्थान पर प्रस्तुत किया है —

"हरि के भजन को कहा चाहियत है
भजन नेम रसना पर पानि॥
ऐसी उपाधि भाइ बनी है
जो न भजे ताहि बड़ो हानि॥प स १७८

भर्त्सना —सही रास्ते पर लाने के लिए "धिक्कृति" भी एक अव्यर्थ उपाय है। भक्त मन को इस उपाय से भी वश मे करते आए हैं। भर्त्सना मे गाली गलौज क्षोभ का भाव मिश्रित रहता है.—

"मई न भाउ पापिनी मैंहै।
तजि सेवा बैकुण्ठनाथ की नीच लोग के सग रहै॥ प सं ७१

आश्वासन —कभी-कभी आश्वासन से भी क्रूर चचल मन मान जाता है प्रभु की असीम शक्ति पर जब भक्त का ध्यान पहुँचता है तो लोभी स्वभाव के मन को भी समझा दिया जाता है परमानन्ददासजी ने भी मन को आश्वस्त किया है.—

"क्यों न जाइ ऐसे के सरन।
प्रतिपालै पोषै माता ज्यों चरण कमल भव सागर तरन॥ प सं० १७१

और पात्रानुसारीहोता भिन्न नवधा होती हुई इक्यासी प्रकार की और फिर चौरासी प्रकार की होकर पात्रानुकूल अनन्त प्रकार की हो जाती है। परन्तु प्रपत्ति अथवा शरणागति मे दैन्य का प्राधान्य है और निस्साधनता इसका तत्व है। यह तीन प्रकार की है—

१ भगवान् द्वारा भक्त का स्वीकार।

२ भक्त द्वारा भगवान् का स्वीकार।

३ अथवा भक्त और भगवान् दोनो की परस्पर स्वीकृति अर्थात् मिश्र प्रपत्ति।

पुष्टि भक्तो में तीनो ही प्रकार की प्रपत्तियों के उदाहरण मिलते हैं। गोपियाँ वे भक्तायें हैं जिनका स्वयं भगवान् ने स्वीकार किया है।

प्रथम प्रकार की प्रपत्ति—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिका।
मामेव दयित प्रेष्ठमात्मानं मनसा गता॥
ये त्यक्त लोक धर्माश्चमदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥ भाग १ ।४६।४

द्वितीय प्रकार की प्रपत्ति—

इसमे विभीषण अथवा मत्कार कृपासुरादि आते हैं—

विभीषण कहते हैं—

भवन्त सर्व भूतानां शरण्यं शरणं गत।
परित्यक्ता मया लंका मित्राणिच धनानि च॥ वा० रा यु १६।२

अर्थात् आप सर्वभूतों के शरण्य है। मैं आपकी शरण में आ गया हूँ। मैं लंका का अपने मित्रो का और धन का परित्याग करके आया हूँ।"

मिश्रप्रपत्ति का सर्वोत्तम उदाहरण अर्जुन है। एक स्थान पर अर्जुन स्पष्ट स्वीकार करते हैं—

"शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम्॥ गीता

भगवान् भी उसे अनन्य अनुगृहीत भक्त स्वीकार करते हैं—

न वेद यज्ञाध्ययनैर्न दानैं।
न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रै॥
एवं रूप शक्य अहं नृलोके।
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर॥ गी ११।४८

तथा—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज॥
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥ गी १८।६६

अर्थात् हे अर्जुन! न वेद पाठ से न यज्ञ से न दान से न कर्म काण्डादि से न उग्र तप मुझे इस प्रकार के इस नर लोक मे तेरे अतिरिक्त कोई नहीं देख सकता। समस्त धर्मों को छोड कर तू मेरी शरण में आजा मैं तुझे समस्तपापो से मुक्त कर दूँगा। तू सोच मत कर।

उपर्युक्त श्लोकों से पता चलता है कि अर्जुन भगवान् का विशिष्ट कृपा पात्र जीव था। परन्तु उपर्युक्त तीन प्रपत्तियों में से प्रथम दो प्रकार की प्रपत्तियाँ ही मुख्य हैं। जिसमें प्रथम प्रकार की प्रपत्ति अर्थात् भगवान् द्वारा भक्त का स्वीकार पुष्टि मार्गीय प्रपत्ति है। और दूसरे प्रकार की प्रपत्ति मर्यादामार्गीय प्रपत्ति है। परमानन्ददासजी में उक्त दोनों ही प्रकार की प्रपत्तियाँ पाई जाती हैं। गोपी प्रेम में पुष्टिमार्गीय प्रपत्ति का उदाहरण मिलता है। गोपियों के माहात्म्य की चर्चा करते हुए वे कहते हैं।

गोपी काम करत सब रस को।
नंद नवल जसोदा को जीवन गोपिन प्राण प्राण पति सर्वसु को॥
तिल भर संग तजत नहीं निस दिन मान करत मन मोहन प्रभु को॥
छिन-छिन चोप करत मन भावत परमानन्द प्रभु सौं यह रस को॥ प. स. ७०६

एक और स्थान पर वे लिखते हैं —

ये हरि रस ओपी सब गोप तियन ते न्यारी॥
कमल नयन गोविंद चन्द की प्रानन प्यारी॥
निरमत्सर जे संत तिनहिं चूड़ामनि गोपी॥
निरमल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी॥ प. सं. २१

मर्यादामार्गीय प्रपत्ति के अन्तर्गत छः प्रकार की शरणागति की चर्चा की जाती है—

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा॥
आत्मनिक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥

अर्थात् प्रभु के प्रति अनुकूलता का संकल्प, प्रतिकूलता का त्याग, प्रभु सदैव रक्षा करेंगे—यह विश्वास, अपने रक्षक रूप में प्रभु का वरण, अपने को सर्वथा सौंप देना और दीनता। यही छः प्रकार की शरणागतियाँ हैं। परमानन्ददासजी ने इन प्रपत्तियों की अपने काव्य में यथा स्थान चर्चा की है—

अनुकूलता का संकल्प—

इस संकल्प के बिना काम ही नहीं चल सकता। इसमें अनन्यता के बीज निहित हैं। यदि भक्त ऐसा संकल्प न करे तो उसकी शरणागति सम्पन्न ही नहीं हो सकती।

या व्रत तै कबहूँ न टरौंगी।
बलबीर बदन बरी रचि सुन्दर नाहिंनो नाम करौंगी। प. सं. ७१२

प्रतिकूलता का विसर्जन—

यह दूसरी शरणागति की पूरक स्थिति है। इसमें प्रिय के प्रतिकूल आचरण के त्याग की प्रमुख रहता है। अनन्यता की उत्तरोत्तर वृद्धि है।

अब लाज को मेरी मन आन्यो कहा करैगो कोई री।
हौं तो चरण कमल सरनागति को मानै तो होय री॥
गुरु, पति मात पिता भ्रात हैं सब बरज लोग री। प. सं. १२१

एक स्थान पर वे कहते हैं —

तातैं न कछु मांगि, हौं रहो जिय जानी ॥
" "
मान देव कत देहए बिगरे पै अपकारी ॥प सं १९१

"

छांडि न देत झूठे मति अभिमान।
मिलि रस रीति प्रीति करि हरि सौं सुन्दर है भगवान ॥
यह जीवन धन ओस वारि को पलटत रंग सौ पान ॥ प सं० १४७

रक्षा का विश्वास —इस विश्वास से भक्त को बड़ा भारी मानसिक बल और दृढ़ भरोसा प्राप्त होता है। इससे भक्त मे विघ्नों का सामना करने की शक्ति आती है। परमानन्ददासजी ने प्रभु को ही "सर्व समर्थ" समझ कर निश्चिन्तता प्राप्त की है।

ताते तुम्हरो मोहि भरोसो आवै।
दीन दयाल पतित पावन जस बेद उपनिषद गावै॥
" "
ऐसो को ठाकुर वे जन कौं सुख दै भलो मनावै ॥प स १९१

रक्षक रूपमें प्रभु का वरण—

भगवान को रक्षक के रूप मे वरण करके भक्त एक प्रकार से अभेद्य कवच मे सुरक्षित हो जाता है। उसे किसी प्रकार की आधि व्याधि नहीं सताती और निश्चित होकर भक्ति-साधना मे लग जाता है। परमानन्ददासजी ने "कमलापति की ओट' को सर्वोपरि सर्व प्रथम माना है—

बड़ी है कमलापति की ओट।
सरन गये ते पकरि न भाए किन्हीं कृपा की कोट ॥प स १९४

साचो विश्राम है री कमलनयन ॥प स ७

आत्मनिक्षेप —

आत्म-निक्षेप मे भक्तपूर्ण अवलम्बन लेकर निर्भरता स्थिति पर पहुँच जाता है। यही उसे शाश्वत सुख का आभास मिलने लगता है। और वह भगवान से खुलकर व्यवहार करने लगता है। धीमे-धीमे भगवान से अपना संबंध जोड़ लेता है परमानन्ददासजी ने अपनी सम्पूर्ण निर्भरता का परिचय इस प्रकार दिया है —

तुम तजि कौन नृपति पै जाउं ॥
काके द्वार पैठि सिर नाउं पराधन गहा बिकाउं ॥
" " "
परमानन्द हरि सांवर तजि कै नहीं चरण शरन जाउं ॥प सं १८

आर्पयय—

ये दैन्य विनय प्रेम उपालम्भ आदि भाव रहते हैं इसमें भाव सबलता रहती है। प्रभु से प्यार बढ़ जाता है और भक्त उन पर अपना अधिकार सा समझ लेता है—

"अनुग्रह तौ मानौं गोविंद।
जाके चरन कमल दिखरावहु वृन्दावन के चंद॥
"
अपराधी आदि सबै कोऊ हौं अधम नीच मतिमंद॥
ताकी तुम अंगिकृत पुरुषोत्तम मानत परमानन्द॥प सं १६६

संक्षेप में परमानन्ददासजी के षड्विधा शरणागति अथवा प्रपत्तिपरक पद भी पर्याप्त रूप हमें मिल जाते हैं।

नारदीयभक्तिसूत्रोक्त आसक्तियाँ और परमानन्ददासजीके भक्ति विचार—

नारदीय भक्ति सूत्र में एकादश आसक्तियों की चर्चा इस प्रकार आई है।

गुण माहात्म्यासक्ति रूपासक्ति पूजासक्ति स्मरणासक्ति दास्यासक्ति सख्यासक्ति कान्तासक्ति वात्सल्यासक्ति आत्मनिवेदनासक्ति तन्मयतासक्ति परमविरहासक्ति रूपाएक-धाप्येकादशधा भवति—ना भ ८२

यद्यपि प्रेमलक्षणा भक्ति रसात्मक और अखण्ड है तथापि अपने विशिष्ट प्रकारों में यह ग्यारह प्रकार की हो गई है। यहाँ हम प्रत्येक आसक्ति का अलग-अलग उदाहरण प्रस्तुत करने की चेष्टा करेंगे।

१ गुणमाहात्म्यासक्ति —इसमे भक्त को प्रभु के गुण और महात्म्य का ज्ञान रहता है और वही उसकी प्रेम स्वरूपा भक्ति का कारण होता है —

गोविंद तिहारो स्वरूप निगम नेति नेति गावैं।
भक्ति हेतु स्यामसुन्दर देह धरें आवैं॥
जोगी मुनि ध्यानी ज्ञानी सुपने नहिं पावैं॥
नन्द घरनि बाँधि बाँधि कपि ज्यौं ले नचावैं॥
" "
परमानन्द प्रेम कथा सकहिन ते न्यारी॥प सं ६१

२ स्वरूपासक्ति —परमानन्ददासजी में स्वरूपासक्ति के अनेक पद हैं। वस्तुतः उनके काव्य के दो ही विषय हैं:—

स्वरूपासक्ति और लीलासक्ति। अत स्वरूपासक्ति का एक उदाहरण—

'सुन्दर मुख की हौं बलि-बलि जाउ॥
लावननिधि गुननिधि सोभा निधि देखि-देखि जीवत सब गाउं।
अंग-अंग प्रति अमित माधुरी प्रगटत रस रुचिर ठाउं॥
तामें मृदु मुसुकानि हरत मन, न्याय कहत कवि मोहन नाउ॥

१ माहात्म्यज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़ सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा॥ त दी नि—४६

उभा अंस पर बाम बाहु धरै यह छबि की बिनु मोल बिकाउँ ॥
परमानन्द नन्दनन्दन को निरखि निरखि उर नैन सिराउँ ॥ प० सं० २६९

यथा

अति रति स्याम सुन्दर सौं बाढ़ी ।
देखि स्वरूप गोपालनाल को रही ठगी सी ठाढ़ी ॥ प० सं० १६७

पूजासक्ति

जाके प्रिय नाहिं सदा गोवर्धन धारी ।
इन्द्र कोप ते नन्द की आपदा निवारी ॥
जो देवता पराधिप सो हरि के भिखारी ॥
अन्य देव सब सेइए बिपरै पै अपकारी ॥
दुसासन के कोप ते द्रौपदी उबारी ॥
परमानन्द प्रभु सावरो भगतन हितकारी ॥ प० सं० ७१६

स्मरणासक्ति

जब ते प्रीति स्याम सौं कीनी ।
ता दिन ते मेरे इन नयननि मैं कबहूँ नींद न लीनी ॥
सदा रहति चित चाक चढ्यो सो और कछू न सुहाय ॥
मन मैं करत उपाय मिलन की इहै बिचारत जाय ॥
परमानन्द प्रभु पीर प्रेम की अपने तन मन सहिए ॥
जैसे बिथा मूक बालक की अपने तन मन सहिए ॥ प० सं० १ ८

दास्यासक्ति

माधौ यह प्रसाद हौं पाउँ ।
तव भुज भृत्य भृत्य परचारक ताको दास कहाउँ ॥
यह मन सत मोहि गुरुन बतायो स्याम धाम की पूजा ॥
यह बासना धरैं नहिं कबहूँ देवन देवी दूजा ॥
परमानन्ददास तुम ठाकुर यह नातो जीयत न छूटै ॥
नन्दकुमार जसोदा नन्दन हिलिमिलि प्रीति न टूटै ॥ प० सं० ७२८

सख्यासक्ति

भावै तोहि हरि की आनन्द केलि ।
मदन गुपाल निकट कर पाए ज्यौं भावै त्यौं खेलि ॥
कमल नैन की भुजा मनोहर अपने कंठ लै मेलि ॥
प्रेम बिबस भए सावधान हूँ छूटी अलक सकेल ॥
तरुन तमाल नन्द के नन्दन प्रिया कनक की बेली ॥
यह अपठानी दासपरमानन्द मुक्ति चायन सौं ठेली ॥ प० सं० ८२१

एक और स्थल पर —

जब नन्दलाल नयन भरि देखे।
एकटक रही सम्हार न तनकी मोहन मूरति पेखे॥
स्याम बरन पीताम्बर काछे मुख चंदन की खोर॥
कटि किंकिनी कलरव मनोहर सबद लियत चित चोर॥
कुण्डल झलक परत गंडनि पर आइ अचानक निकसे भोर॥
श्रीमुख कमल मन्द मृदु मुसकनि मद कंपि मन नन्द किशोर॥
मुक्ता माल राजत उर ऊपर चितए सखी मन हरि मोर॥
परमानन्द निरखि सोभा ब्रज बनिता डारति तृन तोर। प० सं० ११६

आत्मनिवेदनासक्ति

हरि सौं एक रस रीति रही री।
तन मन प्रान समर्पन कीनौं अपनो नेम व्रत लै निबहीरी॥
प्रथम भयो अनुराग दृष्टि सौं मानहु रंक निधि लूट लई री॥
कहति सुनति चित चोरहि लीनो मैं नयन मिल पैंड गहीरी॥
मरजादा छोलिय सबनि की लोक बेद उपहास सही री॥
परमानन्ददास गोपिन की प्रेम कथा सुक व्यास कही री॥२११॥

तन्मयासक्ति

कमल नयन बिन और न भावै।
अहनिस रसना कान्ह कान्ह रट॥
स्रवन परिक नैन भवाएं।
बिमल बदन ठाढ़ी जोवति बट॥
तुमरे दरस बिन वृथा जात है,
मेरे करम परे बंधन पट॥
नंद पौर मुख तबहि मिलहुगे।
जबहि होहिंगी पीठ सपुन लट॥
दुर्लभ भई देह पाइ सुन
और बात बिसरी मलिन भए घट॥
परमानन्द प्रभु कबहि बिसरि गयो
हमरो नेह रमन जमुना तट॥६१॥

अन्यत्र

मोहन मोहिनी पढ़ि मेली।
देखत ही तन दसा भुलानी फों घर जात अकेली।
काहे मान तात पद भाता को पति है सहेली॥
ताही गोपनाथ हर मुन जन को मर्याद कहि ठेली।
परमानन्द स्वामी बन मोहन करि मर्यादा पेली॥१०७॥

परमविरहासक्ति

जिय की साधि जिय ही रहि री ।
बहुरि गोपाल देखन नहीं पाए बिलपति कुञ्ज अहीरी ॥
इक दिन सो जु सखी यह मारग बेचन जात दहीरी ॥
प्रीति के लएँ दान मिस मोहन मेरी बाँह गहीरी ॥
बिनु देखे छिन जात कलप भरि बिरहा अनल दहीरी ॥
परमानन्द स्वामी बिनु दरसन नैननि नदी बहीरी ॥ प. सं. १४

अथवा

वह बात कमल दल नैन की ।
बार बार सुधि आवत रजनी वह दुरि देनी सैन की ॥
वह लीला वह रास सरद को मोहन रचित भावनी ॥
अब वह ऊँची टेर मनोहर मिस करि मोहि बुलावनी ॥
वे बातें सालति उर अन्तर, को पर पीरहि पावै ॥
परमानन्द कह्यो न परै कछु हियो सो रू ध्यो आवै ॥ प. सं. १११

एक अन्य स्थल पर

सुधि करत कमल दल नैन की ।
भरि भरि लेत नीर अति आतुर, रति वृन्दावन चैन की ॥
दै दै पाछे आलिंगन चितवनि सुख लता द्रुम ऐन की ॥
वे बातें कैसे कै बिसरति बांह उसीसे सैन की ॥
रति निकुञ्ज रस रास बिलास ब्यथा मनाई मैन की ॥
परमानन्द प्रभु सो क्यों जीवहि जो पोषो मृदु बैन की ॥ प. सं. ११८

हरि तेरी लीला की सुधि आवै ।
कमल नैन मन मोहन मूरति मन मन चित्र बनावै ॥
एक बार जाहि मिलत मया करि, सो कैसे बिसरावै ॥
मुख मुसकान बंक अवलोकनि चाल मनोहर भावै ॥
कबहु निबिड़ तिमिर आलिंगत कबहुक पिक सुर गावै ॥ प. सं. ११९
कबहुँक सम्भ्रम क्वासि क्वासि कहि मौनहि उठि धावै ॥
कबहुँक नैन मूँदि अन्तरगति बनिमाला पहिरावै ॥
परमानन्द प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे बिरह गँवावै ॥

नारदीय भक्ति सूत्रोक्त उपर्युक्त एकादश आसक्तियों के उदाहरणों के उपरान्त यहाँ परमानन्ददासजी के भक्ति विषयक सामान्य विचारों पर विचार किया जायगा ।

परमानन्ददास जी जहाँ एक ओर भक्ति के लिए एकान्त "गोपी भाव" की भक्ति को आदर्श रूप में स्वीकार करते हैं दूसरी ओर वे भक्ति के मर्यादा रूप अथवा उसके लोकपक्ष के निर्वाह की भी उपेक्षा नहीं करते । वे भक्ति के सामान्य साधन जैसे—नाम—माहात्म्य गुरु महिमा अनन्यता भगवान के प्रति आस्था सुसंग में अगाध विश्वास सत्संग और शरण

अनन्यता—भक्ति साधना में अनन्यता बीज तत्व है अतः इसका बड़ा भारी महत्व है। गीता में इसी को अव्यभिचारिणी भक्ति[1] कहा है। भगवान कहते हैं जो लोग मेरा अनन्य भाव से भजन करते हैं उनको मैं सुलभ हो जाता हूँ।[2]

महाप्रभु वल्लभाचार्य विवेकधैर्याश्रय ग्रन्थ में कहते हैं—

अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च।
प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत्॥ वि. धै. आ० १४

अर्थात् भक्तिपथ में और विशेष कर अनुग्रहमार्ग में अन्य का भजन अथवा कामना और सिद्धि के लिए प्रार्थना आदि वर्जित है। अतः आचार्य के शिष्य परमानन्ददासजी ने भी संप्रदाय की परम्परा के अनुकूल अनन्यता पर बहुत ही बल दिया है क्योंकि बिना अनन्यता के तन्मयता प्राप्त नहीं होती। साधना के तीनों पक्ष साधक साधन और साध्य तीनों की एकता का ही नाम तन्मयता है। अतः परमानन्ददासजी कहते हैं—

१ प्रीति तौ एक ही ठौर भली।
यह जु कहा मति चरन कमल तजि फिरैं जु गली गली॥

तथा

मोहि भावै देवाधि देवा।

*

तीन गुण देवता ब्रह्मा विष्णु अरु महादेवा॥
सब चर सारंग चराचर रूप अनुसर मानसदेवा॥ प० सं०—१९७
गोपीनाथ राधिका वल्लभ ताहि उपासै परमानन्दा॥

वस्तुतः तथ्य तो यह है कि भक्ति की गाड़ी अनन्यता और समर्पण के दो पहियों पर ही चलती है। अतः परमानन्ददासजी ने भी भक्ति साधना में समर्पण और अनन्यता की अनेक स्थलों पर चर्चा की है। अष्टछाप में अनन्यता का बड़ा महत्व है। वहाँ श्रीकृष्ण भगवान् के अतिरिक्त किसी अन्य का स्वामी और रक्षक रूप में वरण ही नहीं है।

सम्प्रदाय के प्रति आस्था—भक्ति साधना में किसी परिपाटी किंवा विशिष्ट सम्प्रदाय का अनुयायी होना आवश्यक है। यों तो सभी मार्ग उसी एक आराध्य की प्राप्ति के लिए हैं। परन्तु स्वल्प जीवन वाला मानव एक ही मार्ग का पथिक बन कर लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। अतः सम्प्रदाय गुरु के प्रति परमानन्ददासजी ने अपनी गहरी निष्ठा प्रकट की है। वे कहते हैं—

हरि अनु साधन होइ सो होई। प० सं० —११९
परमानन्ददास यह मारग बीतत राम के राज॥

---

१ मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि। गी० ११।
२ अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ ८। १४

एक और स्थान पर वे कहते हैं—

> यह मांगो जसोदा नन्द नन्दन ।
> चरन कमल मेरो मन मधुकर निशि प्रति छिन-छिन पाऊँ दरशन ।
>
> " " "
>
> नन्द नन्दन वृषभान नन्दिनी मेरे सर्वस प्राण जीवन धन ।
> ब्रज बसि मद जमुना जल पीऊँ बल्लभ कुल का दास मैं ही मन ॥
> महाप्रसाद पाऊँ हरि गुन गाऊँ परमानन्द दास दासी जन ।

एक और स्थान पर वे कहते हैं —

> यह मांगौ गोपी जन वल्लभ ।[1]
> मानुष जन्म और हरि सेवा ब्रज बसिबो दीजे मोहि सुल्लभ ॥
> श्री वल्लभ को होऊ चेरो वैष्णव जन को दास कहाऊं ॥
>
> " "
>
> परमानन्ददास यह मांगत नित निरखौ कबहूं न अघाऊं ॥ प. सं. २८७

सत्संग के प्रति श्रद्धा —

कवि ने सत्संग को भगवद् भक्ति का अनिवार्य साधन माना है। अतः भक्तों के संग के लिए वह भगवान से प्रार्थना करता है —

> यह मांगो संकर्षण वीर ।[2]
> चरन कमल अनुराग निरन्तर भावै मोहि भक्तन की भीर ॥
> सग देहो तो हरि भक्तन को बास देहो तो जमुना तीर ॥ प. सं. २८६

एक स्थान पर वह कहता है —

> श्रीजमुना यह प्रसाद हौं पाऊं ।[3]
> तुम्हरे निकट रहौं निशि वासर कृष्ण नाम गुन गाऊं ॥
>
> " "
>
> विनती करौ यहै वर मांगौं अधम संग बिसराऊं ॥ प. सं. ७८१

भागवत के प्रति श्रद्धा —

सम्प्रदाय में भागवत का बहुत बड़ा महत्त्व है। आचार्य ने अपने सिद्धान्त की प्रामाणिकता के लिए भागवत को प्रमाण चतुष्टय के अन्तर्गत रखा है।

> वेदाः श्रीकृष्ण वाक्यानि व्याससूत्राणि चैवहि ।
> समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ।[4]

---

१ परमानन्द सागर में पद संख्या २८७
२ " " २८६
३ " ७८१

४ तत्त्वदीपनिबन्ध श्लोक नं. ७

अर्थात् वेद (उपनिषद्) गीता ब्रह्मसूत्र तथा भागवत ये चारों ही प्रमाण चतुष्टय के अन्तर्गत हैं।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने तो भागवत को अपने इष्टदेव भगवान् श्रीनाथजी का स्वरूप ही माना था। भूमण्डल की परिक्रमा के अवसर पर उन्होंने सभी प्रमुख तीर्थों में जाकर भागवत के पारायण किये थे। अपने अष्टछापी दो सेवकों को भागवत और विशेष कर दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका को सुनाया था। जिन दो महानुभावों ने आचार्य से दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका का श्रवण किया था वे लीला-रस के सागर कहलाए। बाद में उन दोनों सागरों ने भागवत के लीला प्रसंगों का किस प्रकार अनुसरण किया था यह तो आगे चलकर लीला के प्रसंगों में बतलाया जायगा। किन्तु इन दोनों महानुभावों ने अपने पदों में भागवत का बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है। परमानन्ददासजी ने अनेक स्थलों में भागवत और उसके रसिक 'कीर मुनि' (शुकदेव जी) को सादर स्मरण भी किया है।

वे कहते हैं —

१ जब लग जमुना गाय गोवर्धन जब गोकुल गाम गुसाँई।
जब लग श्री भागवत कथा' तब लग कलियुग नाहीं॥

२ माधौ या घर बहुत धरी।
कहन सुनन को लीला कीनी मर्यादा न टरी॥
जो गोपिन के प्रेम न होतो तो सब भागवत पुरान॥

३ माधौ करि गई नीक सही।
साखी छाया स्याम सुन्दर की आदि अन्त निबही॥
जाको राज दियो सो अविचल मुनि भागौति कही॥

४ सेवा मदन गुपाल की मुक्ति हू ते मीठी।
जाने रसिक उपासिका शुक मुख जिन दीठी॥

५ गिरधर मुख ठाढ़ी है जु हँसि।

"

यह लीला ब्रह्मा शिव गाई नारदादि मुनि ध्यानी॥
परमानन्द बहुत सुख पायो सब शुक व्यास बखानी॥

६ जो रस रसिक कीर मुनि पायो।
सो रस रटत रटत शिव शारद शेष सहस मुख पार न पायो॥

तात्पर्य यह है कि श्रीमद्भागवत और ज्ञानी मुनि शुकदेव को परमानन्ददासजी ने भक्ति भाव से बार-बार इसीलिए स्मरण किया है कि भागवत के वक्ता भी शुद्ध भक्ति के प्रवर स्रोत हैं। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ तो भक्ति का सागर ही है। समग्र दर्शनों विशेष कर ज्ञान और योग के सम्पूर्ण सिद्धान्तों के ऊपर भक्ति मार्ग को शीर्ष स्थानीय बनाने का सम्पूर्ण श्रेय श्रीमद्भागवत ग्रन्थ को ही है। स्वयं श्रीमद्भागवत पुराण को समझने के लिए और उसका रहस्य जानने के लिए विद्वत्ता की उतनी अपेक्षा नहीं जितनी भक्ति की। "भक्त्या भागवतं ग्राह्यम्" का यही तात्पर्य है। इसी कारण समस्त धर्मों शास्त्रों सम्प्रदायों एवं भक्ति ग्रन्थों पर श्रीमद्भागवत का पूरा-पूरा प्रभाव है। श्रीमद्भागवत साक्षात् भक्ति स्रोत

है। इसीलिए संपूर्ण अष्टछापी एवं कृष्ण भक्तों ने भक्तिरूप महान् ग्रन्थ के लिए इस अनुपम ग्रन्थ को भक्ति भाव से स्मरण किया है।

सेवा :—सेवा और भक्ति में अन्योन्याश्रय है। सेवा से प्रेम (रसमयता) का उदय होता है। और उसी प्रेम के कारण सेवा बनती है। पुष्टि सम्प्रदाय सेवा पर बहुत ही महत्त्व देता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सेवा पर बहुत जोर दिया है। सम्प्रदाय का व्यवहार पक्ष जो "पुष्टि मार्ग" के नाम से अभिहित किया जाता है सर्वोपास्य सेवा पर ही निर्भर है। सेवा भक्ति के प्रथम सोपान—दैन्य की जननी है। और चित्त को केन्द्रित करने वाली है। महाप्रभु जी कहते हैं —

चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।[1]
ततः संसार दुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्म बोधनम्॥

अर्थात् "चित्त को प्रभु में पिरोना" अथवा तल्लीन कर देना ही सेवा है। और उसकी सिद्धि के लिए तनुजा (शरीर से) वित्तजा (स्वोपार्जित द्रव्य से) मन लगाकर करनी चाहिए। ऐसा करने से संसार के दुःखों से छुटकारा हो जाता है और "ब्रह्म का यथार्थ स्वरूप जानने में आता है।"

हरिरायजी कहते हैं—"सेवा तु स्वामिनो यत्समये यदपेक्षन्ते तदेव समर्पणीयम्[2] अर्थात् जिस समय प्रिय आराध्य को जो चाहिए वही समर्पण करना सेवा है। [भगवत्प्रकृति-वर्णनम्]

वस्तुतः सेवा धर्म परम गहन है। और योगियों के लिए भी अगम्य है। सेवा की इसी कठिनाई और जीव की असमर्थता की ओर लक्ष्य करके महाप्रभु जी ने स्पष्ट कहा है कि — अपने गुरुदेव की आज्ञानुसार सेवा करते रहना चाहिए, भगवदिच्छा से यदि उसमें कभी बाधा आ पड़े तो चिन्ता न करे और सर्वदा चित्त को सेवा परायण रखकर सुख पूर्वक रहे।"[3]

सम्प्रदाय के सेव्य स्वरूप —

महाप्रभु आचार्यजी स्वयं भगवान नवनीतप्रियजी के सेवक थे और भागवत के सतत स्वाध्यायी। उनके जीवन के दो कार्य थे—श्री नवनीतप्रियजी की सेवा और श्रीमद्भागवत का चिंतन। उनके ये दो कार्य गंगा की अविच्छिन्न धारा के समान अहर्निश चला करते थे। उनका सिद्धान्त था कि इन दो में से यदि एक भी अनवरत रूप से चलता रहे तो जीव की जीवन भर भगवान में दृढ़ आसक्ति रहती है और वह कभी माया को प्राप्त नहीं होता। इस सिद्धान्त के अनुसार आगे चलकर आचार्य जी के पुत्र गुसाईं जी ने भी श्रीनवनीतप्रियजी के अतिरिक्त अपने सातों पुत्रों को भगवत् सेवार्थ सात स्वरूप विरासत में दिए थे। जो आज भी उनके वंशधर के सेव्य रूप में चले आ रहे हैं। इन सात स्वरूपों के अतिरिक्त श्रीनाथजी का स्वरूप सभी का सेव्य है। इस प्रकार कुल मिलाकर ९ स्वरूप हुए। जिनका विवरण इस प्रकार है —

---

१ सिद्धान्तमुक्तावली श्लोक सं० २
२ सेवाकर्तव्यपुरोगमा भावना व टीकायाम
कृत सेवा पर लिखे निबन्ध भगवत्प्रकृति वर्णनम् श्लोक ७
३ सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिर्दृढा भवेत्
यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम ॥ भ० व० ६

१ श्रीमहाप्रभु जी के सेव्य—श्रीनाथ जी अथवा गोवर्धननाथजी वर्तमान में नाथद्वार मे।
२ श्रीमहाप्रभु जी के एवं श्रीगुसाईं जी के सेव्य श्रीनवनीत प्रियजी श्रीनाथद्वार में।
३ श्रीमथुरेशजी श्री गिरिधर जी के सेव्य जतीपुरा मे (पहले कोटा में थे)
४ श्रीविट्ठलनाथजी श्रीगोविन्दराय के सेव्य श्रीनाथद्वार मे।
५. श्रीद्वारकाधीशजी श्री बालकृष्णजी के सेव्य काकरौली में।
६ श्रीगोकुलनाथजी श्री गोकुलनाथ जी के सेव्य गोकुल मे।
७ श्रीगोकुलचन्द्रमा जी श्री रघुनाथ जी के सेव्य कामवन मे।
८ श्रीबालकृष्ण जी श्रीयदुनाथ जी के सेव्य सूरत मे।
९. श्री मदनमोहनजी श्रीघनश्याम जी के सेव्य कामवन मे।

इन नौ स्वरूपो की सेवा महाप्रभु वल्लभाचार्य के समय से आज तक यथाक्रम क्रम में चली आ रही है। महाप्रभु जी के द्वितीय पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने सेवा का बहुत ही सुन्दर क्रम निर्धारित किया था। उनके विषय मे तो प्रसिद्ध है कि —

सेवा की अद्भुत रीत।
श्री विट्ठलेश सौं राखे प्रीत ॥ (सूर-सेवाक्रम)

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने सेवा के तीन क्रम रखे थे—राग भोग और शृङ्गार। साथ ही नित्य सेवा-क्रम और वार्षिक उत्सव सेवा-क्रम। नित्य सेवा क्रम मे आठ दर्शनों का व्यवस्था की गई है। वे अष्ट दर्शन इस प्रकार है —

१ मंगला प्रातः ५ बजे से ७ तक।
२ शृङ्गार प्रात ७ से ८ तक।
३ ग्वाल प्रात ८ से ९ तक।
४ राजभोग प्रात ९ से १२ तक मध्याह्न।
५. उत्थापन—मध्याह्नोत्तर ३ ४ तक।
६ भोग—साय ५ तक।
७ सन्ध्यारति साय ६ बजे से ६ तक।
८. शयन साय ६॥ से ८ तक।

आठों दर्शन के साथ राग अथवा कीर्तन की व्यवस्था भी की गई है। अष्टसखा अपना कीर्तन सेवा के लिए प्रसिद्ध है ही। इनमें भी विशिष्ट समय पर एक-एक सखा का औसरा होता था। उसी समय पर वह मंदिर में पहुँच कर कीर्तन सेवा करता था।

ये आठों दर्शन सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा 'मन पूत' सिद्धान्त पर निर्धारित नहीं किए गए है। अपितु इनका आधार भावनानुसारी लीला भावना है। यहाँ संक्षेप में हम इन अष्ट-दर्शन की आधार भूमि लीला-भावना का संकेत कर करेंगे।

१ मंगला दर्शन —

प्रात तीन बार घंटा नाद किया जाता है। त्रिवार घंटा नाद मे त्रिगुण (सत रज तम) का संकेत है। त्रिगुणातीत परब्रह्म को निज भक्तों के कारण सगुण रूपधारी है उसे

परमानन्ददासजी में हमें भागवतोक्त षडंग सेवा-साधना भी मिलती है। श्रीमद्भागवत में सेवा के छः अंग इस प्रकार बतलाये गये हैं —

तत् तेऽर्हत्तम नम स्तुतिकर्म पूजा
कर्म स्मृतिश्चरणयो श्रवणं कथायाम् ॥
संसेवया त्वयि विनेति षडंगया किम्
भक्तिं जन परमहंसगतौ लभेत ॥ भागवत ७।९।१

अर्थात् हे पूज्य भगवान्! आपकी सेवा के छः अंग हैं।

१ नमस्कार
२ स्तुति
३ समस्त कामों का समर्पण
४ सेवा-पूजा
५ चरण कमलों का चिन्तन
६ लीला कथा का श्रवण

परमानन्ददासजी के काव्य में उपर्युक्त के षडंग सेवा निम्नलिखित प्रकार से आई है—

१ नमस्कार —चरण कमल बन्दौं जगदीश के जे गोधन संग धाए।
२ स्तुति —धन्य धन्यौ जन ताप निवारन।
३ समस्त कर्मों का समर्पण

हौं नन्द लाल बिना न रहूँ।

× × ×

मनसा वाचा और कर्मणा हित की तोसौं कहूँ।
यह मन अर्पन हरि कौं कीनौं यह सुख कहाँ लहूँ॥
परमानन्द मदन मोहन के चरण सरोज गहूँ॥

४ सेवा पूजा —

यह मांगो गोपी जन वल्लभ।
मानुष जनम और हरि सेवा ब्रज बसिबो मोहि दीजै सुल्लभ॥

५. चरन कमलो का चिन्तन :—

यह मांगों सङ्करषण बीर।
चरन कमल अनुराग निरन्तर भावै मोहि जमुन को तीर॥

६ लीला कथा का श्रवण —

श्री भागवत श्रवण सुनि नित
इन तजि चित कहूँ अनत न लाऊँ।

उपर्युक्त षडंग-सेवा-साधना के अतिरिक्त परमानन्ददासजी ने भक्ति-वृद्धि के लिए सभी साधन उपायों का अवलम्ब लिया है। उन्होंने यमुनास्तुति ब्रजस्तुति और गंगास्नान में बड़ी आस्था प्रदर्शित की है। वे कहते हैं कि —

---

१ परमानन्द सागर पद-संख्या ७२१।

५ अनोसर और उत्थापन— इसे अनोसर (अनवसर) अर्थात् 'न अन्यस्य अवसर'=अनवसर कहा जाता है। वास्तव में यह अन्यस्य सखाओं का ही समय होता है। यह ठाकुरजी के मध्याह्न-विश्राम का समय है—

क्वचित् पल्लव तल्पेषु नियुद्ध श्रमकर्षित ।
वृक्ष मूलाश्रय शेते गोपोत्सङ्गोपबर्हण ।।
पाद संवाहन चक्रु केचित्तस्य महात्मन ।
अपरे हतपाप्मानो व्यजनै समवीजयन् ।।

१ ।।१५।१६ १

६ भोग—यह सन्ध्याकालीन भगवान् का भोजन है। इसमे फलादि भी रहते हैं—
श्रीदामा नाम गोपालो राम केशवयो सखा ।
सुबल स्तोक कृष्णाद्या गोपा प्रेम्णेदमब्रुवन् ।।

फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च ।।
भवतामफलाम्यादन् मनुष्या गतसाध्वसा ।

१ ।।१५।२१-४१

तदनन्तर
जलमुपहृतं प्राश्य स्वादुस्नमुपसाशितौ ।।

१ ।।१५।४६

७ सध्यार्ति—यह समय प्रभु के वन से पधारने का होता है।
त गोरजश्छुरित कुन्तल बद्ध बर्ह ।
वन्य प्रसून रुचिरेक्षण चारुहासम् ।।
वेणु क्वणन्तमनुगैरनुगीत कीर्तिम् ।
गोप्योदिदृक्षित दृशोऽभ्यगमन् समेता ।।

१ ।।१५।४२

८ शयन सन्ध्यार्ति के उपरान्त प्रभु सुखद शैया पर पौढा दिये जाते हैं—
सविश्य वर शैयाया सुख सुषुपतुर्व्रजे ।।

१ ।।१५।४६

भागवत के आधार पर उपर्युक्त सेवा-क्रम पुष्टि सम्प्रदाय मे प्रचलित है। पुष्टिमार्ग मे नन्दगोप सुत ही परमाराध्य और सेव्य हैं। उन्ही का यह सेवा-क्रम है। व्रजभूमि मे नित्यलीला करने वाले कृष्ण की यही 'यथा देहे तथा देवे' सेवा है। अत सम्प्रदाय के सेवक विशेषकर अष्टछापी कविगण इसी सेवा क्रम को लक्ष्य मे रखकर नित्य नये अनन्त पदों की रचना करते थे। उनके पद नित्य सेवा क्रम से भी हैं और वर्षोत्सव क्रम से भी।

नित्य सेवा के पदो मे—भक्तरागानुरूप-सेवा परक पदो के साथ प्रभु की राग सेवा ही इन कवियों का लक्ष्य था।

परमानन्ददासजी ने नित्य सेवा परक अनेक पदों की रचना की है। साथ ही उनकी कीर्तन सेवा का विशिष्ट 'ओसरा' प्रात काल मंगला तथा राज भोग रहता था। फिर भी नित्य सेवा के उनके कतिपय कीर्तन इस प्रकार है—

१ महाप्रभु वल्लभ स्मरण—

प्रात समय उठि करिए श्री लछमन सुत गान।

२ यमुना जी के पद—

परमानन्ददासजी ने यमुनाजी पर अनेक पद लिखे है।[1]

३ मंगल मंगल का अनुसरण—

१—मंगल माधो नाम उचार।
२—मंगल मंगल व्रज भुवि मंगल॥

४ जगायबे के पद
५ कलेऊ के पद।
६ खण्डिता के पद।
७ शृ गार के पद।
८ ग्वाल के पद।
९ पनघट के पद।

१ राजभोग के पद —छाक के पद और शीतकाल के मंगल-भोग। भोग सरवे के पद बीरी के पद फूल-मंडली के पद।

११ आरती के पद।
१२ अनोसर और उत्थापन के पद।
१३ भोगनी के पद।
१४ भोग (ब्यारू) के पद बीरी के पद दूध (बैया) के पद।
१५ पौढायबे के पद, शयन समय के पद बधाई के पद।

नित्य सेवा विषयक कीर्तन सेवा में अनवरत सावधान रहकर परमानन्ददासजी ने सेवा की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए उसे मुक्ति से भी अधिक मधुर बतलाया है

१ सेवा मदन गुपाल की मुक्ति हू ते मीठी—प सा ७२२
२ ताते गोविंद नाम लै गुण गावी चाही।

× × ×

चरण कमल हित प्रीति करि सेवा निरवाही।
१ यह वाणी कठोरतानन्द। ३

× × ×

चरन कमल की सेवा दीजे बोध वन राजत विपुलता धन॥

---

१ इसी-परमानन्द सागर 'नित्य सेवा पदों का क्रम—लेखक द्वारा सम्पादित।

परमानन्ददासजी मे हमें भागवतोक्त षडंग सेवा-साधना भी मिलती है। श्रीमद्भागवत में सेवा के छः अंग इस प्रकार बतलाये गये हैं —

तत् तेऽर्हत्तम नमः स्तुतिकर्म पूजा
कर्म स्मृतिश्चरणयो श्रवणं कथायाम् ॥
संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किम्
भक्ति जनः परमहंसगतौ लभेत ॥ भागवत ७।९।५०

अर्थात् हे पूज्य भगवान्! आपकी सेवा के छः अंग हैं।

१ नमस्कार
२ स्तुति
३ समस्त कर्मों का समर्पण
४ सेवा-पूजा
५ चरण कमलों का चिन्तन
६ लीला कथा का श्रवण

परमानन्ददासजी के काव्य में उपर्युक्त के षडंग सेवा निम्नलिखित प्रकार से आई है—

१ नमस्कार —चरण कमल बन्दौ जगदीस के जे गोधन संग धाए।
२ स्तुति —परम धरयौ तन ताप निवारन।
३ समस्त कर्मों का समर्पण

हौं नन्द लाल बिना न रहूँ।
× × ×
मनसा वाचा और कर्मणा हित की बातें कहूँ।
यह तन अर्पन हरि कों कीनों यह सुख कहाँ लहूँ ॥
परमानन्द मदन मोहन के चरण सरोज गहूँ ॥

४ सेवा पूजा —

यह माँगौ गोपी जन वल्लभ।
मानुष जनम और हरि सेवा ब्रज बसिबो मोहि दीजै सुल्लभ ॥

५ चरन कमलो का चिन्तन :—

यह माँगौं संकरषण बीर।
चरन कमल अनुराग निरन्तर भावै मोहि भक्तन की भीर ॥

६ लीला कथा का श्रवण —

श्री भागवत श्रवण सुनि नित
इन तजि चित कहूँ अनत न लावें।

उपर्युक्त षडंग-सेवा-साधना के अतिरिक्त परमानन्ददासजी ने भक्ति-वृद्धि के लिए अन्य सहज उपायों का प्रचलन किया है। उन्होंने यमुनास्तुति गंगास्तुति और ब्रजवास मे बड़ी आस्था प्रदर्शित की है। वे कहते हैं कि —

१ परमानन्द सागर से—पद संख्या ८८२।

बेनु बजावत गावत गावत यह विनोद सुख सार को।
परमानन्ददास की जीवनि रास परिग्रह सार को।

कृष्ण भक्ति के ऐसे अनेक उदाहरण कवि के काव्य में मिलते हैं। तात्पर्य यह है कि पुष्टि भक्ति के क्रमिक विकास का इतिहास ही परमानन्ददासजी के पदों का रहस्य है जिससे उनकी पुष्टिमार्गीय भक्ति का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

तथ्य तो यह है कि परमानन्ददासजी भक्त पहले हैं बाद में और कुछ। दर्शन उन जैसे भक्तों का क्षेत्र नहीं था अत: उनमें दार्शनिक तत्वों का सांगोपांग निरूपण खोजना व्यर्थ होगा। काव्य रचना भी उनका उद्देश्य नहीं था। एकान्त भक्ति की भावुकता विह्वलता और प्रेमोन्माद में उनके मुख से जो भी निकला वही काव्य बन गया। वह सब भक्ति प्रधान है। उनके भक्ति भाव परक पदों में संगीत और काव्य गुण तो आज्ञानुसारी भृत्यों की भांति पीछे लग गये मात्र हैं। उनमें न तो सूर जैसी सर्वांग-पूर्णता है न तुलसी जैसा मर्यादा-पालन न नन्ददास जैसा दर्शन-प्रेम। उनमें मीरा जैसा गोपी भाव है जो अद्भुत माधुर्य से ओत प्रोत है। जिसकी तुलना अन्यत्र करना कठिन है। अतः अपने में तन्मय रहने वाले परमानन्ददासजी एकान्त भावुक भक्तों की अग्रतम कोटि में ही रखे जा सकते हैं।

---

२ लीला रसात्मक है आनन्दात्मक है।
लीला अपने में पूर्ण निरपेक्ष और स्वतन्त्र है।
३ लीला का कोई भिन्न कारण नहीं। वह नितान्त प्रभु इच्छा है।

४ लीला और भक्ति अथवा प्रेम में परस्पर गहरा संबंध है। अर्थात् लीला में परमासक्ति ही परम प्रेम है। लीला रस और भक्ति अपने अंतिम बिन्दु पर एक हैं। आगे चलकर आचार्य द्विवेदी 'लीला' के हेतु की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं :—

"यद्यपि अवतार का हेतु एक यह भी है कि धर्म की ग्लानि और अधर्म के अभ्युत्थान को भगवान् स्वयं आविर्भूत होकर दूर करें परन्तु मुख्य कारण तो भक्तों के लिए लीला का विस्तार ही है।[१]

आचार्य द्विवेदी जी के कथन की पुष्टि करते हुए हम सम्प्रदाय के मार्मिक विद्वान् श्रीचीमनलाल शास्त्री का मत भी प्रस्तुत करते हैं — प्रभु पोताना लीला भक्तोने माटे करेछे। आ प्रमेय मार्ग छे। कृपा-साध्य मार्ग मां प्रभु पोताना भक्त ने तामस राजस सात्विक भाव दूर करी निर्गुण केवी रीते करेछे तेते विचारिए। निर्गुणत्व पछीज फल मलेछे।

अर्थात् भगवान अपनी लीला भक्तों के लिए ही करते हैं। यह प्रमेय मार्ग है। अनुग्रह साध्य मार्ग में भगवान् अपने भक्त के तामस राजस सात्विक भाव दूर करके उनको निर्गुण कैसे बना देते हैं इसका विचार करिए। क्योंकि निर्गुणत्व प्राप्त होने पर ही फल मिलता है।"

उपर्युक्त दोनों विद्वानों के कथनों का तात्पर्य यही है कि लीला भक्तों के लिए है। और भक्तों में भी भक्ति के एकान्त-रागानुगा स्वरूप के स्थिरीकरण के लिए है। लीला का और कोई लक्ष्य नहीं है। न कोई अन्य प्रयोजन।

लीला की परिभाषा देते हुए श्रीसुबोध रत्नाकरकार ने लिखा है कि बिना आयास के उत्साह से की गई चेष्टा का नाम लीला है।[२] एक दूसरे स्थान पर लीला को "कैवल्य" का स्वरूप बतलाया गया है।[३]

लीला वस्तुतः भक्तों को लय करने के लिए है। उसका रस लय पर्यन्त पान करने योग्य है 'पिबत भागवतं रसमालयम्'। पहिले कहा जा चुका है कि श्रीमद्भागवत के १२ स्कंधों के विषय क्रमशः विसर्ग अधिकारी तथा सर्ग विसर्ग स्थान पोषण ऊति मन्वन्तर ईशानुकथा। निरोध मुक्ति तथा आश्रय है। इस क्रम से भगवल्लीला वाला दशम स्कंध "निरोध" विषयक है। इसका तात्पर्य है कि "भगवल्लीला" का उद्देश्य भक्तों का निरोध है। "निरोध" वाले दशम स्कंध के ७ अध्याय (क्योंकि वस्त्र हरण वाले तीन अध्याय महाप्रभु वल्लभाचार्य प्रक्षिप्त मानते हैं) पांच प्रकरणों में विभाजित हैं। उनमें भी प्रारम्भ के ५ वें अध्याय से ३२ वें अध्याय तक अर्थात् कुल २ अध्याय तामस प्रकरण के हैं

---

१ पुष्टि मार्गीय सिद्धान्त पृष्ठ ११
२ "अनायासेन हर्षात्क्रियमाणा चेष्टा वा सा लीला" श्री सुबोध रत्नाकर कारिका मण्डल [पृष्ठ—]
३ "लीलामेव कैवल्यम्।"

तामसप्रकरण की लीलाएँ भी इसी प्रकार विभक्त हैं —

१ प्रमेयलीला [प्रमाण] :—अध्याय ५ से ११ तक :—नन्द-महोत्सव पूतनावध शकटासुर, तृणावर्तवध उलूखललीला यमलार्जुनउद्धार, वत्सासुर—बकासुरउद्धार।

२ आसक्ति लीला [प्रमेय] —अध्याय १२ से १८ तक :—धेनुकासुर-वध कालीनागमर्दन दावानलपान प्रलम्बासुरवध वेणुवादन।

[वस्त्रहरण के १९, २० २१ अध्याय महाप्रभु जी के मत से प्रक्षिप्त हैं]

३ व्यसन लीला [साधन] :—अध्याय २२ से २५ तक अथवा २८ तक — वस्त्रहरणलीला विप्रपत्नियों पर अनुग्रह, गोवर्धनलीला वरुणलोक से नन्दराय जी का प्रत्यागमन गोपियों को वैकुण्ठ दर्शन।

४ फल लीला —अध्याय २६ से ३२ अथवा ३५ तक रास लीला से युगल गीत तक के प्रसंग इन्हीं चारों प्रकरणों को प्रमाण प्रमेय साधन और फल भी कहा जाता है।

तामस प्रकरण के नामकरण का कारण —

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने सुबोधिनी के ऊपर अपना टिप्पण देते हुए विशेष प्रकाश डाला है। उनका तात्पर्य है कि भक्ति-मार्ग का मुख्य सिद्धान्त है कि भगवान् पुरुषोत्तम ही एकमात्र फल हैं। इन्हीं के सम्बन्ध से अन्यत्र भी फल प्राप्ति की बात कही गई है। यह पुरुषोत्तम रूपी फल प्राप्ति 'भाव' से ही होती है। उस भाव के लिए भावानुसार ही कार्य होते हैं अतः विविध जीवों में जो सात्त्विक जीव हैं वे ज्ञान मार्ग की ओर झुके हुए होते हैं। अतः ज्ञान विहित मार्ग में रुचि रखते हैं। उनमें स्नेह का अभाव होता है। राजस प्रकृति वाले कर्मों की ओर रुचि रखते हुए लौकिक कर्मों में भी आसक्ति रखते हैं। अतः उनके चित्त में विक्षेप बना रहता है। और चित्त में स्थिरता नहीं होती। किन्तु जो तामस भक्त हैं उनमें ज्ञानादि का अभाव रहता है। वे एक प्रकार से मुग्ध होते हैं। लौकिक में वे मूढ़ होते हैं अपनी बात के आग्रह के सिवाय वे कुछ समझते ही नहीं। अतः ऐसे तामस भक्तों के हृदय में भगवान के लिए सहज स्नेह होता है। उन पर बाह्य प्रभाव नहीं होता। ज्ञानियों की भाँति उनके चित्त में चञ्चलता भी नहीं होती। न उनकी भाँति वे तर्क-वितर्क के भ्रम में फँसे होते हैं। अतः उनके भाव सरल सहज और शुद्ध होते हैं। ऐसे भक्तों को निरोध सिद्धि एकदम हो जाती है। वे अपने परमाराध्य श्रीकृष्ण के बिना और कुछ जानते नहीं। अत अपने हृदय का निखिल प्रेमोन्माद प्रभु के चरणों में न्यौछावर वे निश्चिन्त हो जाते हैं। उनके निरोध मार्ग में कोई अन्तराय नहीं आता है। यदि कदाचित् किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित हो भी जाय तो वह भगवत् कृपा से स्वयमेव हट जाता है। और उन्हें निरोध-सिद्धि में कोई कठिनाई नहीं होती।

ब्रज भक्त तामस भक्त थे। उनके भाव इतने दृढ़ थे कि सिवाय भगवान् के उन्हें अन्य कोई बात सुहाती ही न थी। प्रभु ही उनका धर्म प्रभु ही उनका अर्थ प्रभु ही उनका काम और प्रभु ही उनका मोक्ष था। प्रभु के अतिरिक्त उन्हें न स्वर्ग की कामना थी न

गोक्ष की न किसी अन्य ऐश्वर्य की। मुक्ति की तो उन्होंने पद-पद पर निन्दा की है। "मुकुति निरादरि भगति लुभाने" वाले सिद्धान्त वादी वे भक्त-स्वर्ग अपवर्ग और मुक्ति को भगवत्प्रेम के आगे तुच्छ गिनते थे।[1] ये सब भक्त निर्गुण और निस्साधन थे। पुष्टिमार्ग मे साधन होते भी नहीं। मर्यादा मार्ग मे साधनो का बल होता है। अत श्रीमद्भागवत की तामस प्रकरण की लीला निर्गुणमार्ग की पुष्टि भक्ति की लीला है। यही समझना चाहिए।

लीला रहस्य —आचार्य ने भगवल्लीला के पूतनावधादि समस्त प्रकरणो के आध्यात्मिक रहस्यो को भी स्पष्ट किया है। जैसे पूतना को आपने 'अविद्या[2]' का नाम दिया है। अत भगवान् का प्राकट्य ही भक्तो को आनन्द देने के लिए और निरोध भक्तो की सिद्धि के लिए ही है। आनन्द का दान तथा निरोध पचपर्वा अविद्या की निवृत्ति के बिना संभव नही अत सब प्रथम अविद्या रूप पूतना का ही उन्होने प्राण हरण किया था।[3]

यह निरोध भी तीन प्रकार का है—[4]

१ वाचिक

२ कायिक

३ मानसिक

पूतनावध वाचिक निरोध है। शकटासुर वध कायिक और तृणावर्त-वध मानसिक निरोध है।[5]

इसी प्रकार भगवान ने मृत्तिका भक्षण द्वारा स्वमाहात्म्यज्ञान कराते हुए माता का मोह-नाश उलूखल लीला द्वारा मदनाश वत्सासुर वध द्वारा आसुर भाव का समूलोच्छेदन करते हुए लोभ तथा मद का नाश किया है।[6]

तात्पर्य यह कि समस्त दशमस्कंधीय लीलाओं का लक्ष्य निरोध सिद्धि और आनन्द सिद्धि के ही लिए है। यही भगवल्लीला रहस्य है। ये समस्त लीलाएँ त्रिधा विभक्त हैं। स्नेह लीलाओं के उपरान्त आसक्ति लीलाएँ और उसके उपरान्त व्यसन लीलाएँ आती हैं। प्रारम्भ में भगवान् के प्रति वात्सल्यभाव तदुपरान्त सख्य भाव फिर माधुर्य भाव अथवा कान्ताभाव। यही भाव भक्ति का क्रम है। पुरुषोत्तम प्राप्ति ही फल है। अत कान्ताभाव ही उत्तमोत्तम

---

१ न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योग सिद्धीरपुनर्भवं वा सामंजस्यत्वाविरहय्य कांक्षे॥ [भाग ६।११।२५]

२ अविद्या पूतना यस्य जन्ममात्रान्निरोधिता। तस्मै नमः प्रकटाय भगवते

३ भगवान्भक्तानामानन्ददानाय निरोधार्थं च प्रकट तत्तु भगवमपि पंचपर्वाविद्यानिवृत्तिर्विनाश संभवतीति प्रथममविद्यारूपा पूतनैव मारिता [टीका-त्रिविध नामावली]

४ वाचिकं कायिकं चोक्तं मानसं तृणावर्तवधेन-सुबोधिनी कारिका द०भाग

५ शकट भंगे भगवदर्थं कायिक व्यापारो यतः।
गोकुलं सम्भ्रान्तमन्विततथा करैत् तृणावर्त गमने सति दवाग्निसमे भगवद्दर्शनेन मनो भक्तनिवेश्यतीति मानसो निरोधोऽभूत्।

६ मृद्भक्षणं यथा वत्स मुखो लोभोद्भव कृतो। टी०—त्रिविध नामावली पृष्ठ ११

भाव है। अष्टछाप के कवियों में इसी वात्सल्य भाव तक प्रायः अपने काव्य को केन्द्रित रखा। उत्तरोत्तर भाव-वृद्धि इस बात की द्योतक है कि उनका लक्ष्य इस वात्सल्य भाव की ओर ही था।

परमानन्ददासजीके लीला विषयक पदः—

आचार्य से दशमस्कन्धीय अनुक्रमणिका सुनने के उपरान्त परमानन्ददासजी ने उन्हीं लीलाप्रसंगों को लेकर जो पद रचना की और इस प्रकार "लक्षावधि" पद बनाकर उन्होंने भगवान् नवनीतप्रियजी और तदुपरान्त श्री गोवर्धननाथजी की कीर्तन सेवा की। अतः उन्होंने अपने लीलापरकपदोंमे श्रीमद्भागवत का और विशेष कर दशमस्कन्ध का ही अनुसरण किया है। सूरदासजी की भाँति परमानन्ददासजी के परमानन्दसागर का स्कंधात्मक अनुसरण उपलब्ध नहीं होता। मुख्य रूप से वे दशमस्कन्ध और उसमें भी पूर्वार्द्ध तक ही सीमित रहे हैं। अतः परमानन्ददासजी का भगवल्लीला वर्णन उद्देश्य "निरोध सिद्धि" ही था। अन्य कुछ नहीं। उन्होंने परब्रह्म के अवतार का हेतु भक्त कल्याण ही माना है परन्तु लोक कल्याण को भी उन्होंने महत्त्व दिया है त्रिभुवन नायक कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ कमलापति विष्णु जो क्षीर समुद्रवासी हैं वही पूर्ण पुरुषोत्तम ब्रह्मा इत्यादि देवताओं की प्रार्थना पर ब्रज में वसुधा भार उतारने के लिए अवतीर्ण हुआ है —

"हो गोविन्द तिहारे बालक। १

....

....

ब्रह्मा महादेव इन्द्रादिक विनती करि यहाँ आये।

परमानन्ददास को ठाकुर बहुत पुण्य तप के फल पाये। प. सं. ७

तात्पर्य यह कि परमानन्ददासजी के आराध्य-नायक पूर्ण पुरुषोत्तम लीला-नायक परब्रह्म हैं। जो व्यापि वैकुण्ठवासी शेषशायी और समुद्रवासी भी हैं और विष्णु के अवतारी भी हैं। जो अपने चारों कर कमलों में शंख चक्र गदा पद्म धारण किये हुए हैं—

पद्म धर्यो जन ताप निवारन।

....

....

दीनानाथ दयाल जगत गुरु आरति हरन भक्त चिन्तामनि।

परमानन्ददास को ठाकुर पीवर मो प्यारो नित। प. सं. ११

कवि ने यहाँ उस चतुर्भुज विष्णु भगवानकी ओर संकेत किया है जिसने कारागार में वसुदेव देवकीको दर्शन दिए थे भागवतानुसार लिखते हैं—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं।
चतुर्भुजं शङ्ख गदार्युदायुधम्॥
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं।
पीताम्बरं सान्द्र पयोदसौभगम्॥ भाग १ ।३।९

परमानन्दसागर

परमानन्द प्रभु प्रेम बानि कै छमकि कंचुकी छोली।

श्रीमद्भागवत

पार्श्वस्थाच्युत हस्ताब्जं श्रान्ताधात्स्तनयो: शिवम्। १०। ३३। १४

परमानन्दसागर

कंठ बाहु धरि अधर पान दै प्रमुदित लेत बिहार को।

अन्यत्र

बाहुँ कंठ परिरंभन चुम्बन महा महोत्सव रास बिलास।
सुर बिमान सब कौतुक भूले कृष्ण केलि परमानन्ददास।

श्रीमद्भागवत

तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम्।
चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह। १०। ३३। १२

परमानन्दसागर

चंचल मिलत सरस ब्रज चंचल देखत मदन महीपति भूल।
बाहु कंठ परिरंभन चुम्बन महामहोत्सव रास बिलास॥

श्रीमद्भागवत

चंदनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह। १०। ३३। १२

वस्तुतः परमानन्ददासजी के लीला पदों की सीमा भगवान् के ८ व वर्ष तक ही सीमित है। ५ वें से ७ वें वर्ष तक की लीलाओ की तो इतनी पुनरावृत्ति मिलती है कि जिसके कारण उन्हें बाल और पौगण्ड अवस्था का श्रेष्ठ कवि माना जाता है। भक्तवर नाभादास जी ने उन्हें बाल और पौगण्ड अवस्था का विशेष कवि कह कर ही अपने भक्तमाल मे प्रख्यात किया है —

ब्रजबधू रीति कलियुग बिये परमानन्द भयो प्रेम केत।
पौगण्ड बाल किशोर गोप लीला सब गाई।
ब्रज बधू रीति कलियुग बिषै परमानन्द भयो प्रेम केत। भ म प्र०—५५१

तात्पर्य यह कि पौगण्ड। बाल और किशोर लीला के अनन्य गायक परमानन्ददासजी ने श्रीमद्भागवत के इन श्लोक-सूत्रो के आधार पर अपने लीलासागर-परमानन्दसागर मे अगत पदों की उद्भावना [भले ही वे आज उपलब्ध न हों] की है। आज कुछ ही प्रतिनिधि-पदो के आधार पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनका काव्य विषय ही ब्रजलीला था। उनका ब्रज-नित्य ब्रज है। गोवर्धन नित्य गोवर्धन है। लीला नित्य लीला है। जिसे वे आजीवन गाते रहे। वियोगी हरि के शब्दों मे वे ब्रजलीला प्रेमी थे—

ब्रज लीलामृत रसिक अथिर पद रचना नेमी।
गिरिधारन श्रीनाथ सखा अस्तन पद प्रेमी।

श्रीमद्भागवत
करो मैं वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा यथं च मः ।

भागवत से निरपेक्षता—उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों में परमानन्दसागर और श्रीमद्भागवत में परस्पर लीला-साम्य दिखलाया गया है। परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि परमानन्दसागर श्रीमद्भागवत की छाया मात्र है। परमानन्दसागर में तीनों ही प्रकार की लीलाओं-बाल किशोर और पौगण्ड में कवि की अनेक मौलिक कल्पनाएँ भी हैं। इसके अतिरिक्त राधाष्टमी के पद दानलीला अटारी के पद मान के पद पविता राखी बधाई दशहरा धनतेरस रूपचतुर्दशी देवोत्थापिनी भोगी सक्रान्ति मकरसंक्रान्ति वसन्तोत्सव होरी धमार चाचर संवत्सर, रामनवमी अक्षय तृतीया स्नान यात्रा फूलमंडली आदि प्रसंगों के पद उनकी मौलिक उद्भावनाओं के उत्तम उदाहरण हैं। भागवत मे उक्त प्रसंगों की चर्चा नहीं। ये अन्य पुराणसंहितादि के आधार पर हैं।

इसके अतिरिक्त महाप्रभु वल्लभाचार्य का स्मरण गुसाईंजी की बधाई आत्मनिवेदन राग भोग शृङ्गार ग्वाल खंडिता हिलग आदि के पद भी उनके स्वतंत्र प्रसंग हैं।

मथुरागमन कंस-वध उद्धवागमन आदि यद्यपि श्रीमद्भागवत के ही प्रसंग हैं तथापि इनमे कवि की मौलिक कल्पना देखने योग्य है। सूर की भाँति अष्टछाप परमानन्ददासजी ने भ्रमरगीत तथा स्वीय दैन्य परक पदो मे हृदय निकाल कर रख दिया। यद्यपि परमानन्ददासजी का भ्रमरगीत सूर की अपेक्षा अत्यन्त संक्षिप्त है।[१] फिर भी विरह की चरम अनुभूति मे जो निर्वेद पूर्ण दयनीय दशा हो जाती है उसकी अभिव्यक्ति मे उच्चकोटि का कौशल दिखलाया गया है। तात्पर्य यह कि परमानन्ददासजी ने यद्यपि भागवत का अनुसरण किया है तथापि अपनी मौलिकता उन्होंने सर्वत्र सुरक्षित रखी है। सूर की भाँति वे अपने काव्यक्षेत्र मे पूर्ण स्वतंत्र एवं निरपेक्ष रहे हैं। वस्तु का उन्होंने कविसुलभ-मौलिक-अधिकार के साथ उपयोग किया है।

परमानन्ददासजी के भ्रमरगीत परक पदों से भागवत का साम्य प्रायः नहीं के बराबर है इसके अतिरिक्त परमानन्ददासजी ने पुष्टिमार्गीय परंपरानुसार राधा को स्वकीया माना है। राधा की उन्होंने स्थान-स्थान पर चर्चा की है। किन्तु श्रीमद्भागवत में राधा की स्पष्ट चर्चा उपलब्ध नहीं होती।

अनयाराधितोनूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नोविहाय गोविन्द प्रीतो यामनयद् रहः ॥ भा १ ।३ ।२८

विद्वानों ने इस श्लोक से भागवत मे राधिका के संकेत की कल्पना करली है। परन्तु वस्तुतः राधा का स्पष्ट उल्लेख भागवत में नहीं है। परमानन्ददासजी ने राधाको भगवान् की आधा

१ [अष्टछापकालीन परमानन्ददासजी विप्रलम्भ अथवा संयोग—शृङ्गार के ही मुख्य कवि हैं जब कि सूर विप्रलम्भ के—लेखक]

रसात्मा रसेश श्रीकृष्ण की सहचरियों एवं स्वामिनियों—ललिता चंद्रावलि राधा आदि की चर्चा उन्होंने भागवत से पृथक् स्वतन्त्र होकर की है। इसी प्रकार खंडिता आदि के पद दानलीला के पद परमानन्ददासजी मौलिक उद्भावनाएँ हैं। इनमे परमानन्ददासजी की भाव प्रवणता सरसता तथा आध्यात्मिकता का अच्छा परिचय मिलता है। गोपी-प्रेम तो कवि का सर्वस्व और उसकी अपनी ही वस्तु है। सर्वत्र वही स्वरूपासक्ति वही आत्म समर्पण भावना और वही आराध्य के प्रति पूर्ण विनियोग। परमानन्दसागर मे राधा-कृष्ण प्रेम के सरस मधुर प्रसंग इतने लौकिक पुट मे चित्रित हुए हैं कि उन्हे लोक-दृष्टि भक्ति क्षेत्र मे ले जाते हुए संकोच करती है और अश्लीलता का आरोप करती है परन्तु यह कवि की एकान्त भावना और सम्प्रदाय की कठोर भक्ति पद्धति का अनुसरण है।

परमानन्ददासजी ने भागवत के बहुत से प्रसंगो का ग्रहण नहीं किया है। जैसे नन्द हरण वत्सहरण धेनुक वधादि के प्रसंग। वेणु अथवा मुरली को कवि ने सूर की भाँति स्वतन्त्र रूप से लिया है। किन्तु सूर की तरह न तो उसे सौतिया रूप दिया है न ही उसे नाद ब्रह्म का प्रतीक माना है। वेणु अथवा मुरली प्रसंग मे भी गोपी-प्रेम की उत्कृष्टता और कृष्ण का भुवन मोहन रूप का ही प्रतिपादन कवि का लक्ष्य रहा है।

रास हिंडोले आदि के प्रसंगो मे भी परमानन्ददासजी के स्वतन्त्र प्रसंग हैं। यह प्रसंग इतने सरस मधुर और जन-मानस के लिए मोहक हैं कि पाठक भाव-विभोर होकर कुछ क्षणों के लिए उनका परब्रह्ममाहात्म्य भूल जाता है।

परमानन्दसागर का मथुरा-गमन प्रसंग तथा व्रज मे उद्धवागमन भागवत के अनुसार होकर भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। यह प्रसंग परमानन्ददासजीने संक्षिप्त ही रखा है। बस इसके उपरान्त कवि के उपलब्ध सागर मे दशमस्कंध के उत्तरार्ध की लीलाएँ नहीं मिलती।

तात्पर्य इतना ही कि यदि परमानन्ददासागर और श्रीमद्भागवत की तुलना की जाय तो हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं —

१ परमानन्दसागर स्वतन्त्र भागवत निरपेक्ष गेयशैली मे लिखा हुआ होकर भी दशमस्कंध की लीला प्रधान वस्तु पर आधारित है।

२ उसमे कथात्मक पद्धति का अभाव है।

३ परमानन्दसागर मे श्रीकृष्ण की बाल पौगण्ड किशोर लीलाओ की चर्चा है।

४ उसमें अन्य पुराणो का श्रीकृष्णाख्यान तो है पर अन्य कथाओं का अभाव है।

५. परमानन्दसागर में जो यत्किंचित् प्रबन्धात्मकता है वह श्रीकृष्ण लीलाओं को लेकर ही है।

६. परमानन्दसागर में सम्पूर्ण लीलाओं को दार्शनिक क्षेत्र में घसीटने का व्यर्थ प्रयास नहीं।

७. भागवत से जो प्रसंग कवि ने लिये हैं उन्हें ज्यों का त्यों लेकर उनमें अपनी मौलिकता और माधुर्य को लाने की सफल चेष्टा की है।

८. कवि का मन भागवत के दशमस्कन्ध और उसमें भी पूर्वार्द्ध के मुख्य प्रसंगों में ही रमा है। अन्य स्कन्धों को कवि ने छुआ तक नहीं।

९. रामनौमी नरसिंह जयन्ती वामनजयन्ती आदि प्रसंग भागवत के आधार पर अवतार हैं। परन्तु कवि की दृष्टि उन पर इसलिए गयी है कि सम्प्रदाय में ये जयन्तियाँ महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि परमानन्दसागर भी सूरसागर की भाँति भागवत निरपेक्ष नहीं है।

यह रसात्मा शिव पुरुषोत्तम रूपवान होकर भी अनन्त शक्ति सम्पन्न अप्राकृत नित्यानन्द रूप लोक-वेदातीत अपने व्यूहों से युक्त होकर वसुदेवके घर में उत्पन्न हुआ। यह रसेश श्रीकृष्ण लौकिक इन्द्रियादिकों से ग्राह्य नहीं। उसे प्रत्यक्ष करनेवाली इन्द्रियाँ अलौकिक होनी चाहिये। अतः व्रज सीमान्तनियों अथवा गोपीजनों में भगवान् के साथ जो रसात्मक संयोग किया वह भावात्मक संयोग है। श्रीकृष्ण मात्र स्थित रस स्वरूप है। इस प्रकार संप्रदाय में श्रीकृष्ण साक्षात् पुरुषोत्तम हैं। पुरुषोत्तम के तीन रूप हैं।

१ आधिभौतिक-नारायण लक्ष्मीपति (क्षरस्वरूप)।

२ आध्यात्मिक-अक्षर ब्रह्म।

३ आधिदैविक-पुरुषोत्तम।

पश्चात् श्रीकृष्ण विषयक साम्प्रदायिक मान्यता के आधार पर यदि हम परमानन्द दासजीके वर्णित श्रीकृष्ण पर विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि उनके श्रीकृष्ण सम्प्रदाया-नुकूल रसात्मा रसेश भावनिधि परम कारुणिक लोकवेदातीत शृंगाररूप गोपीजन वल्लभ भक्तप्रिय आनन्दरूप भावात्मा कृष्ण हैं जो पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं और निर्गुणलीला नायक हैं:—

१ तो गोविंद तिहारे बालक।

प्रकट भए घनस्याम मनोहर धरें रूप अनुकूल लायक।
कमलापति त्रिभुवन नायक सुखद चतुर्दश पति हैं सोई।
जगपति प्रलय काल को करता जाके किये सब कछु होई।
सुनो नन्द उपनन्द तथा यह आयो छीर समुद्र को वासी।
वसुधा भार उतारन कारन प्रगट ब्रह्म वैकुण्ठ निवासी।
ब्रह्म महादेव इन्द्रादिक विनती करि यहाँ आये।
परमानन्ददास को ठाकुर बहुत पुण्य तप के तुम पाये।

प्रस्तुत पद में परमानन्ददासजीने उसी परब्रह्म त्रिभुवन चतुर्दश नायक क्षीरसागर में निवासी की चर्चा की है जो वैकुण्ठ में भी रहता है। वही भूभार उतारने के लिए व्रज में अवतरित हुआ है। परमानन्ददास का ठाकुर वही है

"प्रगट भए हरि श्रीगोकुल में।

परमानन्ददास को ठाकुर प्रगटे नन्द यशोदा के गृह में'

अवतार लेकर भी वह अजन्मा है।

नन्द महोत्सव हो बड़ कीजै।

....

बाजो बाजो करो बधाई अजजनम जनम हरि लीनों।
यह अवतार बाल लीला रस परमानन्द ही दीनो।

श्रीकृष्ण विषयक साम्प्रदायिक भावना का यह स्वरूप निर्गुण भागवत में चित्रित श्रीकृष्ण के अनुसार ही है। अतः भागवत के अवतारी कृष्ण और पुष्टि संप्रदाय में मान्य लीलानायक कृष्ण में कोई तात्विक अथवा मौलिक अन्तर नहीं।

है कि राधा के संबंध मे कवि ने ब्रह्मवैवर्त पद्मपुराणादि का समन्वय किया है। उधर सूर काव्य के अध्येताओं ने सूर की राधा विषयक कल्पना उनकी अपनी विशेषता बतलाई है। पाश्चात्य विद्वानो ने राधा विषयक कल्पना ईस्वी शताब्दी के बाद की बतलाई है। क्योंकि वेदो तक राधा का नाम घसीटना अनेक विद्वानो को मान्य नही। इस विषय में डा हरवंशलाल शर्मा लिखते है— यद्यपि पौराणिक पंडित राधा का संबंध वेदो से लगाते है परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणो के अभाव में कृष्ण की प्रेमिका राधिका को वेदो तक घसीटना असंगत ही प्रतीत होता है। गोपाल कृष्ण की कथाओ से पूर्ण भागवत हरिवंश और विष्णुपुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों मे राधा का अनुल्लेख अनेक प्रकार के सन्देहो को जन्म देता है। गोपालतापिनी नारद पंचरात्र तथा कपिल पंचरात्र आदि ग्रन्थ इस विषय मे प्रामाणिक नही कहे जा सकते। क्योंकि वे बहुत बाद की रचनाए है। राधा कृष्ण का उल्लेख हाल की गाथा सप्तशती में है। पद्मपुराण मे भी राधा का उल्लेख है।[1] आदि। इस प्रकार डा शर्मा राधा की कल्पना को बहुत परवर्ती मानते है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के उत्तर खण्ड मे राधा का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

डा हजारीप्रसाद द्विवेदी ने राधा को भागवत सम्प्रदायके पुनरुत्थान युग १४ वी शताब्दी की कल्पना मानकर उनकी भावात्मक सत्ता मानी है। डा शर्मा का निष्कर्ष है कि राधा की भावात्मक सत्ता ब्रह्मवैवर्त से पहिले से चली आ रही थी और ब्रह्मवैवर्त पुराण तक आते-आते उस पर धार्मिक छाप लगादी गई।[2] सूर से पूर्व राधाके स्रोत—डा शर्मा ने ब्रह्मवैवर्तपुराण और जयदेव का गीतगोविंद को ही माने है इसके अतिरिक्त विद्यापति चण्डीदास पर वे गीत गोविंद का प्रभाव मानते है। रूप गोस्वामी—जिन्होने राधा के शास्त्रीय रूप पर बल दिया है—सूरके समसामयिक कहे जाते है। निम्बार्क सम्प्रदायके भट्टजी का युगलशतक स १३५२ का है अतः जयदेव से सूर के काल तक राधा विषयक अनेक ग्रन्थों के प्रणयन का अनुमान करके भी डा शर्मा ने सूर की राधा का स्रोत ब्रह्मवैवर्तपुराण ही माना है। और कतिपय मौलिक कल्पनाओं के साथ सूर पर जयदेव विद्यापति और चंडीदास के प्रभाव को माना है।

वस्तुत यहाँ राधा का मूल स्रोत बताना मेरा प्रकृत विषय नही परन्तु इतना अवश्य है कि श्रीमद्भागवत पुराण अपने विषय की दृष्टि से पुरातन सनातन होकर भी वर्तमान रूप की दृष्टि से ८ वीं ९ वी शती से पूर्व नहीं जाता। अन्य सभी पुराण उससे पूर्ववर्ती है। सभी प्रमुख पुराणो का उल्लेख श्रीमद्भागवत मे मिल जाता है। अतः पुराणो का प्रणयन काल उपनिषद् और स्मृति काल से लेकर श्रीमद्भागवत के काल अर्थात् ८ वीं शती तक तो माना ही जा सकता है। यदि भागवतान्तर्गत पुराणो की सूची[3] को कालक्रमानुसार मानें तो पद्मपुराण ब्रह्मपुराण के उपरान्त दूसरे नम्बर पर आता है। पद्मपुराण का काल ८ वी शताब्दी से कई शताब्दी पूर्व होना ही चाहिए। पद्मपुराण के तृतीय ब्रह्मखण्ड के ७ व अध्याय मे राधा-जन्माष्टमी की महिमा वर्णित है। इस प्रकार राधा की न केवल भावात्मक सत्ता ही अपितु ऐतिहासिक सत्ता ८वीं शताब्दी से कई शताब्दियों पूर्व भी है। श्रीमद्भागवत में राधा के उल्लेख न होने के कई कारण है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि "राधा

---

१ सूर और उनका साहित्य। पृ १६२
वही
२ श्रीमद्भागवत—१२ १३ ४—९

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भागवत के आधार पर जो स्तोत्र, नामावली अथवा अष्टक आदि लिखे हैं उनमें भी गोपी और रुक्मिणी आदि के नाम के साथ राधा का नाम आता है।[1] अतः 'राधातत्व' को भागवत के उपरान्त का नहीं अनुमान किया जाना चाहिए। महाप्रभु ने राधातत्व को माधुर्य भाव के पूर्ण परिपाक के लिए सांकेतिक रूप से भागवत से और स्पष्ट रूप से अन्य स्रोतों से ग्रहण किया है और परिपुष्ट कान्ताभाव के आदर्श के ही लिए उसका उपयोग किया है।

सूर और परमानन्द दोनों ही सागरों को महाप्रभु की देन शैली से ओत-प्रोत इन्हीं अष्टकों और संगीतात्मक स्तोत्रों में राधातत्व के वर्णन हुए थे। आगे चलकर गोस्वामी विट्ठलनाथजी और हरिराय जी आदि ने तो राधा को स्वामिनी कहकर अनेक छोटे मोटे ग्रन्थों की रचना की। 'राधा प्रार्थना-चतुःश्लोकी' में गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने राधा की बड़ी महिमा वर्णन की है। और उनसे कृपा-याचना की है—

कृपयति यदि राधा बाधिताशेष बाधा।
किमपरमवशिष्टं पुष्टिमर्यादयोर्मे ॥
यदि वदति च किंचित् स्मेरहासोदितश्री ।
द्विजवर मणि पंक्त्या मुक्ति शुक्त्या तदा किम् ॥
श्याम सुन्दर शिखण्ड शेखर स्मेरहास मुरली मनोहर।
राधिकारसिक मां कृपानिधे स्वप्रिया चरण किंकरीं कुरु ॥
प्राणनाथ वृषभानुनन्दिनी श्रीमुखाब्ज रस लोल षट्पद ।
राधिकापद तले कृतस्थितिस्त्वां भजामि रतिनाथ शेखर ।
संविधाय दशने तृणं विभो प्रार्थये व्रज महेन्द्रनन्दन ।
अस्तु मोहन तवातिवल्लभा जन्मजन्मनि मदीश्वरी प्रिया ॥[2]

अर्थात् "यदि राधा कृपा कर दें तो मेरी सम्पूर्ण बाधा नष्ट हो जाती है और पुष्टि तथा मर्यादा में फिर मेरे लिए क्या अवशिष्ट रह जाता है। और यदि वे अपनी सुन्दर मन्दमुस्कान से जिसमें स्वच्छ मणि—पंक्ति के समान दन्तावली सुशोभित हो रही हो, कुछ आदेश देवें तो मुक्तिरूपी सीप से मुझे क्या प्रयोजन है। हे मयूरपिच्छधारी श्यामसुन्दर। हे मन्दमुसकान मुरली मनोहर! हे राधिका रसिक मुझे अपनी प्रिया के चरणों की सेविका (किंकर) बनाओ।

हे प्राण धन। हे श्री राधिका के मुख कमल के भ्रमर। हे रतिनाथ शेखर। श्री राधिका के पद तलों में मेरी स्थिति कर दीजिये।"

हे प्रभो। हे व्रजनन्दन। मैं अपने मुख में तृण दबाकर (अतिशय दीनता पूर्वक) प्रार्थना करता हूँ कि आपकी प्राणाधिक प्रिया राधा मेरी स्वामिनी हो।"

इसी प्रकार सम्प्रदाय में परम मान्य आचार्य चरण श्री हरिरायजी ने भी राधा विषयक अनेक स्तुतियाँ लिखी हैं। और महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी के काव्य और राधा भाव को अत्यन्त ही प्रमुखता दी है। अतः सूरदास और परमानन्ददास को राधाभाव अपने आचार्य चरणों ही से मिला था।

१ [illegible] श्री राधा [illegible] नामावली [प्रथम भाग [illegible]]

२ श्री राधा प्रार्थना चतुःश्लोकी

परमानन्ददासजी की राधा का स्वरूप —

प्रारम्भ से ही कवि ने अपने 'सागर' में कृष्ण की भाँति राधाजन्म महोत्सव पर बधाई लिखी है। रसिकिनी राधा भी पालने में झूल रही है —

"रसिकिनी राधा पलना झूले।
देखि-देखि गोपीजन फूलें॥

आगे चलकर लाड़िली किशोरी राधा के चरणों को कवि ने 'सुरतसागरतरन" कह कर नमस्कार किया है —

जय जयलाड़िली के चरन।
नन्द-सुत-मन मोदकारी 'सुरससागर तरन'॥

इसी से कवि का रसात्मक दृष्टिकोण व्यक्ति हो जाता है। कवि ने तो 'स्याम ताको सरन" कहकर राधा को स्याम से अधिक महत्त्व दे दिया है। आगे चलकर राधा थोड़ी सयानी होती है और वे हिण्डोले में झूलती हैं। उनके दिव्य सौंदर्य पर उमा-रमा और रति न्यौछावर करने योग्य हैं। अखिल भुवनपतिने उन्हें अपने हाथ से सवारा है।[1] वे साक्षात् नव निकुञ्ज की शृंगार रूपा हैं।

"अबयनी नव कुञ्जको शृंगार।"

क्रमशः राधा और बड़ी होती हैं। गोपिकाओं के साथ यमुना पर जल भरने जाती हैं। दधि बिलोती हैं। अचानक उन्होंने एक दिन यमुना-स्नान करने के उपरान्त कृष्ण को देख लिया है। बस उस लावण्य-निधि पर वे सदैव के लिए निछावर हो गई। राधा माधव की हो गई, और माधव राधा के। क्रमशः रति परिपक्व हो कर क्रमशः व्यसनरूपा हो गई। और अब एक पल भी एक दूसरे के बिना रहा नहीं जाता।

"राधा माधव सौं रति बाढ़ी।

..

चाहति मिल्यो प्राण प्यारे को परमानन्द गुन गाढ़ी॥

मुग्धा राधा अहर्निश श्यामसुन्दर का ही चिन्तन करती है। यह पुरातन प्रीति है। एकाकी नहीं है। रसिक सिरोमणि गोपालको भी राधा बहुत ही भाती है।

"राधा रसिक गोपालहि भावै।"

इधर राधा भी माधव के बिना नहीं रह सकती।

राधा माधव बिनु क्यों रहे।"

लोक वेद से परे का यह अनुराग अपनी चरम प्रणयावस्था में परिपक्व होकर परिणय में परिवर्तित हो गया। और देवोत्थापिनी एकादशी के दिन राधा माधव का विवाह भी हो गया।—

"ब्याह की बात चलावत मैया।
बरसाने वृषभानु गोपके लगन की भई बधैया॥"

विवाह हुआ द्वाराचार हुआ और वर-वधू घर पर आ गये। वर-वधू के मिलन का समय आ गया।

---

१ परमानन्दसागर पद संख्या—१७७

आचार्य वल्लभ ने अपने संन्यासनिर्णय में इन्हें भक्तिमार्ग का गुरु ठहराया है ।

"कौण्डिन्यो गोपिका प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत् ।"
भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते ॥ सं नि० —८

उन्होंने गोपियों की विरहजन्य पीड़ा की प्राप्ति के लिए भगवान् से कामना की है—

"गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम् । यत्सुखं समभूत्तन्मे भगवान् किं विधास्यति ॥२

आचार्य ने गोपियों में प्रेम की पराकाष्ठा मानी है—

'पराकाष्ठा प्रेम्णां पशुपतरुणीनां क्षितिभुजाम् ।' परि. श्लोक १

उनके शब्दों में भक्तिमार्गीय संन्यास की वे उत्तम उदाहरण स्वरूपा हैं —

'भक्तिमार्गीय संन्यासस्तु साक्षात्पुष्टि-पुष्टि श्रुति रूपाणां रासमंडल मंडनानां स्वयमेवोक्तम्—संत्यज्य सर्व विषयास्तवपादमूलं प्राप्ता इति । [तामसी भाष्य]

सर्वस्व त्यागकर रास-क्रीड़ा में सम्मिलित होने वाली श्रुतिरूपा गोपिकाएँ भक्ति मार्गीय संन्यास का उत्तम उदाहरण हैं । इसीलिए नारदीय भक्ति सूत्र में उनके अनुराग को आदर्श माना है—

'यथा व्रजगोपिकानाम्—ना भ सू —२१

'क्योंकि समस्त कर्मों को अर्पण करना और भगवद् विस्मृति में परम व्याकुल हो जाना'[1]—व्रजगोपिकाओं का ही स्वभाव है ।

गोपियाँ रस की समर्पक रूपा शक्तियाँ हैं । वस्तुतः प्रेम रस में मग्न हुए भक्तों का नाम ही 'गोपी' है । गोपी अर्थात् स्त्री नहीं स्त्रीभाव वाले भक्त । पुरुष भावात्म तत्व का नाम 'स्त्री' है । अतः पूर्ण स्त्रीभाव" ही गोपी भाव" है । गीता में इसी को 'परमभाव' का नाम दिया गया है ।

परमभावमजानन्तो "[2]

इसी का दृष्टान्त है—"गोपाङ्गनाभिव प्रियम् ।"

गोपियों के इस 'परमभाव' की ओर लक्ष्य करके ही एक लेखक ने लिखा है—

When beings are perfected they reach the plane of Krishna, which is beyond the seven fold plane of the cosmic ego. The Gopis are such perfected beings."

अर्थात् "जो प्राणी पूर्णता की भूमि पर पहुँचे हुए होते हैं वही कृष्ण तक पहुँचे हुए होते हैं । वे इस प्रपंच के सप्तावरण को भेद कर पूर्णता प्राप्त प्राणी हैं ।

अतः गोपीभाव अर्थात्-सर्वात्मभावात्मसमर्पण-अथवा "सहजभाव" । इस प्रेम में वेद-शास्त्र विधि-निषेध विवेक आदि की सत्ता नहीं रहती । न संयोग न वियोग । प्रेम की इस उत्कृष्ट स्थिति का नाम ही 'गोपी भाव' है ।

समस्त व्रज गोपिकाओं को आचार्य जी ने तीन वर्गों में विभक्त किया है ।

१ गोपाङ्गनाएँ —

जो वेद मार्ग की चिन्ता न करके श्रीकृष्ण को ही अपना पति मानती थीं । वे विवाहित गोपिकाएँ हैं । इन्हें 'अन्यपूर्वा' भी कहा जाता है ।

---

१ तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति [ना भ सू—१९]

२ गीता

करके जीव को भगवदभिमुख करती है। क्योंकि वेणु रव से ही भगवान् का लीला विशिष्ट स्वरूप प्रत्यक्ष होता है।[1]

वेणु रव तारतम्य से रस 'भगवद्रस'-का विकास करता हुआ गोपियों को भगवदभिमुख करता है। वेणु के रन्ध्र छिद्रों को सुधारस से पूरित करने के लिए भगवान् उसे अपने अधरों पर रखते हैं और उससे नाद (ब्रह्म) की उत्पत्ति होती है। यह वैधी भक्ति से ऊपर परमफल प्राप्ति की स्थिति है। यह मुखारविंद की भक्ति है, चरणों की नहीं। वैधी अथवा शीतला भक्ति में लगी गोपिकाएँ मुख की उष्ण भक्ति[2] का रहस्य जानकर भी वेणु से ईर्ष्या करती हैं। आगे चलकर व्रज सीमन्तिनियों को भगवान् ने रास क्रीड़ा में इसी उष्ण भक्ति का कृपा भाजन बनाया था।[3] यह सूक्ष्म भक्ति 'तापात्मक भक्ति' कहलाती है। इसमें भक्त को अत्यन्त ताप रहता है। कबीर की विरहिणी भी इसी में झुरझुर मरती है। जायसी की विरहिणी भी इसी विरह से अपने हाड़ों को किंगरी बनाती है। मीरां भी इसी उष्ण भक्ति में रैन दिन व्याकुल रहती है। पपीहा चातक मृग पतंगादि इसी उष्ण भक्ति के उदाहरण हैं। सूर ने वेणु-रव से विद्ध गोपियों का जो मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है वह भी उष्ण भक्ति का रहस्य है। इसी कारण जब मुरली ध्वनि को सुनकर सिद्धों की समाधि टल जाती है यमुना का जल स्थिर हो जाता है और पाषाण द्रवीभूत हो जाते हैं। और देव-विमान स्थगित हो जाते हैं।

व्रज गोपिकाएँ जब इस मुरली-रव को सुनते ही विदेह हो जाती हैं। और चित्र लिखी सी हो जाती हैं।[4] मुरली के दिव्य प्रभाव से अभिभूत एक गोपी तो भोजन तक नहीं बना सकती क्योंकि सूखा ईंधन सरस और गीला हो जाता है और चूल्हा बुझ जाता है।

मुग्धहर ? रचन समये मा कुरु मुरली रव मधुरम्।
नीरसमेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतरताम्। गीत गो

---

1 तदर्थं मार्ग प्रकटितवान् वल्लभ्येन गुप्ततोया विशिष्टमुद्भाव्य रसात्मकं स्वरूपं सर्वेन्द्रिय भावात्मकस्य श्रीवेणु भूषणार्थिमुष। दशम स्कन्ध २१ श्लोक २

2 अभिनीता स्वामीन वल्लभानुगवेदना।
प्रथमा शीतला भक्तिर्वैधा अपर श्रीनैनात्। न दे भिकरस
तथा नयैव मुख्यार्थ उष्णमा भावतादिषु।
द्वितीया दुर्लभा वल्लभवरानुन सेवनात्।

3 तदर्थं भावना कृता विरहानुभवात्मिका।
गोप सीमन्तिनीनां च ता दृष्टा हरिणा स्वयं। —हरिरायजी कृत भक्ति द्वैविध्य निरूपण श्लोक १

4 मेरे सांवरे जब मुरली अधर धरी।
सुनि धुनि सिद्ध समाधि टरी
थकि रहे देव विमान। सुर-वधु चित्र समान।

— — —

चरण सरस पावन। —सूरसागर दशमस्कंध
और भी—जलनिधि धी सुधि भूल गई।
श्याम अधर मृदु मधुर मुरलिका चकित नारि भई।
तथा—मुरली सुनत अचल चले।
थके चर जल भारत पावन विधु उमंगि चले॥

मुरली के ऊपर गोपियों को खीज भी है क्योंकि वह उनकी नित्यचर्या में बड़ा व्यवधान पहुँचाती है :—

थकि रही सुनि मुरली की टेर ।
सुनते ही निकसी घाई मिस तबहिं भई बावन की बेर ।
मोरचन्द्रिका धरे स्यामघन चपल नयन की हेर[1] ।

सूर की भाँति परमानन्ददासजी की गोपियों में भी मुरली के प्रति विवश दैन्य एवं परवश आत्म समर्पण के दर्शन होते हैं —

हौं तो या मग की चेरि ।
जब नयन के मग रमि बाजति सबन सुनत सुख चेरि ।

..

परमानन्द सुधावहि धावै लाख बार हित मेरि ।

निष्कर्ष इतना ही कि परमानन्ददासजी का मुरली वर्णन भगवान की वह दिव्य शक्ति है जो भक्तों के निरोध के लिए है । इसका अद्भुत प्रवाह चराचर पर व्याप्त है ।

यमुना—

सम्प्रदाय में श्री यमुनाजी का बड़ा महत्व है । महाप्रभु श्री हरिरायजी ने तो भगवान एवं वल्लभाचार्य तथा श्री यमुना जी को तुल्य माना है ।[2] श्री यमुना भगवान् की नित्य लीलास्थली की उत्तम सहचरी है । अतः वे भगवान् का स्मरण कराने वाली होने के नाते भाव वृद्धि करने वाली हैं । जिस प्रकार विरहातुर साधक के हृदय स्थित भाव की वृद्धि करता है यमुना भी प्रभु प्रेम की वृद्धि करती है ।

भगवान् विरह दत्वा भाव वृद्धि करोतिहि ।
तथैव यमुना स्वामि स्मरणात्स्वीय दर्शनात् ।
यस्माचार्यवर्यास्तु ब्रह्म सम्बन्धकारणात् ।
तान् स्तौमि प्रसादेन मिथाथा भाव वर्द्धका ॥

अर्थात् विरह के द्वारा भाव वृद्धि करने से भगवान्, स्वामी का स्मरण कराने से श्री यमुना एवं ब्रह्म सम्बन्ध कराने से आचार्य वल्लभ—तीनों ही स्वाधीन धर्म वाले हैं । अतः तुल्य हैं ।

श्रीमद्भागवत में श्री यमुना के आधिभौतिक-प्रवाह रूप का माहात्म्य इतना वर्णित नहीं किया गया जो भाव चलकर सम्प्रदाय में उतना मान्य हो गया । प्रभु प्रेम की स्मारिका होने के नाते ही आचार्य वल्लभ ने भगवान् की तुर्य प्रिया यमुनाजी को बड़ा महत्व दिया है । आपने यमुनाष्टक में उन्होंने यमुना को "सकल सिद्धि की हेतु मुरारिपुर से मुदित" मुकुन्द रति वर्द्धिनी पवित्र भुवन-पावनी अनन्त गुण भूषिता कहकर प्रणाम किया है ।[4] उनकी महिमा का गान करते हुए आचार्य चरण कहते हैं कि श्री यमुना के भक्त गण यमराज कृत बाधा इसलिए

१ [illegible]—[illegible] कलकत्ता १ ।११८

२ कर्म च पुष्टि भक्तो श्री यमुना श्रीमदाचार्य वल्लभाख्य च समानो धर्मो ।

३ हरिराय जी कृत यमुनाष्टक पर टिप्पणी ।

४ यमुनाष्टक स्तोत्र १, ६, ३, ४ आदि ।

नहीं पा सकते कि उसकी भगिनी यमुना के पुत्र हैं अर्थात् भान्जे हैं। और अपने भान्जों को कोई भी मामा कष्ट नहीं पहुँचाता।[1] [और यदि पहुँचावे तो कंस की भाँति विनाश को प्राप्त होवे।] अतः यमुना भक्त हित सपादयित्री दो स्वरूपों में विराजती है। एक तो भगवान् की पत्नी रूप में दूसरे चतुर्थ यूथ की स्वामिनी के रूप में। यह उनका आधिदैविक रूप है। दूसरा जल प्रवाह रूप। यह रूप आधिभौतिक है और प्रत्यक्ष है। इस जल रूप आधिभौतिक रूप को भी हरिराय जी ने द्रवीभूत रसात्मक स्वरूप बतलाया है।[2] अतः विविध लीलोपयोगिनी कालिन्दी की स्तुति आचार्यवर्य ने इसलिए की है कि भगवान् ने उन्हें अष्ट-विधि ऐश्वर्य दिया है। इसीलिए आचार्य ने आठ श्लोकों से उनकी स्तुति की है।[3]

यमुना का श्रीकृष्ण-प्रिया रूपमें वर्णन स्कंदपुराण[4] एवं गर्ग संहिता[5] में पर्याप्त रूप से मिलता है। स्कन्दपुराण में तो यहाँ तक मिलता है कि श्रीराधा की नित्य सेवा करने के कारण ही श्री यमुनाजी को श्रीकृष्णका विरह नहीं होता। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी की श्री यमुना के प्रति अनुग्रहमान्यता के कारण सभी अष्टछापी कवियों ने यमुना को भगवान् की प्रियाके रूप में ही स्मरण किया है। नित्य सेवा में तो भगवन्मन्दिर में सेवक यमुना का स्मरण करके ही सेवा का अधिकारी होता है। अतः महाप्रभुजीकी इस गहरी मान्यता के कारण सभी संप्रदायी कवियों ने यमुनाजी विषयक पद पहले गाए हैं।

परमानन्ददासजी ने भी श्री यमुना विषयक अनेक पद लिखे हैं और उनसे कृष्ण प्रेमकी याचना की है।

> श्री यमुना यह प्रसाद हौं पाऊँ।
>
> तुम्हरे निकट रहौं निसिबासर राम कृष्ण गुन गाऊँ।
>
> ... ...
>
> बिनती करौं यही बर माँगौं अधमन संग बिसराऊँ॥

परमानंददासजी ने भी यमुनाजी के आधिदैविक और आधिभौतिक दोनों ही स्वरूपों की भावना की है। उन्होंने यह भी स्पष्ट स्वीकार किया है कि यमुना माहात्म्य उन्होंने जगद्गुरु श्री वल्लभाचार्य से ज्ञात किया है —

---

१ यमुनाष्टक श्लोक सं —६

२ चतुर्थो भावात्मा भगवान् "रसो वै सः" इति श्रुतेः।
यथा स्वरूपात्मकोऽपि तथा। तथा श्री यमुनाऽपि द्रवीभूत रसात्मक तत्त्वरूपत्वेन। श्री हरिराय कृत टिप्पणम्।

३ भगवतास्वसन्निवेशितमष्टैश्वर्यं कालिन्द्यां दत्तमिति ज्ञापनाय अष्टाभिः श्लोकैः स्तुवन्ति। श्री हरिराय कृत टिप्पणम्।

४ आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका।
तस्या दास्य प्रभावेण विरहोऽस्मान्न संस्पृशेत्। स्क पु वै भा श्लो १

५ कृष्णे स्वधामगमने कमलमेव देहार्थे वर्तमेव कन्या।
यमोत्तमी धूम्रस्वरी तथा है मिली मिली भाति गोविंद देव। गर्गसंहिता माधुर्यखण्ड यमुनास्तोत्र श्लो ५

आचार्य वल्लभ एवं श्रीरूपगोस्वामी आदि ब्रजवरीयगण को श्रीमद्भागवत के तात्पर्य के अनन्य मर्मज्ञ हैं रासलीला रहस्य के विषय में एक स्वर और एकमत हैं। संप्रदाय के सभी अन्य ब्रज भाषी-कवियों ने एवं अष्टछाप के कवियों ने रास लीला प्रसंग को बड़े उत्साह और समारोह के साथ उठाया है। और उसे लौकिक पद्धति से वर्णन करके भी उसके मूल प्रयोजन को नहीं ओझल होने दिया है। सूर और नन्ददासजी के रासलीला प्रसंग तो भक्तों के सर्वस्व हैं। नन्ददासजी की रास-पंचाध्यायी हिन्दी साहित्य में मणि की भाँति उद्दीप्त और मूर्धन्य है। इन सभी भक्तों ने रास लीला के आध्यात्मिक अथवा अलौकिक तात्पर्य को दृष्टि-पथ में रखा है।

परमानन्ददासजीके रास लीला विषयक पद

परमानन्ददासजी ने रास लीला का वर्णन श्रीमद्भागवत के आधार पर किया है। उन्होंने भी रास के अलौकिकत्व की चर्चा की है।

रास मंडल में बन्यौ माधौ
गति में गति उपजावै हो।

....

सरद विमल निसि चंद विराजित
सीतल जमुना कूलै हो।
परमानंद स्वामी कौतूहल
देखत सुर नर भूलै हो।

भागवत के 'भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्ल मल्लिका'[1] आदि वातावरणको ती तैपरमानन्ददासजी अपने पदों में ज्यों अपने पदों में ले ही ले आये हैं किन्तु आकाश में स्थित देवों के विस्मय को भी चित्रित करना वे नहीं भूले हैं। महारास में एक एक गोपी के साथ एक एक कृष्ण हो गये हैं —

मंडल जोरि सबै एकत्र भए निर्तत रसिक सिरोमनी।
मुकुट धरे सिर पीतपट कटितट बाँधे ताल भेद बनी ठनी।
एक एक हरि बीची ब्रज वनिता ब्रज सोहै बनी बनी।
चढ़ि विमान सुर जुवति निरखि कै कहैं परस्पर गिरिधर धनी।

....

ब्रज वनिता मध्य रसिक राधिका बनी सरद की राति हो।

....

एक एक गोपी बिच बिच माधौ बनी अनुपम भांति हो।।

रास में आलिंगन चुम्बन परिरम्भण की चर्चा श्रीमद्भागवत के ही अनुसार है—

रास रच्यो बन कुँवर किशोरी।

आलिंगन चुम्बन परिरम्भन परमानंद डारत तृन तोरी।।

---

१ श्रीमद्भागवत—१ ।२९ १

अन्य अष्टछापी कवि सूरदास कुम्भनदास आदि की समपंथी का भी अवलंबन लिए हुए हैं। वे अपने काव्य में लीला के आध्यात्मिक तात्पर्य को अत्यधिक प्रबल नहीं होने देते। इससे व्रजरसलीलाओं का सहज माधुर्य अक्षुण्ण बना रहा है। इसी प्रकार वे भागवत के अन्य स्कन्धों की कथाओं के चक्कर में नहीं पड़े हैं। उन्होंने भावपूर्ण लीलाओं को ही अपनी काव्योपयोगिनी बनाया है। उनकी दृष्टि भगवान् की बाल से लेकर किशोर लीलाओं तक ही रही है। आगे नहीं।

कवि ने महाप्रभुजी के वचनों का सर्वाधिक अनुसरण किया है। राधा गोपी मुरली यमुना रास गोकुल वृन्दावन आदि उनके विषय में उनकी वे ही मान्यताएँ हैं जो महाप्रभु जी की थीं। इसी प्रकार उनके लीला गान में विस्तार की अपेक्षा गहनता अधिक है। लीला विशिष्ट पदों में सरलता सुकुमारता माधुर्य और स्वाभाविकता कूट कूट कर भरी हुई है। यदि सूर अपनी बाललीला के लिए और नन्ददास अपनी रास पंचाध्यायी के लिए अद्वितीय हैं तो परमानन्ददासजी अपनी बाल लीलाओं के लिए अप्रतिम हैं। संक्षेप में लीला गान के वे अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं। भागवत तथा महाप्रभुजी के वचनों का इतना अधिक सटीक अनुसरण शायद ही किसी अन्य अष्टछापी कवि में मिलता हो।

अष्टम अध्याय

परमानंददासजीका काव्य पक्ष

यह तो कहा जा चुका है कि अष्टछाप के कवियो का उद्देश्य कोरी काव्य रचना करना नहीं था। वे मुख्यत भक्त थे और श्रीगोवर्धननाथजी के मंदिर मे कीर्तन सेवा करना ही उनका नित्य का प्रिय कार्य था। वे अपने मानव जन्म का विनियोग अपने आराध्य के चरणों मे कर चुके थे। अत उनके काव्यो मे भक्ति-तत्व मुख्य है और काव्य-तत्व गौण। इसी प्रकार परमानंददासजी भी मुख्य रूप से भक्त पहिले हैं कवि अथवा कीर्तनकार उसके उपरात। सभी अष्टछापी कवियो को हम तीन रूप में देख सकते हैं।

१—भक्त

२—कवि

३—लीला गायक अथवा कीर्तनकार

इसके अतिरिक्त इन भक्ति-कवियो मे दार्शनिकता ढूंढना व्यर्थ है। प्रसंगवश यदि इन कवियों से दार्शनिक तत्वो—ब्रह्म जीव जगत् मायादि—की चर्चा आ गई है तो उसके आधार पर इन्हे दार्शनिक नही कहाजा सकता। इसी प्रकार इन्हें कोरा कवि समझ कर इनके काव्यों का अनुशीलन करके उसमे काव्य शास्त्रीय गुण दोष ढूंढना और उनकी समीक्षा करना इनका एकागी अध्ययन ही होगा। फिर भी इनका काव्य सौष्ठव गौण नही। वार्ता में तो सूरदास और परमानंददास को 'सागर' कहा गया है। यद्यपि भगवल्लीला गायक होने के नाते इन्हें 'सागर' की उपाधि से विभूषित किया गया है तथापि पदों की बहुसंख्यकता भी उसमे एक कारण है। यद्यपि सूरदास की भांति परमानंददासजी ने भागवत के सभी स्कंधों की कथा को अपने पदों मे वर्णन नहीं किया है न उनकी भांति अन्य पौराणिक आख्यानों को ही लिया है फिर भी उनके श्रीकृष्णलीला विषयक पदो की संख्या बहुत बड़ी है और उनकी वैज्ञानिक शैली से समीक्षा होनी ही चाहिये। परमानंददास भी सम्प्रदाय में सूर के समकक्ष ठहराये गये हैं। अत: यह आश्चर्य की बात है कि जहाँ सूर के काव्य पर अनेक समीक्षात्मक ग्रंथ लिखे गये हैं वहाँ परमानंददासजी पर अद्यावधि एक भी स्वतन्त्र समीक्षात्मक ग्रंथ उपलब्ध नही। जितनी थोड़ी बहुत चर्चा उनकी हुई है वह अन्य अष्टछापी कवियों के साथ ही। अत: उन पर स्वतन्त्र समीक्षात्मक ग्रंथ की आवश्यकता बनी रह जाती है।

परमानंददासजीका काव्य विषय

परमानंददास भी मुख्यत लीला-गायक हैं उसमे भी उन्होंने बाल लीला को ही अधिक प्रधानता दी है। महाप्रभु वल्लभाचार्य से दीक्षा लेने के उपरान्त उन्होंने भागवत के दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका श्रवण की और उनमें सूर की भांति हरि-लीला का स्फुरण हुआ। तब से महाप्रभु जी के साथ रह कर नित्य सुबोधिनी का अनुसरण करते हुए लीला परक पदों की रचना करने लगे। कहा जाता है कि अडैल में निवास करते हुये वे महाप्रभुजी के नित्य संपर्क में रहतेहुए उनके श्रीमुख से जो भी सुबोधिनी श्रवण करते उसे ही बाद में पदों में ग्रथित कर देते थे।

बाद में ब्रज आने पर और सूरदास जी के साथ श्री गिरिराज पर श्री गोवर्द्धननाथ जी के मंदिर में कीर्तन सेवा करने लगे थे। कीर्तन-सेवा मुख्यतः 'राग सेवा' है। इसमें भगवान की सब लीलाएँ शास्त्रीय पद्धति पर गाई जाती हैं। अतः सभी अष्टछापी कवियों की शैली स्वाभाविक रूप से क्रमबद्ध मुक्तक गेय शैली बन गई। इस क्रमबद्ध मुक्तक गेय शैली में परमानंददासजी ने असंख्य पदों में भगवल्लीला गान किया है। इस पद शैली में स्वभावतः भावों का प्रसार वर्णन की संक्षिप्तता संगीत की मधुरता तन्मयता कोमल-कांत-पदावली एवं सरस भावपूर्ण कोमल प्रसंगों की योजना रहती है। इसी कारण इन कवियों का मुख्य काव्य विषय श्री भगवान कृष्ण की मधुर गोकुल ब्रज लीलाएँ हैं। ब्रज से बाहर के लीला प्रसंगों का उन्होंने गान नहीं किया। रसात्मा राधेश्वर रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण का प्रेम स्वरूप ही उनका काव्य विषय था तदतिरिक्त उन्हें कोई विषय अपने काव्य के लिए उचित लगता ही न था। भावावेश और एकांत तन्मयता के साथ लीलासक्ति रूपासक्ति और भावासक्ति से जो मधुर पद उनके मुख से निकले वे ही सागर बन गए। उनमें काव्य की अलंकृता अथवा घटनाओं की संक्षिप्तता किंवा दार्शनिक तथ्यों की सावधानी बन गई तो बन गई, अन्यथा कवि उसके प्रति सजग किंवा प्रयत्नशील नहीं था न उसने इन सब बातों की चिन्ता ही की। वे कृष्ण लीला गान में मदमाते रहकर गोकुल प्रसंग तक ही सीमित रहे अतः उनके पद कृष्ण जन्म से लेकर प्रायः मथुरा गमन और उद्धवागमन तक पाये जाते हैं।

निम्नांकित सूची परमानंदसागर के उन सभी विषयों की है जो कवि को अपने 'सागर' के लिए रुचिकर हुए:—

१ श्रीकृष्ण स्तुति।
२ कृष्ण जन्मबधाई—छठी पलना करवट घुटुवन देहली-उल्लंघन आदि।
३ बाल-लीला—मृत्तिका-भक्षण—विश्व दर्शन आदि।
४ राधा जन्म बधाई।
५. पालने के पद।
६ गोदोहन गो-चारण आदि।
७ गोपियों का उपालंभ यशोदा का प्रत्युत्तर।
८ राधा कृष्ण की परस्पर आसक्ति प्रेमालाप हास्य-विनोद।
९. राधा कृष्ण मिलन गोपी-प्रेम रास-लीला आदि।
१० दान-लीला पनघट प्रसंग गोपियों की रूपासक्ति।
११ गोवर्द्धन लीला अन्नकूट गोपाष्टमी [illegible]।
१२ ब्रज से प्रत्यागमन गोपियों की उत्कंठा।
१३ राधा-मान कृष्ण का दूती-कर्म।
१४ गोपियों की आसक्ति राधा-कृष्ण का सौंदर्य वर्णन।
१५. रास निकुंज-लीला मुरली राधा कृष्ण की युगल लीला वन-विहार, सुरतान्त वर्णन आध्यात्मिक पद।
१६ खंडिता के पद गोपियों का उपालंभ।
१७. बसन्त, होरी चांचर, धमार के पद झूलडोल।
१८. कृष्ण का मथुरागमन।

१९ गोपियों का विरह।
२० उद्धव का ब्रज में आगमन भ्रमरगीत।
२१ ब्रज का माहात्म्य ब्रज भक्तों का माहात्म्य।
२२ यमुना का माहात्म्य गंगाजीका माहात्म्य भगवान् और भगवन्नाम का माहात्म्य। भक्ति का माहात्म्य गुरु महिमा।
२३ स्व-समर्पण दैन्य विनय आत्मप्रबोध।
२४ महाप्रभु वल्लभाचार्य गोस्वामी विट्ठलनाथजी तथा उनके सात पुत्रों की बधाई।
२५ नृसिंह जयन्ती वामन जयन्ती रामनवमी के पद।

उपर्युक्त पदों की सूची में वर्ष भर के उत्सव तथा नित्यसेवा के पद दोनों का ही समावेश इस सूची से स्पष्ट है। परमानंददासजी का काव्य विषय दशमस्कंध उसमें भी विशेषकर पूर्वार्द्ध तक का ही लीलागान है। इन्हीं सरस कोमल रमणीय प्रसंगों को लेकर कवि अपने काव्य जगत् में रमता रहा।

परमानंददासजी की शैली

कृष्ण काव्य के सरस प्रसंगों के आधार के कारण और कवि की कोमल ललित प्रणय रुचि के कारण उनकी शैली सहज ही संगीतात्मक अथवा गेय बन गई है। सभी पद गेय और प्रबन्ध मुक्तक हैं। इनमें भागवत के श्रीकृष्ण लीला—कथानकों की गहरी छाया है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के प्रसंगों को लेकर कवि ने अपनी दिव्य प्रतिभा और कल्पना के कारण 'गागर में सागर' भर देने का सफल प्रयास किया है।

गेयपद शैली कहीं तो सत्वरगामिनी और कहीं प्रसंग की सरसता मनोरमता के कारण मन्थर गम्भीर और व्यंजक होती है। कहीं तो उसमें गतिशील प्रभावात्मकता और कहीं प्रबन्ध की मधुरता और भाव-गहनता आ जाती है। गेयपद शैली में भाव-सौंदर्य के साथ कोमल कान्त पदावली संगीतात्मकता और संक्षिप्तता भी रहती है। वस्तुतः अनन्त करुणा मधुर कृष्ण चरित्र गेयपद शैली के अत्यन्त ही अनुकूल पड़ता है। भुवन सुन्दर नयनाभिराम श्रीकृष्ण का चरित्र इतना मनोज्ञ और अभिराम है कि उससे भावोन्माद और संगीत की सृष्टि स्वयमेव हो जाती है। यदि रामचरित के गान से किसी कथात्मक मनोवृत्ति का 'कवि' होना सहज सम्भव हो जाता है तो कृष्ण चरित्र भी किसी को सहज ही भावुक भक्त बना सकता है। इसी कारण अधिकतर प्रायः लगभग सभी कृष्ण चरित्र-गायक सुगायक सहज ही भक्त कवि बन गए हैं। इसकी एक लम्बी परम्परा के विषय में चर्चा करते हुये 'सूर और उनका साहित्य' के विद्वान् लेखक ने लिखा है— वास्तव में यह कोई नई बनी नहीं थी अपितु भारतीय साहित्य में युग युगान्तर से चली आती हुई एक परम्परा थी जिसमें विशेष विभूतियों द्वारा समय समय पर परिवर्तन परिवर्द्धन और संशोधन होते रहे हैं। इस गीत शैली का उद्भव कब हुआ यह निर्णय करना अत्यन्त दुस्तर है किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि गीतों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना स्वयं भाषा का। भाषा के मूल तत्वों में गीत के भी मूल तत्व निहित मिल जाते हैं।

वस्तुतः गीत मानव जीवन के आदिम युग से ही चले आ रहे हैं। वेदों में भी गीत शैली के दर्शन होते हैं। उनके उपरान्त लौकिक संस्कृत तो गीतों से भरपूर है। स्तोत्रों स्तुतियों, अष्टकों की तो लौकिक संस्कृत साहित्य में कमी नहीं। उनके उपरान्त प्राकृत

साहित्य के तीन प्रमुख ग्रंथों—दोहा ग्रंथ पद्धडिया ग्रंथ एवं गेयपद ग्रंथ में अन्तिम गेयपद ग्रंथ वही गीत शैली की परम्परा है। हां गेय पदों का प्रचार व साहित्य अधिक नहीं।[1] यही परम्परा जीवित रह कर आगे बढ़ी और आगे चल कर हिन्दी साहित्य मे खूब पल्लवित हुई। यही परम्परा अष्टछाप के कवियो को अपनी भक्ति-भावना व्यक्त करने के लिये पूर्ण विकसित रूप मे प्राप्त हुई थी। यह शैली ब्रज के अष्टछापी कवियों के हाथ मे पड़ कर इतनी निखरी कि इस काल का गीति-काव्य इस शैली का चरमोत्कर्ष कहा जा सकता है। इस शैली का साम्राज्य इतना बढ़ा कि ब्रज भाषा में प्रबंध काव्य लिखने का किसी को साहस ही न हुआ। इसी को लक्ष्य करके आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूष धारा जो काल की कठोरता मे दब गई थी अवकाश पाते ही लोक भाषा की सरलता में परिणत हो कर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों के बीच फैले मुरझाये मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ भी श्रीकृष्ण की मधुर-लीला का कीर्तन करने उठीं"।[2]

गीति शैली की परम्परा के विवेचन से और संक्षिप्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि गीति शैली को एक सुदीर्घ परम्परा थी जो संस्कृत और उस से पूर्व वैदिक साहित्य से चली आ रही थी। और कृष्ण भक्त कवियों मे आकर उस शैली का चरमोत्कर्ष हुआ। इसलिये आचार्य शुक्लजी ने तो सूरसागर को एक बड़ी लम्बी चली आती परम्परा का विकसिततम परिणाम माना है।

वे लिखते हैं—"सूरसागर किसी पहले से चली आती हुई परम्परा का—चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास सा जान पड़ता है," आगे चलनेवाली परम्परा का (प्रथम) रूप नहीं।

और जब परमानन्दसागर सूरसागर के टक्कर का कहा जाता है तब निश्चय ही वह भी गीति परम्परा का एक विकसिततम रूप है। दोनों सागरों मे अन्तर केवल इतना ही है कि सूरसागर में भागवत के सभी स्कन्धों के कथानकों का—चाहे संक्षेप में ही सही—थोड़ा बहुत समावेश है परन्तु परमानन्दसागर जिस रूप में आज उपलब्ध है—मुख्यतः दशमस्कंध और उसमें भी पूर्वार्द्ध तक ही सीमित रहा है। परन्तु अपनी सरसता संगीतात्मकता और विषय की अनुकूलता की दृष्टि से उसमें उत्तम गेयपद शैली के पूर्ण दर्शन होते हैं।

परमानंददासजी के गेय पदों का वर्गीकरणः—

परमानन्दसागर में मुख्यतः दो शैलियों के दर्शन होते हैं.—

१—कथात्मक गेय पद शैली।

२—अकथात्मक गेय पद शैली।

१—कथात्मक गेय पदों के अन्तर्गत वे पद आते हैं जो श्रीमद्भागवत के काव्य-प्रसंगों को और लक्ष्य देते हुए प्रसंग को आगे बढ़ाते हैं। जैसे—जन्म बधाई छठी नामकरण के पद, अन्न

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ११।
२ भ्रमरगीत सार—भूमिका पृ० १ १
३ वही पृ० ११

माखन चोरी, ऊखल बंधन, गोचारण, दानलीला, गोवर्धन लीला आदि। इनमें भगवान की महिमा की बार बार पुनरावृत्ति संस्कारों के नाम भोजन सामग्री के नाम जो वस्तु-परिगणन शैली के आधार पर हैं—आते हैं। इन पदों में थोड़ी सत्वरगामिता है।

२—प्रसंगात्मक गेय पद —ये वे पद हैं जो किसी एक सरस कोमल प्रसंग को उठा कर लिखे गये हैं और जिनमें भावों का उभार कल्पना की रमणीयता भावों की सरसता और कोमलता के साथ वातावरणिकता एवं विविध व्यंजना के साथ चरम भाव-सौंदर्य के दर्शन होते हैं इसके साथ ही इन पदों के अन्तर्गत स्वरूपासक्ति सौन्दर्यानुभूति हृदय के विविध भावों मनोदशाओं मनोवैज्ञानिक तथ्यों के दर्शन होते हैं। इनमें इतनी तन्मयता होती है कि एक एक पद में पाठक भाव-विभोर होकर उसकी पुनरावृत्ति करता हुआ भी कभी तृप्त नहीं होता। ऐसे ही पद 'सिर धावन' कराने वाले पदों की कोटि में आते हैं। इनमें संयोग-विप्रयोग की विविध मनोदशाओं का चित्रण होता है। भक्ति दैन्य आत्म-समर्पण विश्वास धैर्य स्थिरमतित्व दृढ़ता कातरता गाम्भीर्य भावुकता कोमलता और मुग्धता आदि तत्वों का इन पदों में समावेश होता है। सरलतम शब्दों में गहनतम अनुभूति इन पदों की अपनी विशेषता होती है। परमानन्ददासजी के बाललीला स्वरूपसौन्दर्य भक्ति-भाव दैन्य संयोग-विप्रयोग आदि प्रसंगों पर जो पद हैं वे इसी प्रकार के हैं।

उपर्युक्त दो शैलियों के अतिरिक्त परमानन्ददासजी में किसी अन्य शैली के दर्शन नहीं होते। सूर की दृष्ट-कूट पद शैली का इनमें प्राय अभाव है। क्लिष्टता तो उन्हें छू तक नहीं गई है। साथ ही पाण्डित्य-प्रदर्शन अथवा अभिव्यक्ति में घुमाव फिराव उन्हें पसंद नहीं। सीधी सादी सरस अभिव्यक्ति और हृदय से निर्गत सरस प्रेम का प्रवाह ही उनके काव्य का निखिल सौंदर्य संभाले हुये है और इसी में उनका पूर्ण विश्वास भी है। परन्तु वस्तु की दृष्टि से उनकी उभय शैलियों को आँका जाय तो वह अपनी अनुभूति की गहनता और दृष्टिकोण की एकांतिकता की प्रधानता के कारण वह आत्म प्रधान (Subjective) ठहरेगी विषय प्रधान (Objective) नहीं। क्योंकि वे वस्तु वर्णन को उतनी प्रधानता नहीं देते जितना भाव-चित्रण को। इसी कारण उनके पद एक राशि अथवा एक समूह के रूप में मिलते हैं जिसे भाव राशि कहना चाहिए और जिसका उद्गम स्थल उनका मानस है। एकांत-समाधि के उन सरस क्षणों में—जब कि वे भगवल्लीला का साक्षात्कार अपनी भावस्थली में कल्पना के नैनों से किया करते थे तब तो सरस पदों की सुरसरि धारा वेगमय होकर फूटकर बहती थी। जिसके लिये किसी प्रकार का वर्गीकरण विभाजन या काव्य-शास्त्रीय नियमों के विधि निषेध का बाँध नहीं बंध सकता था। अपनी स्वच्छन्द गति में बहती हुई उनकी काव्य धारा कल्पना के उभय कूलों में कभी इधर के सैकत-तट को स्पर्श करती है तो कभी उधर के। उनका यह भाव-क्षेत्र प्रेम तत्व से नितान्त ओत-प्रोत था। इसके अतिरिक्त उनके काव्य में कोई अन्य तत्व नहीं। सूर तो श्रीमद्भागवत के अन्य प्रसंगों में उलझे हैं परन्तु परमानन्ददास को सरस लीला वर्णन के अतिरिक्त किसी अन्य प्रसंग के लिए अवकाश ही नहीं। प्रेम और शृङ्गार की प्रबल एकान्त-भावना के कारण परमानन्ददासजी के काव्य पर यह आक्षेप किया जाता है कि उसमें समाज मर्यादा की अवहेलना की गई है किन्तु वस्तुतः यह आरोप अविचार पूर्ण ही ठहरता है क्योंकि

१ परमानन्ददासजी का केवल एक ही कूट पद देखने को प्राप्त हुआ है। देखो—परमानन्दसागर का ११२ संख्यात्मक पद। लेखक द्वारा सम्पादित संस्करण।

श्रीमद्भागवत और सुबोधिनी के रहस्यों को जानने और सम्प्रदाय की पद्धति पर कठोर दृष्टि रखने के उपरान्त उनके काव्य में मर्यादा कहीं रह ही नहीं जाती। वस्तुतः उनका काव्य प्रेम-काव्य है। जिसमें रागानुगा प्रेम-लक्षणा भक्ति की ही पुष्टि है जिसको लोक-वेद-मर्यादा की कोई अपेक्षा नहीं। परमानन्ददासजी के काव्य में चित्रित प्रेम के गहन स्वरूप को समझने के लिये साधारण लोक-बुद्धि या व्यावहारिक मर्यादा-दृष्टि से काम न लेकर साम्प्रदायिक भाव पद्धति को समझना चाहिए जिससे मन की मलिन वृत्तियाँ भगवदभिमुख हो जाती हैं। संक्षेप में परमानन्ददास की अथवा अन्य अष्टछापी कवियों में लोकमंगल की भावना का सारा स्थूल स्वरूप न होकर वह व्यष्टि-साधना के माध्यम से मिलेगा। इन कवियों ने पूर्वोक्त 'स्वान्तः सुखाय' लिखकर भी लोक कल्याण की अवहेलना नहीं की है। हाँ तुलसी की भाँति इन कवियों का लोक कल्याण सीधा (Direct) अथवा प्रत्यक्ष नहीं है। उसमें सूक्ष्म अप्रत्यक्ष लोक-मंगल का भाव ही दृष्टिगोचर हो सका है। यहाँ सूक्ष्म अथवा अप्रत्यक्ष लोकमंगल से मेरा तात्पर्य इन लीलागायक कृष्ण भक्त कवियों की लोक पावनी अनन्य भक्ति से है जिसमें लोक-हित अथवा भूत-कल्याण भावना स्वयमेव आगई है। यही कारण है परमानन्ददास जी ने गोवर्द्धन लीला को अपने काव्य में विशेष महत्व दिया। कृष्ण माखन चोर हैं गोपी चित चोर हैं किन्तु आराध्य के इन लोक रक्षक स्वरूपों की इतनी पुनरावृत्ति नहीं जितनी पूतना-वध शकट संहार, तृणावर्त-वध कालीय-मर्दन यमलार्जुन उद्धार आदि प्रसंगों की। दानव-संहार पर बार-बार कवि ने प्रसन्नता प्रकट की है। भगवान के इस लोक रक्षक रूप की बार बार चर्चा करने और पाठकों के सामने उनके प्राणि-हित पूर्ण कार्यों को लाने में कवि को अत्यन्त प्रसन्नता और गौरव है। उसका उद्देश्य भगवान के लोक-मंगल रूप का उद्घाटन करना ही है। कवि को वे ही प्रसंग बार बार प्रिय हैं जिनमें भगवान ने मानव के कल्याण का अप्रत्यक्ष सम्पादन किया है। परमानन्ददासजी और सभी अष्टछापी कवियों की अप्रत्यक्ष रूप से यही काव्य में लोक मंगल-भावना है। तुलसी जैसे लोकमंगल के पक्षपाती कवि सीधे सादे मानवावतार का उद्देश्य दुष्ट-दलन असुर-संहार तदनन्तर धर्म-राज्य की स्थापना के लिए प्रबन्ध-काव्य का उद्देश्य स्थिर कर लेते हैं। किन्तु ब्रज भक्तों के परमाराध्य श्रीकृष्ण दुष्ट-दलन और असुर-संहार तो करते ही हैं अपनी अलौकिक मधुर लीलाओं से भक्तों के मन का निरोध भी करते हैं। कर्तव्य-सौन्दर्य और आनन्द का अद्भुत सामंजस्य ही कृष्ण चरित्र की विचित्र विशेषता है। लोकचित्त गुरुजनकारिणी लीलाएँ मुख्यतः मन के निरोध के लिए ही हैं। फिर भी कवि ने कहीं कहीं लोकमंगल-भावना का स्पष्ट भी उल्लेख किया है—

देवदिवारी शुभ एकादशी हरि प्रबोध कीजै हो भाव।
जिहि उठो है गोविन्द सकल विस्व हित काज ।।"

अस्तु परमानन्ददास जी के काव्य को उपर्युक्त द्विविध शैली पर आधुनिक समीक्षा प्रणाली की दृष्टि से विचार किया जायगा। काव्य के दो पक्ष हैं—

1—भाव पक्ष।
२—कला पक्ष।

१—भाव पक्ष में वस्तुगत भाव कल्पना रसानुभूति आदि पर विचार किया जायगा।
२—कलापक्ष के अन्तर्गत अलंकार छन्द, भाषा आदि पर।

परमानन्ददास में भाव-व्यञ्जना—

मानव हृदय भावों का सागर है। भाव ही हृदय का निज स्वभाव है। भाव के अभाव में हृदय सत्ता नहीं रहती। पवनान्दोलन से जिस प्रकार समुद्र प्रतिक्षण तरंगायित रहता है उसी प्रकार हृदय भी अपने चतुर्दिक जगत् से भावमय बना रहता है। मानव की निखिल अनुभूतियाँ भाव-जन्य ही तो हैं। जिस प्रकार वायु के झोंकों से सागर-जल पर प्रतिक्रिया होती है ठीक उसी प्रकार हमारे हृदय पर भी बाह्य जगत् की क्रियाओं घटनाओं एवं परिस्थितियों से प्रतिक्रिया होती है। अन्यथा हृदय के अनन्त भाव सुप्तावस्था में ही रहते हैं। बाह्य प्रभाव उन्हें जाग्रत कर देते हैं। जिन बाह्य प्रभावों से वे उद्बुद्ध अथवा अभिव्यक्त होते हैं उन्हें 'विभाव' कहा जाता है ये विभाव दो प्रकार के हैं—

१—आलम्बन।
२—उद्दीपन।

१ आलम्बन विभाव—आश्रय अथवा दृष्टा के सुप्त भावों को जागरित करते हैं और

२. उद्दीपन विभाव—आश्रय अथवा दृष्टा के उद्बुद्ध अथवा जागरित भावों को उद्दीप्त अथवा तीव्र करते रहते हैं।

आश्रय अथवा दृष्टा के हृदय में जो प्रधान भाव आलम्बन के कारण उद्बुद्ध होता है उसे ही स्थायी भाव संज्ञा दी जाती है तथा जो कीचिवत् छोटे-छोटे अन्य भाव आश्रय के हृदय में उद्बुद्ध होकर मुख्य भाव को परिपुष्ट करके विकसित किया करते हैं उन्हें संचारी भाव कहा जाता है। आश्रय अथवा दृष्टा अपने उद्बुद्ध स्थायी भाव से प्रेरित होकर जो चेष्टाएँ किया करता है उन्हें अनुभाव पुकारा जाता है। यह तीनों—विभाव अनुभाव और संचारी भाव-मिलकर आश्रय अथवा दृष्टा हृदय में स्थित स्थायी भाव को परिपुष्ट करके उसे रस में परिणत कर देते हैं अथवा रस दशा में पहुँचा देते हैं। तात्पर्य यह कि 'रस' भाव की निष्पन्न अथवा परिपक्व स्थिति का ही नाम है। रस की कच्ची दशा ही भाव-दशा है। यह भाव दशा ही विभावानुभाव संचारियों से परिपक्व होकर रस दशा कहलाती है। आचार्य भरत ने हृदय के अनंत भावों में से मुख्य आठ माने हैं। रति हास शोक क्रोध उत्साह भय जुगुप्सा और विस्मय।

मम्मट ने इनका इस प्रकार उल्लेख किया है—

"रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साही भय तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायि भावा प्रकीर्तिता॥"

मम्मट ने निर्वेद को भी एक स्थायि भाव मानते हुए शान्तरस को भी नवम रस माना है।

"निर्वेदो स्थायि भावोस्ति शान्तोपि नवमो रस॥"

परमानंददास की अपनी बाललीला और किशोरलीला के लिए प्रसिद्ध हैं। अतः उनमें वात्सल्य और शृङ्गार-संयोग और विप्रयोग इन दो रसों का सुन्दर परिपाक मिलता है। सूर की भाँति शृङ्गार का रसराजत्व परमानंददासजी ने भी सत्य सिद्ध कर दिखलाया है। परमानंददासजी मुख्य रूप से प्रेम-तत्व के कवि (Poet of love) हैं। उन्होंने सूर की भाँति भगवान् की शील शक्ति और सौंदर्य की तीन विभूतियों में से सौंदर्य को ही अपने काव्य के लिए चुना है।

कवि के काव्य में बाल जीवन और किशोर लीलाओं का चित्रण मिलने के कारण जीवन की सम-विषम-विविध परिस्थितियों का भले ही चित्रण नहीं है न उनमें प्रत्यक्ष लोक मंगल की चिन्ता है। वे तो राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं के एकान्त गायक गोपी-भाव के अनन्य उपासक व्रज लीलाओं के माधुर्य में तन्मय रहने वाले आमुष्मिक जीव थे। उनके काव्य में भगवान कृष्ण की यही बाल सुलभ चपलता माखन-चोरी गोपी प्रेम गोदोहन गोचारण राधा-मिलन यशोदा के वात्सल्य आदि प्रसंगों के साथ वेणु रास यमुना वृन्दावन निकुञ्ज-लीला आदि के वर्णन मिलते हैं। दुष्टों के दमन श्रीकृष्ण के हाथों से होता अवश्य है परन्तु इन अष्टछापी कवियों की मनोवृत्ति भगवान के उस दुष्ट-संहारी लोक मंगल स्वरूप के ऊपर अधिक नहीं टिकी। क्योंकि दुष्टदमन कार्य को वे भगवान का अनिवार्य कर्तव्य सा समझते हैं। क्योंकि भक्तरक्षण उनकी प्रतिज्ञा है।

दूसरे भगवान की इन लीलाओं का आध्यात्मिक पक्ष भी इन कवियों को स्पष्ट था। अतः वे रागानुगा प्रेम अथवा भक्ति की तन्मयता में विभोर रहने वाले भक्त थे। दुष्टों के वध जैसे कठोर प्रसंगों के चित्रण में इनकी कोमल वृत्ति कैसे रमती। साथ ही अष्टछाप के सभी कवि और विशेषकर परमानन्ददासजी भगवान् कृष्ण के बाल स्वरूप के उपासक हैं। उनके आराध्य यशोदोत्संग-लालित हैं। अत उनकी मनोवृत्ति मे उग्र प्रसंग प्रवेश नहीं पाते। इसीलिए उनका वात्सल्य चित्रण अत्यन्त सरस हुआ है।

परमानंददासजी में वात्सल्य भाव—

परमानन्ददासजी ने पालने से लेकर पौगण्ड अवस्था तक के पदों में वात्सल्य भाव की बड़ी मधुर धारा बहाई है।

माईरी कमल नैन स्याम सुन्दर झूलत है पलना।

— — — — — —

लाल अंगूठा गहि कमल पानि मेलत मुख माहीं।
अपनो प्रतिबिंब देखि पुनि पुनि मुसकाहीं॥

यह स्वाभाविक होता है कि पालने मे पड़ा हुआ बालक अँगूठा चूसता रहता है। परन्तु केवल इतने चित्रण से ही कवि तृप्त नहीं हुआ वह कहता है कि शिशु अपने अँगूठे का प्रतिबिंब भी देख रहा है। और इसी कारण वह मुस्करा रहा है।

शिशु के सौंदर्य पर भी परमानन्ददासजी की दृष्टि जाती है। देखने वाले के हृदय में यही शिशु-सौंदर्य वात्सल्यभाव की वृद्धि करता हुआ उसे रसकोटि तक पहुँचा देता है—

झुलावै सुत को महरि पलना कर लिए नवनीत।
नैन खंजन गात मसिबिंदुका तन पीरे पट पीत॥

पालने के शिशु मे कुछ स्वाभाविक चेष्टाएँ भी होती हैं—

नेकु देखत मंद हसत है कबहुँ होत भयभीत।
दै करतार बजावत गोपी गावत मधुरे गीत॥

सौंदर्य निधान कृष्ण न केवल यशोदा ही के प्यारे हैं, अपितु गोकुल की गोपी ग्वाल के दुलारे हैं। गोपियाँ काम काज करते दिन मे दो चार बार कृष्ण को देख अवश्य जाती हैं। इससे उनको यही देखने में लाभ होता है।

मुख देखन कों हौं आई लालको ।
काल्ह मुख देखि गई दधि बेचन जाति ही गयो बिकाई ।
दिन ते दूनौं लाभ भयो घर काजर बछिया जाई ।
आई हौं धाय धाय की मोहन देहौं बधाई ॥
सुन प्रिय बचन बिहँस उठि बैठे नागर निकट बुलाई ।
परमानंद स्वामी ग्वालन सैन संकेत बुलाई ॥

वात्सल्य और स्नेह भरे ऐसे अनुपम चित्र परमानंददास के काव्य में भरे पड़े हैं ।

कृष्ण थोड़े समय में ही घुटनों चलने लगे हैं । अत: नंद-निकेतांगण की निराली शोभा है:—

मनि मय आँगन नंदराय के बाल गोपाल करें तहाँ रँगना ।
गिरि गिरि उठत घुटुरुवन टेकत जानुपानि मेरे अँगना ॥

इन लौकिक लीलाओं के बीच भी परमानंददासजी अलौकिक भगवदैश्वर्य को भूलते नहीं । वे तुलसी की भाँति उसकी पुनरावृत्ति करते चलते हैं । सूर इतनी जल्दी भगवदैश्वर्य की पुनरावृत्ति नहीं करते । परमानंददासजी की इन पुनरावृत्तियों में पौराणिक गाथाओं का पुट है । इसी कारण कहीं कहीं वात्सल्य में अद्भुत रस का किंचित समावेश हो गया है ।

वात्सल्य के ये अलौकिक चित्र स्वाभाविकता के इतने निकट आ गए हैं कि पाठक की कल्पना सजीव हो उठती है और गृह वातावरण का एक जीता जागता चित्र सामने आ जाता है । कृष्ण को माखन चोरी के अपराध में माता ने बाँध दिया है और बालक कृष्ण करुणा भरी दृष्टि से इधर उधर देख रहे हैं । किसी गोपी ने उन्हें देख लिया है अतः वह यशोदा को झिड़क रही है । —

गोविंद बार बार मुख जोवैं ।
कमल नयन हरि हिलकनि रोवत बंधन छोरि यह सोवैं ।

— —

कहा भयो जो घर के लरिका चोरी माखन खायो ॥
गई मटुकिया दही जमायो देख न पूजन पायो ॥
तिहिं घर देव पितर काहे के जिहिं घर कान्ह रुलायो ।

कवि ने 'हिलकनि' से बालक के रोने का जो स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है उससे द्रष्टा श्रोता एवं पाठक की कल्पना के सामने वात्सल्य भाव का एक मनोरम चित्र उपस्थित हो जाता है । इन पदों में रोते कलपते हिचकियाँ लेते कृष्ण आलंबन हैं माता और माता के साथ वाली सखी की झिड़की उद्दीपन के अन्तर्गत तथा रोष क्षोभ निर्वेद, आन्तरिक स्नेह आदि अनुभाव हैं । वात्सल्य भाव के ऐसे प्रसंग कवि की सजीव कल्पना शक्ति एवं चित्रोपम शैली से रस कोटि तक पहुँच गया है ।

उपर्युक्त पदों में वात्सल्य भाव के उत्कृष्ट चित्रण की चर्चा की गई है अब शिशु-सौन्दर्य के भी कुछ चित्र हैं जो पाठक को एक दिव्य भाव-लोक में डुबो देते हैं ।

सुन्दर भाल नंदसु के ऊपर मैं बनियाँ।
कटि पर आड़बंद अति झीनों भीतर झलमल तनियाँ।
लाल गोपाल लाड़ले मेरे सोहत चरन पैंजनियाँ।
परमानन्ददास के प्रभु की यह छबि कहत न बनिया।

वात्सल्य का चरम विकास माता के इन शब्दों में मिलता है—

जा दिन कन्हैया मोसों मैया मैया कहि बोलैगो।
ता दिन अति आनन्द मिलौंगी माई, पलक पुलक तन अंगन में डोलैगो।
प्रात ही खिरक जाय दुहिबे कौं, आइ कनक बछरुवा के डोलैगो॥
परमानन्द प्रभु नवल कुँवर मेरो ग्वालिन के संग बन में खिलैगो॥

दूध दुहति जब और बालक के संगे पूछने के बहुत से स्वाभाविक वर्णन परमानन्ददासजी ने किये हैं—

जसोदा तेरे भाग्य की कही न जाय।

....

ते नंद लाल धूर धूसर वपु रहत गोद लपटाय।

...

माई तेरो कान्ह कौन ढंग लाग्यो।
मेरी पीठ पर मेलि ककरा नहि देख जात है भाग्यो॥
पाँच बरस को स्याम मनोहर ब्रज में डोलत नांगो।
परमानन्ददास को ठाकुर काहे परयो न तागो।

यज्ञोपवीत की अवस्था से पूर्व की लीलाओं में परमानन्ददास जी की चित्तवृत्ति अत्यधिक रमी है।

सूर की भाँति इनके कृष्ण भी मणि-खंभो में अपना प्रतिबिम्ब पकड़ने दौड़ते हैं।

बाल विनोद करे चित चाहत।
मुख प्रतिबिंब पकरिवेको हरि हुलसि घुटरुवन धावत।

इसी प्रकार कृष्ण का पैजनी पहिन कर चुटकी की ताल पर नाचना दूध के दो दाँतों की किलकारी बछिया की पूँछ पकड़ना आदि मनोहर प्रसंग परमानन्ददासजी को अत्यन्त ही भाये हैं। साथ ही ये स्वाभाविक शुद्ध वातावरण की सृष्टि करने में भी अत्यन्त पटु हैं। कोई गोपी प्रेम के आवेश में यशोदा के यहाँ चली आई है। कृष्ण को अपने वक्षस्थल से लगाना चाहती है। माता ने अभी अभी बालक को किसी प्रकार फुसलाकर के सुलाया है। माता यशोदा गोपी को कृष्ण को उठाने के लिए मना कर रही है। किन्तु गोपी चाहना ही चाहती है कि कृष्ण उठ पड़े और रोने लगें गोपी के मन की साध पूरी हुई। ऐसे स्वाभाविक वात्सल्यमय प्रसंग हमें प्राय नित्य घरों में देखने को मिल जाते हैं। वात्सल्य का इनसे अधिक स्वाभाविक चित्रण क्या हो सकेगा। कल्पना की यह दिव्य उड़ान देखने योग्य है—

रहि री ग्वालिन तू मदमाती।
मेरे छगन मगन से लालहि कित लै अंक लगावत छाती।

जीवत ते मथ ही राखे हैं म्हानी म्हानी दूध की दाँती ।
खेलत है घर अपने ग्रोसर काहे को ऐसी इतराती ॥
उठि भजी ग्वालि लाल लगे रोवन तब जसुमति आई अकुलाती ।
परमानन्द प्रीति अन्तरगति फिर आई मँगल मुसकाती ॥

इस प्रकार बाल-हठ से चन्द खिलौना माँगना माता का खीझ भरा प्रेम उसकी अभिलाषा भविष्य की सुन्दर कामनाएं ज्योतिषियों को हाथ दिखाना गोचारण जाने के लिये विचार ब्याह की बात चलना साथियों के साथ क्रीड़ाएँ, माता के पास शिकायतें आना जीवन के ऐसे सरस स्वाभाविक प्रसंग हैं जो हम नित्य अनुभव करते हैं। परमानन्ददासजी ने इन्हें प्रस्तुत कर अपनी किस सिद्ध कल्पना शक्ति का और सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है वह देखने योग्य है। इसी को लक्ष्य कर उनका 'सागर' सूरसागर की टक्कर का कहा जाता है।

पौगण्ड लीला में भी परमानंददासजी की भावाभिव्यक्ति देखने योग्य है। बालकों के समूह और उनकी क्रीड़ा के कितने ही सजीव चित्र कवि ने प्रस्तुत किए हैं—

गुडी उड़ावन लागे लाल ।
सुन्दर पतंग बाँधि मन मोहन नाचत है मोरन की ताल ।
कोऊ पकरत कोऊ ऊ चत है, कोऊ देखत नैन विसाल ॥
कोऊ नाचत कोऊ करत कुलाहल कोऊ बजावत तारी करताल ॥
कोऊ पुड़ी सी गुडी उरम्भावत आपुन खेंचत डोर रसाल ।
परमानंददास स्वामी मन मोहन रीझि रहत एक ही काल ॥

पतंग के पेंच लड़ाने बालकों के अपने अपने क्रीड़ा संबंधी अनेक कार्य भेंद खेलने मे होड़ घोड़े पर दौड़ आदि अनेक रसमय प्रसंग परमानंददासजी की विशेषता है। उनमें एक रसता (Monotony) का आरोप नहीं किया जा सकता। इन सब क्रीड़ाओं और लीलाओं के भीतर एक अखण्ड स्वच्छाशक्ति की प्रवाह धारा उनके काव्य में बहती रहती है। जो उनके सौन्दर्य-तत्व के प्रति सावधानी की द्योतक है। साथ ही जिसका चरम विकास किशोर लीला में राधा के प्रणय प्रसंग में हुआ है।

पालने मे शिशु की विविध चेष्टाएँ नन्द-निकेतांगण की क्रीड़ाएँ माता के हृदय की विविध अनुभूतियों और इसी प्रकार ब्रज लीलाओं के वर्णन मे परमानंददासजी सूर के समक्ष आजाते हैं।

कृष्ण बड़े हो गए हैं। गोदोहन सीखने की जिज्ञासा है।

बाबा जू मोहि दुहन सिखायो ।
गाय एक धौरी सी मिलवौ हौं है दुहौं बलदाऊ दुहायो ।

गोदोहन की कला जानने पर अब गोधी धरारत भी सीख गए हैं। गोपियों की दोहनी गिरा देते हैं। कभी खिड़क का दरवाजा खोल देते हैं जिससे बछड़े दूध पी जाते हैं और गायों की चोरी हो जाती है।

प्रस्तुत पद इतना स्वाभाविक है कि सम्भवतः ऐसा चित्रण शायद ही किसी कवि ने किया हो। तितली पकड़ना प्रायः पौगंड अवस्था में ही होता है। पौगंड से छोटी अवस्था का बालक तितली से डरता है। पौगंड अवस्था से बड़ी अवस्था का बालक तितली से खेलना पसंद नहीं करता, अतः परमानंददासजी को बच्चों की तितली पकड़ने की यथार्थ अवस्था का पूरा पूरा ज्ञान था। यही कवि की उच्च कोटि की सूक्ष्म दृष्टि है। भोजन का समय हो गया है। माता पिता को चिंता हुई बालक कहाँ गया या तो गायों के साथ होगा या खिरक में बछड़ों के साथ खेलता होगा।

देखो री गोपाल कहाँ है खेलत।
कै गैयन संग गए चराऊ कै खिरक बछरन संग खेलत॥

× × × × × × × ×

ऐसी प्रीति पिता माता की पलक ओट नहिं कीजै॥

इतने में कृष्ण आगए हैं। यशोदा मैया सखाओं सहित उन्हें भोजन कराती है। कभी माता को चिन्ता होती है कि सवेरे का गया हुआ श्याम भूखा होगा आज उसे प्रातराश (कलेवा) भी नहीं मिला है। और उसकी याद भी बड़ी देर से आई—

नैक गोपालै दीजो टेर।
आज सवारे कियो न कलेऊ सुरत भई अति बेर।
ढूंढत फिरत यशोदा मैय्या कहाँ कहाँ हो खेलत॥

वात्सल्यमयी माता पलक ओट नहीं करना चाहती और भोजन में विलंब भी सहन नहीं कर सकती—

प्रेम मगन बोलत नंदरानी।

× × × × × × × ×

भोजन बार अवार जानि जिय सुरत भई आतुर अकुलानी।
ढूंढ़त घर घर आँगन लौं तन की दसा हिरानी॥

दधि बिलोने और माता को खिजाने तथा गोपियों के उपालम्भ के पदों में परमानन्ददासजी तथा सूर में बहुत साम्य है। जिस प्रकार सूतिका भवन में सूर भगवदैश्वर्य का वर्णन किए बिना नहीं रह सके हैं उसी प्रकार दधि-मंथन-लीला में मथानी पकड़ने में वे समुद्र मंथन वाली पौराणिक गाथा को घसीटे बिना नहीं रह सके। सूर के प्रसिद्ध पद—'जब मोहन कर गही मथानी' में सूरदासजी ने एक वातावरण प्रस्तुत किया है, किन्तु परमानन्ददास जी उस कथा को बड़े अनायास ढंग से ले आए हैं—

गोविन्द दधि न बिलोवन देहीं।
बार बार पाँय परत यशोदा माँगत कलेऊ लेहीं॥

..

एक एकने होय देव-दैत्य सब कमठ-मंदराचल जानी।
देखत देव लक्ष्मी कंपी जब गही गोपाल मथानी॥

सूर के समुद्र मंथन वाले पद को पढ़ने से पाठक को एक लोकोत्तर घटना की कल्पना होने लगती है और वह कवि-मंथन के साधारण से आनन्दमय वातावरण से ले जाकर पाठक को एक माहात्म्यमय आतंकपूर्ण मनोराज्य की स्थिति में पहुँचा देते हैं जहाँ अलौकिकता अथवा लौकिकता से परे की स्थिति का भान होने लगता है परन्तु परमानंददासजी ने ऐसा नहीं किया है। भगवान् के ऐश्वर्यद्योतन भाव का संकेत करना उनका मुख्य उद्देश्य है और कुछ नहीं। इस प्रकार बाल भाव के विविध चित्र जो हम सूर में पाते हैं परमानन्ददासजी में भी उसी गहराई के साथ मिलते हैं। उनके बाल और सख्य के चित्रण में विविध चेष्टाओं का वर्णन सूक्ष्म निरीक्षण बालमनोविज्ञान स्वभावोक्ति का चमत्कार बालकों की ईर्ष्या असूया रागद्वेष आदि उतनी ही तन्मयता उतनी ही विदग्धता और उतनी पूर्णता के साथ चित्रित हुए हैं जितने सूर में। अन्य अष्टछापी कवियों से वे बाल लीला के चित्रण में निस्सन्देह अधिक सफल हैं।

गोदोहन और गोचारण के प्रसंगों में वे बड़ी गोप बस्तियों का घरेलू वातावरण ले आए हैं जो प्रायः सर्वविदित और सर्वकथित है किन्तु उनकी मौलिकता उनकी अभिव्यक्ति और सूक्ष्म निरीक्षण में वात्सल्य रस को स्वतंत्र रस-रूप मिल गया है। सूर के उपरान्त वात्सल्य रस का सफल परिपाक परमानन्ददासजी में ही मिलता है। इन दो सागरों ने वात्सल्यरस की परिपक्वता को जिस कोटि पर पहुँचाया है उस सीमा तक हिन्दी का कोई अन्य कवि कदाचित् ही पहुँचा हो। तथाकथित सभ्य जगत से दूर जनसंकुलता से नितांत निरपेक्ष गोप बस्तियों में जो एक आत्मीय भाव और निजी वातावरण होता है उसका सफल चित्रण कवि ने है। वहाँ परस्पर के आदान प्रदान सभी क्षेत्रों में चला करते हैं। उनमें पलपल पर पराश्रयमान अथवा परस्पर सहायकता का वातावरण होता है। कवि ने ऐसा ही वातावरण प्रस्तुत करने की भरपूर चेष्टा की है। गोपी श्रीकृष्ण को बुलाने आती है क्योंकि उसकी गैया उन्हीं से परच गई है अतः कृष्ण ही आवे दुह सकेंगे।

दुह पठिवाव स्यामसुन्दर तुम्हरे कर पहिचाने।
ऊँचे कान करत चौंक देखत हुमकि हुमकि होत खरी।

गोपी वहाँ देखने जाना चाहती है। कृष्ण के मुख देखने से भीनी हो जाती है। अतः वह एक क्षण के लिए सबेरे सबेरे मुख देखने ही चली आई है।

(१) काल मुख देख गई ही छवि देखन उबरो भयो है विकाई।
दिन ते दूनी काम भयो घर गागर बहिया आई।।

सबेरे सबेरे आने का एक और बहाना—

(२) तुम्हारे खरिक बताई हो चुकमाव हमारी गैया।

अपनी गायों को ही ढूँढने वे कृष्ण के खिरक में चली आईं। कैसा स्वाभाविक एवं मनोरम वातावरण है।

गोपाल की गाय बड़ी सुन्दर है। उस पर भी शृंगार बहुत अच्छा हुआ है अतः गोप वृन्द किलकारी मार रहा है।

नीकी देखे गोपाल की गैया।
दूबै ऐन ब्याय जब ठाढ़े बछ जु किलारी नीकी गैया।

परमानन्ददासजी में रस-व्यंजना—

परमानन्ददासजी मुख्यतः प्रेम के कवि हैं। उनकी काव्य-सीमा जन्म-महोत्सव से मथुरागमन और उद्धवागमन तक है। तदनंतर उनकी भक्ति-भावना आत्म-निवेदन एवं दैन्य सम्बन्धी पद हैं अतः विषय की रुचि से निश्चित परिधि में रहते हुए भी सभी मुख्य रसों को थोड़ा बहुत ले लिया है। एक दो रसों को छोड़ वे सभी रसों के कवि हैं। सूर की भाँति शृंगार और वात्सल्य का रस सिद्ध कवि उन्हें कहा जा सकता है। उनका काव्य प्रेम तत्त्व से भर पूर है। अतः प्रेम के विविध रूपों अनुभावों एवं उनके मर्म अथवा मार्मिक पक्षों के उद्घाटन में उनकी वृत्ति खूब रमी है अन्यत्र नहीं। रसराज शृंगार के उभय पक्षों-संयोग और विप्रयोग—की विविध अनुभूतियों में ही उनकी चित्तवृत्ति रमी है। अतः उनके सागर में शृंगार रस की ही प्रधानता है। हास्य करुण विप्रलंभ वीर अद्भुत और शान्त अल्प मात्रा में हैं। तथा रौद्र भयानक का अभाव सा है। यहाँ उनके काव्य में शृंगार रस के परिपाक की चर्चा की जाती है।

किशोरावस्था की सरस भूमि में पदार्पण करते वही 'प्रेम' अथवा पूर्व राग नाम की उस वृत्ति का हृदय में उदय होने लगता है जिसमें एक विचित्र मादकता विशिष्ट उल्लास विचित्र सम्मोहन होता है। यह जीवन-धन का वसंत है। इसी से मानव की अनादि वासना नवीन रूप में उद्बुद्ध होकर दूसरे को पाने का तकाजा करती है।

इस 'एकोऽहं बहुस्याम्।' भावना को लक्ष्य करके महाकवि प्रसाद ने कामायनी में लिखा है:—

"नव हो जगी अनादि वासना।
मधुर प्राकृतिक भूख समान।
चिर परिचित सा चाह रहा था
द्वन्द्व सुखद करके अनुमान॥

हृदय की यह अनादि वासना जो द्वन्द्व की चाह रखती है, साहचर्य के लिए छटपटाती है। यह साहचर्य ही राग अनुराग स्नेह प्रेम अनुरक्ति प्रणय आदि विविध दशाओं में होता हुआ अन्त में परिणय में पर्यवसित हो जाना चाहता है। युगों के बिछुड़े युग्म मिल जाते हैं। भारतीय संस्कृति इसका मूल कारण प्राक्तन संस्कार बताती है। वस्तुतः इसमें कोई स्थूल हेतु तो दृष्टिगोचर होता नहीं।

हृदय की इस तरल अनुभूति के लिए ही भवभूति ने कहा था—

"व्यतिषजति पदार्थान् आन्तरः कोऽपि हेतु

'कोऽपि हेतु' को स्पष्ट करने के लिए किसी ने साहचर्य का पल्ला पकड़ा किसी ने सौन्दर्य का और किसी ने संस्कार का। परन्तु गुण-श्रवण चित्रदर्शन और स्वप्न दर्शन को भी अनुराग की उत्पत्ति के कारण मानते हुए 'कोऽपि हेतु' के गूढ़ कारणों का उल्लेख काव्यों में मिलता है।

कहति है राधिका अहीरि।
भानु गोपाल हमारे आवहु ज्यौंति जिमाऊं खीरि॥
बहुत प्रीति अंतर मन मेरे, नैन ओट दुख पाऊं॥
तुम हमरो कोऊ बिलगु नहीं मानै लरिकाई की बात॥
परमानन्द प्रभु नित उठि आवहु भवन हमारे प्रात॥

राधा की विनय है कि कृष्ण उसके यहाँ नित्य प्रातः काल पहुँचा करें। बालकपन की अवस्था होने से उनकी परस्पर प्रीति पर कोई संदेह भी नहीं कर सकेगा। राधा पल भर भी उनको नैनों से ओझल नहीं कर सकती यह प्रीति बढ़ चली —

राधा माधौ सों रति बाढ़ी।

अब सीमा आ पहुँची है। कामोद्भव हो चला है। स्वरूप-सौन्दर्य से हटकर दृष्टि गुणों पर जा टिकी है।

"बाढ़ति निरखी आसुप्यारे की परमानन्द गुण गाढ़ी"

राधिका मुग्धा नायिका है, भगवान के स्वरूप पर भोली भाली मृगी की भाँति मुग्ध है सशंक नैनों से भी यमुना तट निकुंज अथवा किसी एकान्त वनस्थली में प्रतीक्षा करती रहती है —

हरि ज्यौं हरि को मधु चोखति काम मुग्धमति ताकी।

प्रेम की इस गहनता से अब परिणाम यह हुआ कि एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते। इस तन्मयता के कारण लोक निंदा का पात्र भी बनना पड़ रहा है —

राधा माधौ बिनु क्यों रहै।
एक स्याम सुन्दर के कारन और सबनि की निंदा सहै॥
यह प्रणय परिणय में पर्यवसित हुआ और राधा परिणीता होगई।
"राधे बैठी तिलक सँवारति।
अंतर प्रीति स्याम सुंदर सौं प्रथम समागम केलि सँभारति॥

परमानन्ददासजी ने राधा को स्वकीया मानकर शृङ्गार के ये मोहक चित्र प्रस्तुत किए जो बरबस पाठक को मुग्ध कर देते हैं।

नववधू संकोच शीला राधा को मोहन बातों में फुसला लेते हैं —

"मोहन लई बातन लाई।
गुप्त प्रीति बिन प्रगट कीनै लाल रही अरगाई॥

परमानन्ददासजी ने कृष्ण का अनुनायकत्व सिद्ध किया है। सूर ने जहाँ अकेली राधा की चर्चा करके एकाध सखी से दूतीत्व कराया है वहाँ परमानन्ददासजी ने चार सखियों की स्याम

१ नित हरत देखन ही पै रहिए।
तुम बहु नायक चतुर सिरोमनि मेरी बाँह दृढ़ गहिए।
परमानन्द स्वामी मन मोहन तुम ही निरबहिए॥

स्थान पर चर्चा की है। ये चार सखियाँ सम्प्रदाय में चार स्वामिनियाँ मानी जाती हैं—ललिता, चन्द्रावली विशाखा और राधा।

होली के पद में ये राधा रानी का शृङ्गार करती हैं। अतः राधा रानी मुख्य हैं।

१—पीत पिछुरिया लै कोई चरनन चापतडोली ललिता।

२—यह विध राधा रानी नई बांवरे ललिता।

३—विदुराय वचन सो बोली चन्द्रावलि सुघ पूरी॥

४—आज माई सून्दर हैं व्रजनाथ।

सब सोभित वृषभान नन्दिनी ललिता विसाखा साथ।

५—डोल चढ़न को अमत इलधर वीर।

...

वाय भाग राधिका विराजत पहरे कुसंभी चीर।

६—परमानंद प्रेम विवश हमसौं सुन्दर को है कहि ललिता।

अतः कृष्ण की अन्य स्वामिनियाँ राधा से ईर्ष्या करती हैं। यदि कभी कृष्ण अन्यासक्त हो जाते हैं तो राधा मान करती है। राधा की मान-लीला बड़ी विकट है। रस सिद्ध कवि सूर तो राधा की मान लीला के सर्वोपरि गायक हैं। परमानन्ददासजी ने भी मान विषयक अनेक पद लिखे हैं।

राधा मान करके बैठी है। कृष्ण उन्हें बार बार बुलवाते हैं। दूती राधा के सामने कृष्ण की विह्वलता का वर्णन करती है।

चलि राधे तोहि स्याम बुलावै।

यह सुनि देखि वेनु मधुरे स्वर तेरोइ नाम लै लै गावै॥

देखो वृन्दावन की सोभा ठौर ठौर द्रुम फूले।

कोकिल नाद सुनत मन आनन्द मिथुन विहंगम भूले॥

उनमद जोबन मदन कुलाहल यह औसर है नीको॥

परमानन्द प्रभु प्रथम समागम मिल्यो भावतो जी को॥

बाह्य प्रकृति में भी मिथुन भाव व्यक्त हो रहा है राधा फिर भी नहीं पसीजती। चतुर दूती सचेत करती है—

फिरि पिरि पछितायगी हो राधा।

कित तू, कित हरि कित यह औसर करत प्रेम रस बाधा।

बहुरि गर गोपाल मिलै कब करिहैं कब इन कुंजन बसि हैं।

यह अवसर बीते बिन अपनी चतुर नारि सुनि हँसि हैं॥

रसिक गोपाल सुनत सुख उपजै आगम निगम पुकारै।

परमानन्द स्वामी पै आवत को यह नीति बिचारै॥

१ राधा प्यारी सिंगु कर्यो री

...

पिय के चाहे प्यारी कोनैं अनू मरम लौ कस्यौ

कृष्ण कालिंदी तट पर बैठे हुए राधा की उत्कट प्रतीक्षा कर रहे हैं, कभी प्रसाद का बीड़ा भेजते हैं तो कभी नाम ले लेकर गाते हैं—

बैठे लाल कालिंदी के तीरा।
तैं राधे मोहन पठयौ है यह प्रसाद को बीरा॥

कृष्ण राधा से अपार प्रेम करते हैं उनका प्रेम विकार ग्रस्त नहीं है अतः राधा का मान व्यर्थ है—

मान तौ तासौं कीजे जो होई मन बिपरई।

परन्तु फिर भी राधा का मान नहीं दूर होता। दूती ने दूसरा उपाय सोचा। वह राधा की प्रशंसा करती हुई कहती है कि राधा बड़े भाग्यशाली है। मुरली-रव मे कृष्ण राधा का ही तो नाम ले ले कर बुला रहे हैं—

राधा माधौ कंत बुलावै।
सुनि सुंदरि मुरली की घोर तेरो नाऊं लै लै गावै॥
कौन सुकृत फल तेरो बदन सुधाकर ध्यावै।
कमला को पति पावन लीला जोबन प्रगट दिखावै।
अब जनि सुघर बिलंब न कीजै चरण कमल रस लीजै॥

परमानन्ददासजी ने राधा के मान विषयक अनेक पद गाए हैं। संयोग शृंगार में वे सुरतांत वर्णन कर गए हैं।

'सुरत समागम रमि रह्यो नवी कमला के रैन।

नायिका भेद की दृष्टि से उनकी राधा के निम्नांकित रूप मिल जाते हैं—

अज्ञात यौवना—

मन हर लै गए नंदकुमार।
बालक दृष्टि परी बरजन तन देह न पायी बदन सुधार।
हौं अपने घर सुबठौ बैठी पोवत ही मोतिन को हार।
कांकर डारि हार है निकसे बिसर गयी तन करत सिंगार॥
कहा री करौं कवौ विधि है गिरधर जिहि मिस हौं बटोरा कर जाऊं।
परमानन्द प्रभु ठगौरी अचानक मदनगुपाल भावती नाऊं॥

ज्ञात यौवना—

चौंकहि हरि आय गए।
हौं दरपन लै मांग सँवारत जानी हु नयना एक भए॥
नैक चितै मुसिकायहु हरि मेरे प्रान चुराई गए।
अब ती भई है और दिनन की बिसरे देह सिंगार ठये॥
तबते वपुष सुहाय बिरम मन ठगी नंदसुत स्याम गए।
'परमानन्द प्रभु' की रति बाढ़ी गिरिधरलाल आनन्द भए॥

पौढ़े रंगमहल ब्रजनाथ ।
रंग रस की करत बतियाँ राधिका लै साथ ।।
दोऊ मौह रचाई अति जत पीवा मुखा भर बाथ ।
परमानन्दप्रभु काम आतुर मदन कियौ सनाथ ।।
पौढ़े हरि झीनों पट दै ओट ।

तथा—

संग ली वृषभानु तनया सरस रस की मोट ।।
अमर कंबल मयक मकरी हार मुक्ता तटंक ।
नीस पीत दोउ बसन बदसें लेत भरि भरि अंक ।।
हृदय हृदय सों अधर अधर सों नयन सों नयन मिलाय ।
भौंह भौंह सों तिलक तिलक सों सुबम सुबसों लपटाय ।।
मालती मद बाइ चपा सुभग जाती बकुल ।
दासपरमानन्द सजनी देत चुनि चुनि फूल ।।

स्वकीया राधा के संयोग वर्णन मे परमानंददासजी अष्टछाप के कवियों मे सबसे आगे है। सभी ऋतुओं मे संयोगात्मक वर्णन परमानन्दसागर मे उपलब्ध होते है। ग्रीष्म में सुगंधित पुष्प सुसज्जित शैय्या झीना पट शरद मे कुंज भवन में शयन शीत में उष्णोपचार आदि सभी का कवि ने विशद वर्णन किया है। उसी प्रकार बसंत में मदन-महोत्सव का उन्माद पूर्ण वातावरण परमानंददासजी के प्रेम काव्य का प्राण है। होली की रंगपाली फाग खेलने का उत्साह, राधा एवं गोपियो की वेश भूषा आदि के इतने मादक चित्र परमानंद दासजी ने प्रस्तुत किये है कि पाठक आत्मविभोर हो जाता है।

परमानददासजी में वियोग शृ गार—

प्रेम की कसौटी विप्रयोग है। बिना विप्रयोग के प्रेम की परीक्षा नही होती। इसी कारण शृ गार के दो पक्ष है—संयोग और विप्रलंभ। काव्य मे दोनो ही का होना अनिवार्य माना गया है तभी शृङ्गार रस का पूर्ण परिपाक हो पाता है। शृङ्गार के दोनो पक्षों—संयोग और विप्रलम्भ—के कारण उसे रसराज की उपाधि प्राप्त है। महाकवि भवभूति ने तो विप्रलंभ को ही महत्ता दी है।

> एको रसः करुण एव निमित्तभेदात् ।
> भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।।
> आवर्त बुद्बुद् तरंगमयान् विकारान् ।
> अम्भो यथा सलिलमेवहि तद् समस्तम् ।।

अर्थात्—

एक करुण रस ही निमित्त भेद से भिन्न होकर पृथक-पृथक परिणामो को ग्रहण करता है। जल के आवर्त बुद् बुद् तरंगादि जितने विकार है वे समस्त जल ही के तो है।[1]

तात्पर्य यह है कि भवभूति केवल एक करुण रस को ही प्रधान मानकर अन्य रसो को उसका (करुण का) आश्रित एवं रूपान्तर भाव मानते है। करुण रस का स्थायी भाव शोक है और शोक उसी के लिए होता है जिससे स्थायी रति अथवा प्रेम प्राप्त हो। प्रीति के अभाव

१ उत्तर रामचरित अ०—३ श्लो० ४७

मेरो छोटा पालने सोवै उचरक उचरक रोवै ।
अघासुर बकासुर मारे नैन निरंतर जोवै ॥
देहुरी उमगत गिर्यो री मोहन खोरि बात में लागी ।
परमानंद होत वहाँ ठाडे अद्भुत नंद जू की रानी ॥

उस जननी ने अपने प्राणवल्लभ प्रिय पुत्र के लिये बड़ी बड़ी मनोतियाँ मानी थी प्रतीक्षा का थी किन्तु निराशा ही हाथ लगी और उसे अंत में चिर वियोग का संदेश मिल ही गया। कृष्ण के मथुरागमन और उद्धव-सन्देश के इस प्रसंग को लेकर इन सरस भावुक कवियों ने हृदय की जिन सूक्ष्म मार्मिक वृत्तियों का उद्घाटन किया है वे हिन्दी साहित्य में ही क्या विश्व साहित्य में अमूल्य हैं।

वात्सल्य के इन मार्मिक चित्रों के अतिरिक्त परमानन्ददासजी ने तीनों प्रकार के विप्रलम्भ-पूर्वराग मान और प्रवास—के पद भी दिए हैं। पूर्वराग और मान के उदाहरण तो उनके संयोग शृंगार में मिल जाते हैं किन्तु प्रवास जनित विप्रलम्भ मथुरागमन और उद्धव संदेश में मिलता है। हिन्दी साहित्य में यही भ्रमर गीत के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी परम्परा भागवत से प्रारम्भ हुई है। कंसवध के उपरांत श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को नंद यशोदा गोप गोपी के पास अपना सान्त्वना-संदेश देकर भेजा है। यह प्रसंग दशमस्कंध के ४७वें अध्याय में है। भागवत में यह प्रसंग बहुत विस्तार के साथ नहीं है। न वहाँ गोपियों का तर्क अथवा वाद विवाद मिलता है। न ही कृष्ण के प्रति उपालम्भ। परन्तु सूर परमानन्दादि अष्टछाप के कवियों ने इसी प्रसंग को लेकर बड़ी बड़ी मौलिक उद्भावनाएँ की हैं। अपनी दिव्य कल्पना शक्ति के सहारे इन भक्तों ने उच्चकोटि की सहृदयता का परिचय दिया है। सूरदासजी का भ्रमरगीत तो पूरा एक स्वतंत्र काव्य-ग्रन्थ ही कहा जा सकता है। किन्तु परमानन्ददासजी का वर्णन विस्तृत न होकर भी अपनी मार्मिकता में बेजोड़ है। जिन गोपियों के साथ प्यारे श्यामसुन्दर ने मधुर लीलाएँ की उन्हें वे सहसा कैसे विस्मृत करते। अतः कुछ दिन तो प्रतीक्षा में व्यतीत हुए। फिर एक दिन मथुरा की ओर से एक रथ आता दिखाई दिया। रथ में प्यारे श्यामसुन्दर जैसा ही कोई बैठा दिखाई देता है। किन्तु बाद में पता चला कि वे कृष्ण सखा उद्धव हैं। उद्धव ने कृष्ण का संदेश दिया। वह संदेश क्या था—वियोग विधुरा गोपिकाओं के लिए चिर-वियोग का पीड़ादायक परवाना था। तन मन धन को वार देने वाली प्रेमस्वरूपा गोपिकाओं ने अपने प्राणाधार प्राणवल्लभ श्यामसुन्दर का सन्देश सुनकर जिस दारुण व्यथा पीड़ा व्याधि निर्वेद का अनुभव किया उसका वर्णन करना कठिन है। उनके जीवन का रस सदा के लिए समाप्त हो गया। तन मन की दशा बिगड़ गई और उन्हें पल भर कहीं भी चैन नहीं। केवल अतीत का स्मरण ही उनकी चेतना का आधार है। वियोग विह्वला गोपियों की आन्तरिक स्थिति वर्णनातीत है। किन्तु बाह्य दृष्टि में भी उनकी वेदना प्रकट हो रही है।

माई री चंद लग्यो दुख दैन ।
कहाँ वो देस कहाँ मन मोहन कहाँ सुख की रैन ॥

चलते समय अपने प्यारे कृष्ण को भलीभाँति देख नहीं पाए यही उनको बड़ा भारी पश्चात्ताप है।

चलत न देखन पाए लाल।
नीकें करि न बिलोक्यो हरि मुख इतनोई रह्यो जिय साल।

अपनी एक और असावधानी पर भी पश्चात्ताप है कि चलते समय उनसे रुक जाने के लिए किसी ने नहीं कहा।

चलत न काहू कह्यो रहनो।
बिन ब्रजनाथ भई हम व्याकुल पापी दुख सहनो॥

गोपियों को पश्चात्ताप है कि वे मन भर के गोपाल के साहचर्य का आनन्द नहीं उठा पाईं। अतः अब उनकी लीलास्थली में वे विलाप करती फिरती हैं—

जिनकी साध जिय ही रहिरी।
बहुरि गोपाल देख नहिं पाए बिलपति कुंज अहीरी॥

× × × ×

परमानन्द स्वामी दरसन बिनु नैनन नदी बहीरी॥

न उन्हें रात्रि में चैन है न दिन में। वे अहर्निश रोई रोई सी रहती हैं। उन्होंने अब श्रृंगार करना भी छोड़ दिया है। कितनी ही रातें बिना सोए बीत गई हैं।

कैसे दिन भए रैन सुख सोए।
अबु न सोहाई गोपालहिं बिछुरे रही पूंजी सी खोए॥
जब ते गए नन्दलाल मधुपुरी चीर न काहू धोए।
मुख तंबोर नैन नहिं काजर, बिरह सरीर बिगोए॥
ढूंढत बाट, घाट, बन परबत जहाँ जहाँ हरि खेल्यो।
परमानन्द प्रभु अपनो पीताम्बर मेरे सीस पर मेल्यो॥

कृष्ण का वह अतीत साहचर्य अथवा मधुर प्रेमालाप आज स्मृतिपथ में आकर विरह ताप को अधिकाधिक बढ़ा रहा है।

तुलसी की कौशल्या को राम के घोड़ों का बड़ा अंदेशा है। वे राजद्वार के वे घोड़े जिन्हें कभी राम ने अपने कर कमलों से पाले पोसे थे अब उनके बिना कैसे रहेंगे। इतना अवश्य है कि भाई भरत राम के पीछे उनकी सार सम्हाल करते हैं फिर भी राम यदि एक बार आकर देख जाते तो कितना अच्छा होता। परन्तु प्यारे श्यामसुन्दर की गायों के लिए तो इतनी भी सांत्वना नहीं। अब उनको देख रख और लालन पालन कौन करेगा।

माई को इहि भाय बरावै ।[1]
दामोदर बिन अपनु संभारिन कौन सिंगार करावै ॥
सब कोई पूछे दीपमालिका हम कहा पूजैं माई ।
राम-गोपाल जु मधुपुरी पठये भाग भाय सब जाई ॥
दाम दोहनी माट मथानी नाम जाहि को पूजै ।
ताके मिले बसें ये गोकुल कौन देनु कछ सूझै ॥
करत प्रलाप सकल गोपी जन मन मुकुन्द हरि लीनो ।
परमानंद प्रभु हमहि दूर बसि मिलन दोहिलो कीनों ॥

यदि इतना वियोग जन्य दुख देना था तो क्यों व्यर्थ ही इतना प्रेम फैलाया । और क्यों इतनी ममता का विस्तार किया था—

माधौ काहे को दिखाई काम की कला ।

गोपियाँ जानती हैं कि मथुरा अधिक दूर नहीं फिर भी कोई संदेश नहीं आता । क्या कोई पथिक उधर से नहीं आता । क्या पत्र लिखने के साधन उनके पास नहीं रहे । क्या उनसे कोई नया प्रेम हो गया है ? अनेक तर्क-वितर्क उनके मस्तिष्क में उठते हैं—

माधौ ते प्रीत भई गई ।
कितनी दूर यह मथुरा ते निकटहि कियो बिदेस ॥
कागद मसि खूटि गई पठियौ न सँदेस ।
हरिनी ज्यों जोबन मग ऊरध लेत उसास ।
यहै दसा देखि जाहु परमानंददास ॥

विरहिणियों को अन्य ऋतुओं की अपेक्षा वर्षा ऋतु विशेष दुखदायी होती है । उसमें भी अन्धकारमयी रात्रि में जब पपीहे की पी पी की रट लगती हो आकाश में मेघ बरसता हो चपला चमकती हो उस समय कोई मुरली का मधुर स्वर छेड़ दे तो सम्बन्ध-भावना से प्रिय का स्मरण कितना तीव्र हो जाता है कि रात्रि कटनी कठिन हो जाती है । और भ्रम से गोपी अपनी शैया छोड़ भाग उठती है—

रैन पपीहा बोल्यो री माई ।
नींद गई चिंता चित बाढ़ी सुरति स्याम की आई ॥
सावन मास देखि बरखा रितु हौं उठि आँगन धाई ।
गरजत गगन दामिनी दमकत तामें जीऊ डराई ॥
राग मलार कियो जब काहू मुरली मधुर बजाई ।
बिरहिन बिकल दासपरमानंद धरनि परी मुरझाई ॥

---

१ तुलना कीजिये—

राघौ ! एक बार फिर आवौ ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावौ ।
जे पय प्याइ पोखि कर-पंकज बार बार चुचुकारे ॥
क्यों जीवहिं मेरे राम लाडिले ते अब निपट बिसारे ।
भरत सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे ॥
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम मारे ॥
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं बन कहियो मातु सँदेसो ।
तुलसी मोहिं और सबहिन ते इनको बड़ो अँदेसो ॥ गीता० अ० ८८

अब तो कृष्ण का पत्र भी पढ़ना दूभर हो उठा है।

पतिया बाँचि हू न आवै।
देखत अंक नैन जल पूरे गद्गद प्रेम जनावै॥

उसकी स्थिति व्याकुलता की चरम सीमा को पहुँच गई है। गोपी अपने तन मन की दशा को भूल चुकी है। उसकी दशा फूटे खिलौने जैसी हो गई है। चित्त स्थिर नहीं—

व्याकुल बार न बाँधति छूटे।
जबते हरि मधुपुरी सिधारे उर के हार रहत सब टूटे॥
सदा अनमनी बिलख बदन अति इहि विधि रहत खिलौना से फूटे।
बिरह बिहाल सकल गोपीजन अमरस मनहु बटुकन लूटे।
जल प्रवाह लोचन ते बाढ़े बचन सनेह अभ्यंतर घूटे।
परमानंद कहीं दुख कासों जैसे चित्र लिखी मति टूटे॥

सूरदास की तरह परमानंददासजी की गोपिकाएँ तर्क अथवा व्यंग करने वाली किंवा उपालंभ देने वाली नहीं हैं। अपितु वे ऊधो को एक अत्यन्त आत्मीय सुजन मानकर दिल की बात कहने बैठ जाती हैं—

ऊधो नाहिन परत कही।
जबते हरि मधुपुरी सिधारे बोहोत ही बिथा सही।

इस प्रकार परमानंददासजी के वियोग शृंगार में जो सरस गम्भीर मार्मिक प्रेमानुभूति है। वह पाठकों को आत्मविभोर करके एक अनिर्वचनीय स्थिति में ले जाती है। उन्होंने सूर की भाँति वियोग की सब नहीं तो बहुतसी अंतर्दशाओं का चित्रण किया है। थोड़ी सी इस प्रकार हैं—

अभिलाष—

सखिरी ता दिन आवन दैहौं।
जा दिन नंदनंदन के नयना अपने नैन मिलैहौं॥

तथा—

कान्ह मनोहर मीठे बोलै।
मोहन मूरति कब देखौंगी सरसिज चंचल डोलै॥
स्याम सुभग तन चर्चित चंदन पहिरे पीत निचोलै।

चिन्ता—

कमल नयन बिन धीर न आवै।
अहनिस रसना कान्ह कान्ह रट बिलख बदन ठाढ़ी जोवत बट।
तुम्हरे दरस बिनु वृथा जात है मेरे ऊरज धरे कंचन पट॥

स्मृति—

जीय की बात जियही रही री।
बहुरि गोपाल देख नहीं पाये बिलपति कुंज अहीरी॥
एक दिन सो जु सखी इहि मारग बेचन जात दही री।

कबहुँक निबिड़ तिमिर आलिंगन कबहुँक पिक सुर गावै ।।
कबहुँक संभ्रम क्वासि क्वासि कहि सबहि हिलमिलि जावै ।।
कबहुक नैन मूँद अन्तर मनिमाला पहिरावै ।
मृदु मुसुकान बंक अवलोकनि चाल छबीली भावै ।
एक बार जिहि मिलहिं कृपा करि सो कैसे बिसरावै ।।
परमानंद प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे बिरह गंवावै ।।

मरण—

प्रीति तो काहू सों नहि कीजै ।
बिछुरे कठिन परे मेरी आली कहो कैसे करि जीजे ।।

इस प्रकार परमानन्ददासजी ने गोपी विरह पर बड़े अनूठे सीधी सादी उक्ति वाले अनेक भावपूर्ण पद लिखे हैं जो उनकी गहरी प्रेमानुभूति के परिचायक हैं। परन्तु वे हैं मुख्यतः युगल विहार के उपासक। उनकी राधा-कृष्ण-केलि-वर्णन पुरस्सर है। अतः वे मुख्यतः संयोग शृंगार के ही कवि माने जायेंगे। लोक दृष्टि से भले ही वे मर्य्यादा बाह्य माने जायें परन्तु एकान्त-भावना के क्षेत्र में उनकी भावधारा प्रेम-लक्षणा-भक्ति प्रधान है। परमानन्ददासजी सूर की भाँति मुख्यरूप से वात्सल्य और शृंगार के ही रससिद्ध कवि हैं फिर भी उनमे अन्य रस मिल जाते हैं।

हास्य—

परमानन्ददासजी के बाललीला परक पदों में हास्य के अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं। कृष्ण किसी गोपी की खिड़क मे पहुँच गए हैं। गोपी को परेशान करने के लिए खिड़क का दरवाजा खोल कर बछड़े खोल दिए और गायों को दूसरों की गायो में मिला दिया। इससे पूर्व गोपी को दोहनी ढूँढने में व्यस्त कर दिया—

ढोटा मेरी दोहनी दुराई ।
द्वार उघारि खोल दिए बछरा बैरत गैयाँ दुरवाई ।
हौं पचिहारी कह्यौ नहि मानत करवत नाक आई ।।

एक और हास्य—

कृष्ण एक गोपी के घर में घुस गए हैं, माखन खाकर चिकना पुराना मटका फोड़ दिया। जब माता को उलहना देने गोपी आई, तब श्रीमान् पहिले से ही वहाँ उपस्थित थे।

ऐसे लरिका कतहुँ न देखे बाट घुमावि आऊ की नाई ।
माखन चोरत भाजन फोरत उलटि गारि दै मुरि मुसकाई ।

....

पाछे ठाढ़े मोहन चितवत धीरे ही ते चारुयी नाई ।।
परमानन्ददास को ठाकुर जन्मो चहत चोरी जाई ।

कभी-कभी मक्खन खाकर दूध लुढ़का कर, दही शरीर से लपेट कर घरके बच्चो पर मट्ठा छिड़क कर भाग जाते हैं।

गर्जन तर्जन भुजा ठोकना आदि अनुभाव है। हर्ष गर्व असूया उग्रता धैर्य स्मृति तर्क आदि संचारी होते हैं। मथुरा में धनुष यज्ञ के अवसर पर इसकी व्यंजना हुई है।

काहू को मारग में अब खेलत।
गजराइ को मारो हाथी मावत असुर लपेटत॥
कहत ग्वाल सब सखा नंद के मल्ल परस्पर भुज ठोंकत।
कस बस को परिचित करिहैं कौन भरोसे रोकत
माहिम सुनी ? पूछत मारी तुमारखी अब कैसी।
परमानंददास को ठाकुर यह गोपाल पेरेली॥

भयानक तथा बीभत्स के उदाहरण परमानंददासजी के उपलब्ध पदों में नहीं मिलते। वे कोमल सरस पवित्र भावों के कवि थे संभवतः उनमें इन रसों का अभाव हो।

अद्भुत—

कैसो माई अचरज उपजै भारो।
पर्वत लीयो उठाई अब लौं सात बरस को बारी॥
सात कोस गिरि हस्टक ही माने बाम पानि पर धार्यो।
अति सुकुमार नंद को बारो कैसे बोझ सहार्यो।
बरखे मेघ महा प्रलय के किलते कोप उबार्यो॥
गोकुल ग्वाल गोप सब राखे मघवा गर्व प्रहार्यो।
भक्त हित अवतार लेत प्रभु प्रकट होत भुव धार्यो।
परमानंद प्रभु को बल कहए बिन गोवर्धन धार्यो॥

और भी

महा काय गोवर्धन पर्वत एक ही हाथ उठाय लियो।
देवराज को गर्व हर्यो हरि अभय दान ग्वालन दियो।
— — — —
अर्जुन विरछ खिलाक मे तोरि आपन धाम जडुवल बंधाये।
परमानंददास को ठाकुर जाको गर्व मुनि गाये।

तथा—

देखो गोपालजू की लीला ठाटी।
सुर ब्रह्मादिक अचरज हूँ है जसुमति हाथ लिये रजु साटी।
पै सब ग्वाल प्रकट कहत है स्याम मनोहर खाई माटी।
बदन उघारि भीतर देख्यो त्रिभुवन रूप बराटी।
वेदन के गुन वेद बखाने वेद सहस मुख बाटी।
कह्यो न जाय अंत अन्तरगति बुद्धि न प्रवेस कठिन यह घाटी।
जनम करम गुन स्याम के बखानत समुझि न परै गूढ़ परिपाटी॥
जाके सरन भये भय नाही तो बिनु परमानन्द खाटी।

शांतरस—

परमानंददासजी के भक्ति और दैन्य परक पदों मे शांत रस ओत प्रोत है। उनमें संसार की असारता जीवन की नश्वरता के साथ भक्ति की एक मात्र सरसता झलक रही है।

यही कृष्ण कथा जो भारतीय वाङ्‌मय के अमर गायक महाकवि व्यास की समाधि भाषा (श्रीमद्‌भागवत) मे गाई गई है इन अष्टछाप के भक्त गायकों के हाथ में पड़कर अधिकाधिक मधुर, रसात्मक एवं मादक बन गई है। यही परमानन्ददासजी का भी काव्य विषय रहा है। उसमे भी भगवान की बाललीला जिसमे कवि ने अपने मानस लोक मे प्रत्यक्ष किया हुआ सौन्दर्य चित्रण मनोवैज्ञानिक तथ्योद्‌घाटन सूक्ष्मनिरीक्षण चित्रोपमता आदि उपलब्ध होते है।

परमानन्ददासजी आदिकालीन कवियों या रासोकारों की भांति न तो अत्यंत अतिरंजित अथवा अस्वाभाविक है न सूफी कवियो की भांति अतिमानव न निर्गुण कवियों की भांति लोकोत्तर अथवा परात्परवादी। नहीं वे आधुनिक कवियों के समान किसी स्वप्न लोक के विचरणशील व्यक्ति। वे तो सीधी सादी स्वाभाविक कल्पना करने वाले भक्त कवि हैं। इनकी कल्पना इसी लोक की सब की अनुभूत और इतनी स्वाभाविक होती है कि पाठक तुरन्त ही तादात्म्य का अनुभव करता हुआ रसानुभूति मे निमग्न हो जाता है। वे गृहस्थ नहीं थे परन्तु गृह वातावरण स्त्रियो के वार्तालाप और व्यवहार शिशुओ की चेष्टाओं आदि के सजीव चित्रण में इतने पटु हैं कि देखते ही बनता है। उदाहरण के लिए हमारे नित्य जीवन में यह साधारण सी धारणा चली आ रही है कि सबेरे सबेरे किसी भले अथवा शुभ व्यक्ति का मुँह देखें तो सारा दिन आनन्द से बीतता है और कुछ न कुछ लाभ होता है। कवि ने इस तथ्य को एक गोपी के माध्यम से रखा है—

> लाल को मुख देखन को हौं आई।
> काल्ह मुख देखि गई दधि बेचन जात ही गयो है बिकाई॥
> दिनते दूनों लाभ भयो घर काजर बछिया जाई॥
>
> ....
>
> परमानन्द सयानी ग्वालिन सैन सकेत बुलाई॥

कृष्ण के मुख देखने से दही भी शीघ्र बिक गया और जल्दी बिका और घर पर काली बछिया गाय ने बियाई। यहाँ भक्तों के लिए स्वरूपासक्ति भी व्यंजित है।

शकट-उद्धार के समय मंगल-गीतो और बाजो के बीच कवि अपनी कल्पना के सहारे एकदम आकस्मिकता का वातावरण पैदा कर देता है।

> करत जाई प्रथम मंगलचार।
>
> ....
>
> मंगल गीत गावत हरखत हँसत कछु मुख मदन।
>
> ....
>
> वई जात गिरि पयी सकट चौंकि तब ही सबै उठि दौरे॥
> विस्मय भए बिलोकत नैनन पूछे है कछु औरे॥
> लिये उठाय कुँवर व्रजरानी रहसी कंठ लपटाई॥
> प्रेम विवस तब आपु न संभारत परमानन्द बलि जाई॥

इसी प्रकार कृष्ण के शिशु चेष्टा मे आंगन में चलने फिरने में मणिमय खंभों मे प्रतिबिंब देख कर किलकने में सूर की ही भांति परमानन्ददासजी ने अपनी दिव्य कल्पना

नंदलाल सों मेरो मन मान्यो कहा करैगो कोइरी ।
हौं तो चरन कमल लपटानी जो भावै सो होयरी ॥
× × × ×
जो मेरो यह लोक जायगो अरु परलोक नसायरी ।
नंदनंदन को तऊ न छाँड़ों मिलूंगी निसान बजायरी ॥

कवि केवल मानव-मनोविज्ञान का ही कुशल चितेरा नहीं था अपितु पशु मनोविज्ञान से—भी भलीभांति परिचित था। विभिन्न रंगों अथवा वस्तुओं को देखकर गायों को चौंकना पूंछ उठाकर भागना आदि चेष्टाएं परमानन्ददासजी ने बड़ी कुशलता से चित्रित की हैं। नव प्रसूता गाय (नैचिकी) वत्स के प्रति कितनी सजग एवं लालायित रहती है कि कहीं उसके बच्चे के पास कोई नवीन व्यक्ति तो नहीं आ रहा है यदि आ जाय तो वह मारने दौड़ती है।

तेरी सौं सुन सुनरी मैय्या ।
याके चरित तू नाहीं जानत खोजि बूझ सकरषण भैय्या ॥
ब्याई गाय बछरवा चाटत पीवत ही मात थन मैय्या ।
याहि देख धौरी छिमुकानी मारन को दौरी मोहि मैय्या ॥
है दीवन के बीच पर्यों मैं तहां रखवारे कोउ न रहैय्या ।
तेरे पुन्य सहाय भयो है अब उबर्यो बाबा नंद दुहैय्या ॥
यह जो उबटि परी ही मोपे धाय चली कहि दैय्या दैय्या ।
परमानंद स्वामी की जननी उर लगाय हँसि लेत बलैय्या ॥

गाय के बछड़े को लेकर यदि कोई चल दे तो गाय भी पीछे पीछे दौड़ी चली आती है।

किलक हँसि गिरधर ब्रजराई ।
भाज्यो सुबल लिए गोद बछरवा पाछे धौरी धाई ॥

परमानन्ददास जी ने सम्प्रदाय के अनुकूल ही गोधन को पूज्य बुद्धि के साथ महत्ता दी है। गायों का शृंगार किया जा चुका है।

घटा कंठ मोतिन की लटिकीं पीठिन को भावै चौंवार ।
किंकनी नूपुर चरन विराजत हींसें चमत सुढार ॥

गाय को सजा कर उसे घेर कर दौड़ाया जा रहा है। गाय जब भीड़ से तंग आकर भागती है तो पूंछ उठा देती है। फिर काली गाय अधिक बेताब होती है—

तब आंगन में धूमर ठेली ।
भवन पूंछ उचकाई सूधी ह्वै ग्वाल भजावत फिरत अकेली ॥

बहुत तंग आकर गाय चिढ़ जाती है पूंछ उठाकर सामने मारने दौड़ती है और छोटे बच्चे परस्पर बचने के लिए आपस में चिपट जाते हैं—

बिफरि गई धूमर और कारी ।
छूटत ग्वाल बछरवा ग्वालिन बदन पिछौरी डारी ॥
तब तो झुकि सन्मुख ह्वै आवी भली भांति संभारी ।
पूंछ उठाय कै दौरी दोउ कुंवर भरे अंकवारी ॥

कुचकारत चौंकत अंकुर मुख उर आनंद न समाई ।।
लपटे कर लपटात चोंह भर दूध धार लपटाई ।।

मात यशोदा दधि मन्थन कर रही है वक्षस्थल पर बड़ा हार झूम रहा है साथ ही आभूषणों के मणि चमचमा रहे हैं—

प्रात समय गोपी नन्दरानी ।
निमित कुच उपजात हियो उर दधि मंथत मथ माट मथानी ।।
× × × ×
रज्जु कर्षत भुज भ्राजत छवि भ्राजत मुदित श्यामसुन्दर मह ।
चंचल चपल कुच हारावली पेखी चकित ललित कुसुमाकर ।।
मणि प्रकाश नहिं दीप अपेक्षा सहजभाव राजत व्याजिन घर ।
× × × ×
परमानन्द चोप कौतूहल चाहीं तहीं अद्भुत छवि पेखी ।।

किशोर लीला में राधा कृष्ण के परस्पर प्रेम और संकेत बड़े ही सजीव और चित्रोपम पद मिलते हैं—

साँवरी बदन देखि मुसकानी ।
चली जात फिर चितयो मो तन तबते सब सयानी ।।
है या माट भरावत पैठ्यो हौं इतते गई पानी ।
कमल नैन अपरैना फेरयौ परमानन्दहि जानी ।।

कहीं-कहीं तो कवि ने चित्रोपमता के साथ साथ सूक्ष्म निरीक्षण की हद करदी है। अपने नटखट बालक की शरारतें सुनकर प्रसन्न होती है पर वह अपनी उस प्रसन्नता को या हँसी को बच्चे के सामने प्रकट नहीं करना चाहती—

अली य॰ बैनबे की बानि ।
मदन गोपाल लाल काहू की राखत नाहिन कान ।।
सुना यशोदा करत सुत के पहुँचे माट मथान ।
छोरि छोरि दधि डारि अजिर में चीन लई निज हान ।।
× × × ×
ठाढ़ी हँसत नंदजू की रानी मद मन्द मुसकानि ।
परमानन्ददास वह बोल बूझ लों भानि ।।

किशोर लीला में एक स्थान पर कवि ने चित्रोपमता सूक्ष्म निरीक्षण का बड़ा ही सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। कृष्ण राधा के सहारे खड़े हैं सखियाँ ताम्बूल अर्पण कर रही हैं मन्दस्मित और प्रेम की उस वर्षा में आनन्द का पारावार नहीं रहता। कवि ने बड़ा ही सरस शब्द चित्र प्रस्तुत किया है—

ठाढ़े रहे लाल राधा के घर ।
सुन्दर बीरी खवाति सुघरी हँसत केलि करत सुघर वर ।।
ज्यों चकोर चैरा तन चितवत त्यों प्यारी निरखत गिरिधर वर ।
कुंज कुटीर अरु वृन्दावन कोमल मोर कोकिला तरु पर ।।
परमानन्द स्वामी मन मोहन बलिहारी या लीला छवि पर ।।

श्यामबरन पीताम्बर काछे, मुख चंदन की खोर।
कटि किंकनि कलराव मनोहर ठुमक चलन चित चोर॥
कुन्तल अलक परत पलकनि पर जाइ प्रभालक निकसे कोर।
श्रीमुख कमल मद मृदु मुसकनि मेत कपि मन नंदकिसोर॥
मुक्तामाल रावत उर ऊपर चितए सखी चलै हठि मोर।
परमानंद निरखि सोभा ब्रजवनिता वारति तृन तोर॥

उपर्युक्त पद में श्रीकृष्ण के सौन्दर्य से अभिभूत होकर ब्रज वनिताओं का देहानुसन्धान रहित होकर उनके नख से शिखान्त सौन्दर्य में उलझने की चर्चा है। श्यामवर्ण पर पीताम्बर फिर थोड़ा ऊपर चलकर कटि किंकणी फिर वक्षस्थल पर कुन्तलों का अलक आगे श्रीमुख पर मन्दस्मित और फिर वक्षस्थल पर मुक्तामाल आदि का वर्णन कवियों के सूक्ष्मनिरीक्षण सौन्दर्यानुभूति और उसकी सजीव कल्पना का परिचायक है। श्रीमुख की मंद स्मिति तो भक्तों की संपत्ति है। यही उनके परम अनुग्रह की सूचिका है। भक्तप्रवर गोस्वामी तुलसीदास जी भी अपने आराध्य की इस आर्द्रभावात् मंद स्मिति को भूले नहीं और उसकी उन्हें भी पृथक चर्चा करना ही पड़ी।

हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा।
सूचित किरन मनोहर हासा॥ —रा० मा०

भगवान का यह मनोहारी स्मित उनके हृदय स्थित अनुग्रह का प्रत्यक्ष प्रमाण है। कितनी दिव्य एवं मनोवैज्ञानिक तथ्य पूर्ण उक्ति है।

यह सौन्दर्य बड़े-बड़े अपराधों को भी क्षमा करा देने वाला है। खर दूषण तो भगवान राम के नयनाभिराम सौन्दर्य को देखकर भगिनी के नासा-भंग जैसे अपराध को भी भूलने को तैयार थे क्योंकि उन्होंने ऐसे लोकोत्तर सौन्दर्य जीवन में नहीं देखा था फिर कृष्ण के दिव्य सौन्दर्य पर रीझने वाली गोपिकाएं माखन चोरी अथवा दूध के ढुलकाने के अपराध को क्या गिनतीं? प्रत्युत वे तो प्रतिक्षण इसी प्रतीक्षा में थीं कि एक बार उनका मनमोहन कन्हैया आ भर जाय और बाँकी झाँकी दिखला जाय वे उस पर सर्वस्व वार देने को प्रस्तुत थीं। सौन्दर्य के प्रति आत्म विनियोग अथवा सर्वस्व-दान के ऐसे दिव्य उदाहरण अष्टछाप और विशेषकर सूर तथा परमानन्ददासजी में ही प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं।

वात्सल्य भावापन्न सौन्दर्य वर्णन—

माता यशोदा के पालने में कृष्ण का लोकोत्तर सौन्दर्य ब्रजांगनाओं को आकर्षित किए था:—

बदन निहारत हैं नन्दरानी।
कोटि काम सत कोटि चन्द्रमा कोटिक रवि वारत जिय जानी॥

कोटि कन्दर्प-दर्प-दलन लावण्य ही ब्रजांगनाओं के आकर्षण का कारण है। नन्द भवन के मणिमय कुट्टिम में रत्न जटित पलना पड़ा हुआ है वह अब मुक्ताओं की झालरों से सुशोभित है उसी में माता यशोदा का लाल सोया हुआ है उसकी चितवन और विशाल नेत्र दर्शकों बरबस अपनी ओर खींच लेती है—

रतन जटित कंचन मनिमय नंद भवन अति पावनो ।
ता ऊपर गज मोतिन लट लटकत तहँ झूलत बलोरा को बावनो ।
किलकि किलकि बिहँसत मन ही मन चितवत नैन बिसालनो ॥
परमानन्द प्रभु की छवि निरखत भावत कछु न परत जब बावनो । पद सं ४४

सौन्दर्य के उस दिव्य धाम को देखे बिना ब्रज बालाओं को चैन नहीं पड़ता अतः उसे देखने किसी न किसी मिस से चली ही आती हैं । शिशु थोड़ा बड़ा हुआ है उसकी नन्हीं-नन्हीं दूध की दँतिया अत्यन्त प्रिय लगती है ।

"लाल नैन बलि जाऊँ बदन की सोभित नन्हीं नन्हीं दूध की दँतियाँ" जैसा चित्रोपम वर्णन शिशु के कुंचित केश मस्तक पर गज मुक्ताओं की लटकन दोनों मांसल हाथों से पादांगुष्ठ का पीना सभी कुछ मार्मिक है ।

माई री कमल नैन स्याम सुन्दर झूलत हैं पलना ।
× × ×
लाल के चरन तरुन अरुन कमल नीलमनि छवि जोती ।
कुंचित कच मकराकृत कुंडल बिच लटकत गज मोती ।
लाल अँगूठा गहि कमल पानि मेलत मुख माहीं ।
अपनी प्रतिबिम्ब देख पुनि पुनि मुसुकाई ॥

इस अनुपम सौन्दर्य और अद्भुत चेष्टाओं को कहीं नजर न लग जाय अतः माता राई नमक आग उतारा करती है ।

झुलावै सुत को महरि पलना करि लिये नवनीत ।
राई लोन उतारति वारति होत सकल मन प्रीति ।
सुरन बहु गोकुल मे सूते परमानन्द पुनीत ।

शिशु सौन्दर्य और बालकेलि के ऐसे अनेक उदाहरण परमानन्ददासजी के काव्य में भरे पड़े हैं । यही शिशु सौन्दर्य आगे वृद्धि पाता हुआ बाल पौगण्ड अवस्थाओं में होता हुआ किशोर अवस्था में पहुँचता है ।

दिव्य सौन्दर्य से भरा हुआ वे यौवन कितना उन्मादकारी हो गया । जो देखता है वहीं सुध बुध खो बैठता है । उस अनन्त लावण्य निधि लीला बिहारी के भुवन मोहन रूप पर ब्रजगोपिकाएँ क्यों न निछावर होतीं समवयस्का और बालाएँ मन न रोक सकीं—

सांवरो बदन देखि लुभानी ।
चले जात फिर चितयो मो तन हसते संग लगानी ।

एक बात भाव में ही लोटपोट हो जाने की अवस्था का वर्णन परमानन्ददासजी के काव्य में पदे पदे मिलता है बड़ी छोटी और समवयस्का सौन्दर्य मुग्धा गोपियां कृष्ण के साथ रहने की इच्छा करने लगी । उनके घर चले जाने पर कोई कहाने के मिस कोई मुरली के मिस कोई गायों बछड़ों के मिस जाने लगी जिसे कोई मिस न मिला वह पिछवारे आकर धीमे कण्ठ स्वर से बोल सुना जाती और प्यारा कन्हैया ऐसा दौड़ आता था—

ग्वालिन पिछवारे बह बोल सुनायो ।

ब्रज वनिताओं का कृष्ण प्रेम माहात्म्य ज्ञान पूर्वक पीछे है सौन्दर्य जन्य पहिले। उस सौन्दर्य पर उन्होंने अपना तन मन प्राण सब कुछ निछावर कर दिया था।

> हरि सों एक रस रीति रही री।
> तन मन प्रान समर्पन कीनो अपनो नेम व्रत ले निबहीरी॥

आश्चर्य और सौन्दर्यजन्य यह प्रेम ब्रज की नयनाभिराम प्रकृति मे पल्लवित होता रहा। यमुना के सुरम्य कछारों पर वृन्दावन के मार्ग मे वंशीवट अथवा मधुवन के उपवनों मे सौन्दर्य राशी कन्हैया अपनी प्यारी धूमर कारी धौरी गैय्यों को लेकर मुरली बजाता हुआ विचरता और अखिल ब्रज बालाएँ उसके आश्चर्य के लिए तरसतीं और अवसर देखतीं। उनका प्रेम प्रगाढ हो चुका था और आत्मसमर्पण पूर्ण। अतः उस शीतोष्ण शरद यामिनी में जबकि अखिल प्रकृति उल्लास से भरी हुई थी रजनीश आकाश में पूर्ण उदय था सम्पूर्ण ब्रज प्रदेश ज्योत्स्ना धौत था ऐसे दिव्य क्षण मे सौन्दर्यनिधि कृष्ण ने मुरली नाद किया। जिसको सुनकर चराचर स्तब्ध हो गया ब्रज बालाएँ जो जिस अवस्था में थी गृह पति सुत की चिंता छोड़कर दौड़ पड़ी और महारास अथवा उस रासलीला का श्रीगणेश हुआ जो कृष्ण साहित्य में सौन्दर्य माधुर्य और दार्शनिकता के लिए अपना निराला स्थान रखता है। अष्टछाप के कवियों ने सौन्दर्य वर्णन के जो तत्व पाछने से उठाए थे उन्हें विकसित और पल्लवित करते हुये महारास के वर्णन तक उसे एक विशाल वट वृक्ष का रूप दे दिया। महारास अपनी दार्शनिक महत्ता के अतिरिक्त अन्तर्बाह्य सौन्दर्य एक दिव्य संकलन है जो भक्ति साहित्य मे अपना अप्रतिम स्थान रखता है। सूरदास परमानन्ददासादि अष्टछापी कवियो ने सौन्दर्य को श्रीकृष्ण के चतुर्दिक केन्द्रित करने के उद्देश्य से प्रकृति का भी मनोमुग्धकारी सजीव चित्र अंकित किया है। यही उनका प्रकृति चित्रण है यह प्रकृति चित्रण उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत तो हुआ ही है। कहीं कहीं इन कवियो की स्वच्छ रुचि एवं स्वभाव का सूचक बनकर आलम्बन विभाव के अन्तर्गत भी आया है। परमानन्ददासजी के काव्य मे प्रकृति चित्रण दोनो ही प्रकार का मिलता है।

परमानन्ददासजी का प्रकृति चित्रण—

दिव्य लीलाओ के अधिष्ठान कोटि मन्मथ मथनकारी श्रीकृष्ण की क्रीड़ा भूमि ब्रज प्रदेश सभी प्राकृतिक साधनों से सम्पन्न है। निर्मल नीर नीलाभ प्रफुल्ल गंभीरा यमुना के तटवर्ती प्रदेश नाना पुष्पों पल्लवों से सुसम्पन्न नाना वल्लरियों से वेष्टित अभ्रलिह श्याम तमाल स्निग्ध विशाल रसाल हरित हिताल ताल कदम्ब जम्बू वट अश्वत्थादि पादप समूहों से युक्त नाना पुष्पों पल्लवों कुन्जों और निकुन्जों से वेष्टित निश्चय ही यह दिव्य भूमि लीलावतारी पूर्ण ब्रह्म की लीलास्थली होने योग्य थी अथवा यों कहना चाहिये कि लीला पुरुषोत्तम ने इस भूमि को अपनी क्रीड़ास्थली इसीलिये बनाया कि यह प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर थी। जो भी हो ब्रज प्रदेश के प्राकृतिक वैभव को और उसके सौन्दर्य को ब्रज साहित्य के सभी कवियो ने चित्रित किया है। कहा जाता है कि भागवतकार बादरायण से और श्रीमद्भागवत का प्रणयन दक्षिण में हुआ किन्तु ब्रज प्रदेश के प्राकृतिक वैभव और उसके वैयक्तिक सौन्दर्य से उनका हृदय भी अभिभूत था इसीलिये उन्होंने भागवत के प्रमुख वर्ण्य विषय भगवल्लीला के अतिरिक्त ब्रज का प्रकृति चित्रण भी किया है। श्रीकृष्ण लीला

घनघोर वर्षा भयंकर झंझावातों से युक्त यमुना उस मध्यरात्रि के भयावह वातावरण में प्राणाधिक प्रिय कन्हैया को गोकुल पहुँचाया गया। इसके उपरान्त भागवत में चित्रित प्रकृति आद्योपान्त अभिराम आकर्षक और हृदयहारिणी है। केवल दावानल की घटना में प्रकृति का रौद्र रूप वर्णित किया गया है जिसे भगवान् ने आत्मसात् करके पुनः एक नयनाभिराम अभिराम वातावरण की सृष्टि करदी है। बाल लीला और किशोर लीला के तो सम्पूर्ण माधुर्य का रहस्य ही प्रकृति की अभिरामता है। वृन्दावन गोवर्धन यमुना पुलिन वंशीवट मधुवन तालवन कुमुदवन बहुलावन राधा कुण्ड कृष्ण कुण्ड सुरभिकुण्ड, मानसी गंगा आदि का बड़ा ही अभिराम वर्णन मिलता है। एक स्थान पर भागवतकार लिखते हैं—

> वृन्दावनं गोवर्धनं यमुना पुलिनानि च।
> वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राम माधवयोर् प॥ १०।११।३६

वस्तुतः ब्रज प्रदेश प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर है। कृष्ण की यह लीला भूमि बाह्या-भ्यन्तर माधुर्य से सम्पन्न होने के ही कारण भक्त मन भावन है। आज भी यहाँ की वायु में भक्ति के वे मादक तत्व निहित हैं जो सरस प्रवासी को तीन लोक से न्यारा कर देते हैं।

वस्तुतः प्रकृति सौन्दर्य ऋतुओं की अनुकूलता पर बहुत कुछ निर्भर है भूमिमण्डल पर ब्रज प्रदेश की स्थिति कुछ ऐसे सम शीतोष्ण कटिबन्ध पर है जहाँ छहों ऋतुएँ अपने अपने समय से आकर रस सिंचन कर जाया करती हैं। इनमें भी दो ऋतुएँ वर्षा और शरद तो ब्रज में अमृत वर्षा ही करने के लिये आती हैं और इसी कारण भागवतकार ने दशमस्कंध में अन्य ऋतुओं की संक्षिप्त चर्चा की है और वर्षा तथा शरद की विस्तृत।

ऋतुओं एवं प्रकृति का मानव मन पर बड़ा विचित्र प्रभाव पड़ा करता है जिनके संस्कार जितने सूक्ष्म प्रबल एवं ग्राहक होते हैं उन पर बाह्य वातावरण का उतना ही गहरा प्रभाव पड़ता है और उससे वे गहरी प्रेरणाएँ प्राप्त किया करते हैं इसी कारण संसार का सर्वश्रेष्ठ कहलाने वाला साहित्य अरण्यों में ही उदय हुआ है और आरण्यक सभ्यता सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। अंग्रेजी कवि वर्ड सवर्थ तो आकाश में इन्द्र धनुष देखते ही हृदय में कुछ ऐसी गुदगुदी का अनुभव करने लगता था कि कविता उससे नदी के स्रोत की भाँति फूट पड़ती थी। इसी प्रकार अतीत से आज तक के विश्व साहित्य स्रष्टा प्रकृति के नित्य साहचर्य में रहकर ही चिरंतन काव्य का जन्म दे सके हैं।

ब्रज साहित्य के कवियों का ऋतु सौन्दर्य वर्णन सर्वदा से प्रसिद्ध रहा है। सूरदास परमानंददास आदि अष्टछाप के कवियों ने जिस तत्परता से भगवान का गुण एवं लीलागान किया है उतनी ही तत्परता एवं भावुकता के साथ उन्होंने प्रकृति चित्रण भी किया है। सूरदास जी ने प्रकृति में उल्लास विलास हर्ष शोक क्रोध शान्त आदि सभी भावों के दर्शन किए हैं। नंददासजी की रास पंचाध्यायी वाली प्रकृति तो मानो भागवत की रास महोत्सव वाली शरदोत्फुल्ल मल्लिकामयी राका-रजनी का विशद भाष्य ही है। इन कवियों में अधिकांश प्रकृति वर्णन उद्दीपन के रूप में पाया है पर कहीं कहीं आलंबन के रूप में भी मिलता है।

परमानंददासजी की प्रकृति में भी वही अष्टछाप और कृष्ण भक्तों की परम्परा का निर्वाह हुआ है साथ ही प्रकृति चित्रण के क्षेत्र में भी वे भागवत का अनुसरण नहीं छोड़ सके हैं।

यहाँ कतिपय उदाहरणों से उनका भागवत का अनुसरण तो सिद्ध किया ही जायगा। साथ ही उनके काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप देखने की चेष्टा भी की जायेगी। भागवत में जन्मकाल के समय के बाह्य प्रकृति के जिस वातावरण की यथावत् चर्चा ऊपर हुई है परमानन्ददासजी ने उसे उसी प्रकार व्यक्त किया है—

भादौं भादौं की अँधियारी।
गरजत गगन दामिनी कौंधति गोकुल चले मुरारी।
सेष सहसफन बूंदनिवारत सेत छत्र सिर तान्यौं॥

... ...

जमुना थाह भई तेहिं औसर आवत जात न जान्यौं।
परमानन्ददास को ठाकुर देव मुनिन मन मान्यौं॥

प्रस्तुत पद में प्रकृति उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत चित्रित की गई है। साथ ही "भागवत वर्णन" की यह पद पूरी पूरी छाया ग्रहण किए हुए है। क्रमशः कृष्ण बड़े होते हैं और गोचारण के लिए वन जाने लगते हैं। लीला में झाऊ के वन और यमुना के कछार की चर्चा की गई है। झुमुका अथवा हौआ के भय से वन की सघनता स्पष्ट व्यंजित होती है।

मैया निपट बुरी बलदाऊ।

... ...

मोहूकों चुचकार गये लै जहाँ सघन वन झाऊ।

दूसरे पद में—

देखरी रोहिणी मैया कैसे हैं बलदाऊ भैया।
जमुना के तीर मोहिं झुमुका बतायो री॥

प्रस्तुत पदों में कवि का लक्ष्य बाल लीला वर्णन करना है अतः प्रकृति की गौण चर्चा हुई है। साथ ही अभी श्रीकृष्ण की शिशु अवस्था है अतः मुक्त प्रकृति का आकर्षण अभी तक सीमित है ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है प्रकृति का आकर्षण बढ़ता जाता है। शिशु अवस्था में जहाँ बाह्य प्रकृति का नाम निर्देश होता था वहाँ अब धीरे धीरे उसका वर्णन बढ़ने लगा। प्रथम गोचारण हो चुका है अब तो साथ में छाक (मध्याह्न भोजन) बाँध दिया जाता है और कृष्ण बलदाऊ तथा सखाओं के साथ गोचारण के लिए नियम से जाने लगे हैं। पलाश के सघन वन में ढाक के पत्तों पर छाक परोस दी जाती है और सब मिलकर खा लेते हैं। यही नित्य का क्रम है। धीरे धीरे वर्षा ऋतु आती है कवि ने बाह्य वातावरण की पुनः सृष्टि की है—

घुमड़ रहे बादर कजरी निशा के वर्णन को रहे हैं छाय।"

ऐसे विषम वातावरण में कन्हैया को पुनः गोचारण के लिए बुलाया जाता है। इन स्थलों पर कवि का सूक्ष्म निरीक्षण और प्रकृति का आलंबन के रूप में चित्रण मिल जाता है। ऐसे स्थलों पर प्रकृति वर्णन किसी भाव की वृद्धि न करता हुआ केवल वर्णना त्मकता लिए हुए ही आता है।

परमानन्ददासजी ने प्रकृति को अधिकाधिक उद्दीपन रूप में चित्रित करने के लिए वर्षाओं के अनुकूल भगवान कृष्ण के शृङ्गार की कल्पना की है—

"मोहन सिर धरे कुसुम्भी पाग।"
तापर धरी कुल्हे सिर सोहत हरित भूमि अनुराग।
तैसे ही बन्यौं कुसुंबी पिछोरा कछी हाथ में लीने।
करत केलि गिरधरन लाल तहँ परमानंद रस भीने।

वर्षा कालीन सौन्दर्य में कवि का मन अत्यधिक रमा है। ऐसे स्थलों पर उस पर भागवत का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है—

भागवत—

श्रुत्वा पर्जन्य निनदं मंडूका व्यसृजन् गिरः।

...

अनुर्विसर्पंति माहेन्द्र निर्घुणं च गुहिम्यवात्।

...

एवं वन तद् वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत्।
गोगोपालैर्वृतो रन्तु सबलः प्राविशद्धरिः।

... ...

जलधारा गिरेर्नादासन्ना ददृशे गुहा।
क्वचिद् वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति॥
निर्विश्य भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशन॥

...

सम्भोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणान्वितः।

भाग १ २ ६,२१

परमानन्द सागर—

बादर बरन लगे हैं पानी।
श्याम घटा चहुँ ओर तें आवत देखि सबै रतिमानी॥
दादुर मोर कोकिला कलरव करत कोलाहल भारी।
इन्द्र धनुष बग पाँति श्याम छबि लागति है सुखकारी॥
कदम कुञ्ज घनघन श्याम घन छटा मरूमी सब।
गावत बैन मद अमृत सुधा सुर बरसत गगन मृदंग॥
रितु आई मन भाई सबै कीन करत केलि अति भारी।
गिरिधरवर की या छबि ऊपर परमानन्द बलिहारी॥

वर्षाकाल प्रेमी और प्रेमिकाओं के लिए संयोग दशा में अत्यन्त सुखकारी होता है—

देखो माई भीजत रस भरे दोऊ।
नवमंडल वृषभानुनंदनी होड़ परी है ओऊ॥

सुरंग चूँदरी है स्याम जू की भीजत है रस भारी ।
सिरवर पाग उपरना भींज्यौ या छबि ऊपर वारी ।।

...

परमानन्द प्रभु यह बिधि क्रीड़त या सुख की बलिहारी ।

प्रेममयी राधा मेघों से बरसने के लिए अभ्यर्थना करती है ।

बरसि रे सुहाव मेहा मैं हरि को संग पायो ।
भीजन दे पीतांबर सारी झड़ी झड़ी बूँदन आयो ।।
ठाढ़े हँसत राधिका मोहन राग मल्हार जमायो ।
परमानंद प्रभु तरुवर के तर लाल करत मन भायो ।।

बाह्य प्रकृति का नागर नंदकिशोर से सतत साहचर्य है । अतः भक्त प्रेमी ग्वालों की भी आकांक्षा है कि वे ब्रज प्रकृति बन जाते तो अच्छा था । इससे प्यारे कृष्ण का साहचर्य तो बना रहता ।

वृन्दावन क्यों न भए हम मोर ।
करत निवास गोवर्धन ऊपर निरखत नंद किशोर ।।
क्यों न भये बंशीकुल सजनी अधर पीवत घनघोर ।
क्यों न भये गुंजावन बेली रहत स्याम जू की ओर ।।
क्यों न भए मकराकृत कुंडल स्याम स्रवन झकझोर ।
परमानंददास को ठाकुर गोपिन के चित चोर ।।

परमानन्ददास संयोग शृङ्गार के रस सिद्ध कवि हैं अतः उनका प्रकृति और प्रकृति के उपादानों का वर्णन उद्दीपन के अन्तर्गत अधिक आता है । यमुना के तट पर गोप मंडल में गोपाल लाल नृत्य कर रहे हैं उधर वर्षाकाल के कारण मयूर भी नृत्य कर रहे हैं । कवि ने बड़ा ही सुन्दर साम्य उपस्थित किया है—

नाचे नाचे घनस्याम तान जमुना के तीरा ।
नाचत नट भेष धरे मदन जीरा ।।

आगे चलकर—

घरी एक मोरन की भाँति देख नाचत गोपाला ।
निरखत अति मेघ नीके मोहन नट लाला ।।
बरसत घन मंद मंद दामिनी दरसावै ।
रमकि झमकि बूंद परे राग मल्हार गावै ।।

...

बार फेरि भवति उचित परमानंद पावै ।।

अपने उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत परमानन्ददासजी ने कृष्ण के सौन्दर्य को ऐसा प्रस्तुत कर दिया है कि उसका मिला जुला रूप पाठक के ऊपर एक ऐसी विम्ब छाप छोड़ता है कि पाठक एक ऐसे दिव्य लोक में विचरण करने लगता है जहाँ उसको जगत की भौतिकता स्पर्श नहीं कर पाती ।

पावस ऋतु के साथ कवि ने विविध पक्षियों का भी यथा स्थान वर्णन किया है संयोग शृंगार में पावस ऋतु और वर्षा कालीन पक्षियों के कलरव का भावनाओं में भी बड़ा उद्दीपक प्रभाव माना है। परमानन्ददासजी ने इन वर्णनों में अपने सूक्ष्म निरीक्षण और विशेषज्ञता का तो परिचय दिया ही है साथ ही प्रकृति को उपमान के रूप में भी वर्णित किया है।

प्रथम पावस मास आगमन गगन घन गंभीर।
भये दामिनी दिसा पूरब अति प्रचंड समीर॥
तहाँ हंस चातक बन कुलाहल बचन अदभुत बोल।
गोपाल बाल निकुंज विहरत सखा संग कलोल॥
तहाँ बर्के दादुर मुख कोकिल मूक पावस धीर।
तहाँ नदी कूल अपार उमड़ी मिल बसुधा नीर॥
हरियारे तृन महि नन्द नन्दन अति मनोहर श्याम।
बन धाम के सब धेनु चारत नन्द के अभिराम॥
तहाँ कन्दरा गिरि चढ़े हेला करत बाल विनोद।
तहाँ आम जोवत वृक्ष कोटर मच्छिका मधु मोद॥

...

तहाँ चक्रवाक चकोर चातक हंस सारस मोर।
तहाँ सुआ बारस सरस मृ मी करत चहुँ दिसि रोर॥ (पद—७८८)

इस प्रकार कवि ने राधा कृष्ण केलि और हिंडोले के साथ बाह्य प्रकृति और उसके विविध उपकरणों—बीर बहूटी सुआ सारस हंस चातक मयूर—आदि की बड़ी सरस चर्चा की है। मानवत शैली का प्रकृति वर्णन भी जिसे आलम्बन विभाव के अन्तर्गत रखा जा सकता है वह परमानन्ददासजी में उपलब्ध होता है जैसे—

वाटिका सरोवर मध्य नलिनी मधुप करे मधुपान।
ऐसो नन्द गोकुल कृष्ण पाले अमर पति अभिमान॥
रचित हिंडोरे बकल वनिका कासमीरी खम्भ।
हीरा पिरोजा लाल लाये और बहु आरम्भ॥
बनी चित्र विचित्र सोभा तीर बनु सवान।
जैसे राम रावण युद्ध लीला देखि दा हनमान॥

रास लीला वर्णन में तो यह प्रकृति और भी मोहक हो जाती है। रास प्रकरण में कहा जा चुका है कि परमानन्ददासजी ने शरद् रास और बसन्त रास दोनों को ही मिला दिया है। अतः वासन्तिक शोभा एवं शारदीय शोभा का मिला जुला वर्णन कवि ने यत्र तत्र किया है—

उपवन वृक्षों में पुष्पों का खिलने नवीन कोंपलों के फूटने के साथ शारदीय रात्रि का भी वर्णन मिलता है—

"राधा माधो कंठ लुलावै"

... ...

सरद निसा सखी पूरन चन्दा देख बनैगो माई।

चन्द्रमा की किरनें सूर्यताप के सदृश विदित होती हैं।

ससि की किरन तननिसम लागत बासर निसा गई।
वृन्दावन की भूमि मामती स्याविनु छांडि दई॥

इस प्रकार चन्द्र चन्द्र-ज्योत्स्ना मलय सब कष्ट दायक हैं। वर्षा भी अच्छी नहीं लगती। सूर के बादल बरसने चले आए, पर श्याम नहीं आये।

बब ए बदराऊ बरसन आए।

परमानन्ददासजी की बदरिया ब्रज पर मौका पाकर दौड़ पड़ी है। वर्षा क्या कर रही है मानो वध्य घुमा रही है।

गसगस सास सलामन लामी बिधना बिरच्यौ बिहोरी।

...

परमानन्द प्रभु सौ क्यों जीवै वाकी बिछुरी जोरी।

इस प्रकार घन गर्जन पावस आगमन चातक रटन मत्त मयूर कूजन सभी विरह के उद्दीपक हैं। कष्टप्रद हैं—

मा हरि को सदेस न आयो।

...

घन गरज्यौ पावस रितु प्रगटी चातक पीऊ सुनायो।
मत्त मोर बन बोलन लागे विरहिन विरह जनायो॥

विरही जनो को यों तो पल पल युग के समान व्यतीत होता है किन्तु वर्षा, शरद और बसन्त विशेष दुखदायी होते हैं। वर्षा व्यतीत हुई, शरद रात्रि जिसमें कभी रास महोत्सव हुआ था और जिस चन्द्रमा से कभी अमृत वर्षा हुई थी अब वही शरद निशाएँ फीकी रसहीन निरानन्द हो गई हैं—

माई अब तो यह सरद निसा लागत है अति फीकी।
स्याम सुन्दर संग रहत तबही यै अति नीकी॥
ससि हर सताप कारी बरसत बिष बूंदे।
मारुतसुत सुभाव तज्यो दसौ दिसा मूंदे॥
परमानन्द स्वामी गोपाल परिहरि हम छिपाई।
प्रान पयान करन चाहत निकट कपट बिपाई॥

शरद के उपरान्त बसन्त और भी दारुण दुखदायी है—

मधु, माधौ नीकी ऋतु आई।

... ...

परमानन्द प्रभु मीन बसी ही नाथ कहाँ गौसैर लगाई।

सक्षेप में परमानन्ददासजी के प्रकृति चित्रण के विषय में निम्नांकित तात्पर्य निकाले जा सकते हैं:—

१—परमानन्ददासजी का प्रकृति चित्रण कुछ तो सामान्य सापेक्ष और कुछ निरपेक्ष है। उन्होंने प्रकृति को आलंबन और उद्दीपन दोनों ही रूपों में चित्रित किया है

आचार्यों की यह प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य में भी अवतीर्ण हुई और कुछ कवि लोग केवल काव्य में कला पक्ष को ही महत्व देने के लिये कविता करते थे। रीतिकालीन कवियों में यह प्रवृत्ति बहुत पाई जाती है परन्तु हिन्दी साहित्य के भक्त कवियों ने कविता के इन बाह्य उपकरणों अथवा कला पक्ष को प्रधानता देने के लिये कविता कभी नहीं की। भक्त कवियों का उद्देश्य सीधा सादा प्रभु गुण गान था। अपनी एकान्त भक्ति की तन्मयता में उनके मुख से उद्गार रूप जो काव्य निकलता था उसमें रस भाव प्रवाह तन्मयता के साथ साथ स्वत्व अलंकार गुण आदि अपने आप सिमट आते थे। उन्हें उनको लाने अथवा बरबस ठूसने की तनिक भी परवाह नहीं होती थी। कबीर, सूर, तुलसी मीरां एवं अष्ट छाप के अन्य कवि ऐसे ही भक्त कवियों की श्रेणी में आते हैं जिनके पीछे काव्यत्व आज्ञाकारी भृत्य की भांति अनुगमन करता था। इन रससिद्ध भावुक कवियों ने काव्य के गुण दोष की लेशमात्र चिन्ता नहीं की है, फिर भी उनका काव्य विश्वसाहित्य में परिगणित होता आया है।

परमानंददासजी में अलंकार-विधान—

भक्तप्रवर परमानंददासजीके सागर में भी अलंकार विधान अनायास ही हुआ है। अलंकार दो प्रकार के होते हैं। शब्दालंकार और अर्थालंकार। सागर में दोनों ही प्रकार के अलंकारों का प्रयोग पाया जाता है। और वह भी बड़े स्वाभाविक रूप में। उनके सरस मधुर पद अनावश्यक रूप से अलंकारों से नहीं लदे हैं। न कवि में पांडित्य-प्रदर्शन की अवांछनीय प्रवृत्ति ही है। सूर द्वारा दृष्टकूट पदों में भी बड़ी क्लिष्ट कल्पना से वे दूर ही रहते हैं। वे सीधे सादे काव्य के भक्त कवि हैं अतः उन्हें बिना प्रेम के सब आभूषणादि फीके और सारहीन प्रतीत होते हैं—

> काहे को गुवालि सिंगार बनावै।
> सादीए बात गोपालहिं भावै॥
> एक प्रीति तें सब गुन नीके।
> बिन गुन अभरन सबही फीके॥ (६६१ पृ०—१८७)

बिना प्रेम के स्वर्णशृंगार व्यर्थ है उसी प्रकार काव्य में बिना रस के अलंकारों की भरमार व्यर्थ है। अतः उनमें अलंकारों का सांगोपांग निरूपण देखना अथवा खोजना विशेष बुद्धिमत्ता की बात नहीं। उनमें भाव अथवा रस की प्रधानता है अलंकार अथवा कलात्मकता का दुराग्रह नहीं। फिर भी अनायासेन अथवा सरलता से जो अलंकार उनके काव्यों में चले आये हैं उनकी चर्चा प्रस्तुत की जाती है—

शब्दालंकारों के अन्तर्गत परमानन्ददासजी में अनुप्रास ही बहुलता से प्रयुक्त हुआ है। वे शृ'गार के सरस कवि हैं अतः ध्वनि-साम्य और नाद-सौन्दर्य उनकी लेखनी से स्वयमेव प्रस्फुटित हुए हैं। अनुप्रास में भी वृत्त्यनुप्रास उपनागरिका वृत्ति के साथ अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है।

वृत्त्यनुप्रास (उपनागरिका वृत्ति—)

> बंदौ गुपाल श्री वल्लभ चरन।
> अमल कमल हू तें कोमल कलिमल हरन (२०३ पृ १६८)

किय और वर्णों मे गोरी राम कृष्ण की भाँति बना दिया है। अतः गोपियाँ और पड़ी है।

उपर्युक्त शब्दालंकारों के अतिरिक्त निम्नांकित अर्थालंकारों के उदाहरण भी परमानं सागर में प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं।

उपमा—उपमान उपमेय वाचक और धर्म जहाँ चारों होते हैं वहाँ पूर्णोपमा होत है। वाचक शब्द से उसे भाँति पूर्ण उपमा कहा जाता है।

बन बन चाहिसी के चरन
भांति ही मृदुल सुगंध सीतल कमल के से चरन। (१९ पृ २१)

यहाँ चरण उपमेय कमल उपमान कैसे वाचक मृदुल सुगंध सीतल-धर्म है।

लुप्तोपमा—

हिंडोरे झूलत है भामिनी पद सं ७७८ पृ २१

× × × × × × × ×

कमल नयन हरि मै मृगनयनी चंचल नयन विशाला

यहाँ वाचक शब्द लुप्त है।

परमानन्दसागर मे उपमा चमत्कार यत्र तत्र सर्वत्र भरा पड़ा है।

अनन्वय—

एक ही वस्तु को उपमान और उपमेय भाव से कथन किये जाने को अनन्वय अलंका कहते हैं।

राधा रसिक गोपाल हि भावे।

× × × × × × × ×

उपमा कहा दैन को लाइक कै हरि कै वाही मृग लोचन। (११६ पृ १२६)

उदाहरण—जहाँ सामान्य रूप से कहे गए अर्थ को भली प्रकार समझाने के लिये उसा एक अंश विशेष रूप से दिखलाकर उदाहरण दिखाया जाता है वहाँ उदाहरण चमत्कार होता है।

१—बन मे तिरीय रही क्यों कामिनी।
नंद कुमार के चाहे ठाढी सोहत राधा भामिनी। (७४७ पृ २१)

२—नंदकुंवर खेलत राधा संग यमुना पुलिन सरस रंग होरी। (१११ पृ १११)

× × × × ×

निरखत नेह भरी अंखियाँ सी ज्यों निरखेंद चकोरी। (१११ पृ ११२)

३—उरा रहत चित चाक चढ्यो सो और न कछू सुहाय। (४४१ पृ १२१)

प्रतीप—प्रतीप का अर्थ है विपरीत वा प्रतिकूल प्रतीप अलंकार मे उपमान को उ मेय कल्पना करना आदि कई प्रकार की विपरीतता होती है—

१—बेकोरी यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन देखत चन्द्र लजाया है। (१० पृ ११)

२—मधु से मीठे बोल (२१२ पृ ६७)

३—पकल करत जब हँस सयावन परक परक मुनि ग्यारी।
(११८ पृ १२८)

रूपक—उपमेय में उपमान के निषेध रहित आरोप को रूपक चमत्कार कहते हैं। परमानंददासजी मे रूपक चमत्कार प्रचुरता से पाया जाता है। रूपक के अनेक भेद हैं।

रूपकातिशयोक्ति—

इसमें उपमान ही रहता है उपमेय नहीं।

'मनौ है निसंक निरकुस करिनी एक ठौरे तहाँ आई।' (प० सं २११)

स्मरण—

पूर्वानुभूत वस्तु के सदृश किसी वस्तु के देखने पर उस पूर्वानुभूत वस्तु की स्मृति कथन को स्मरण अलंकार कहते हैं।

१—जमुना जल देखत है हरि नाव।

बेगि चलो वृषभान नंदिनी अब देखन को दाव।

नीर गंभीर देख कालिंदी पुन पुन सुरत करावे॥

बार बार सुख पंथ निहारत नैनन में अकुलावे। (७४१ पृ २११)

२—घूम्यो चक्र देखि मृग नैनी माधो की मुख सुरति करे॥ (६१० पृ० १११)

उत्प्रेक्षा—

प्रस्तुत की अप्रस्तुत रूप मे संभावना किए जाने को उत्प्रेक्षा अलंकार कहते हैं। परमानन्ददासजी ने उच्चकोटि की उत्प्रेक्षाएँ की हैं उत्प्रेक्षा के बहुत से भेद होते हैं—

वस्तूत्प्रेक्षा—

मदन गोपाल मधुर मुरलिका टेढ़ीऐ चंदन तिलक लिलाई।

मनो दुतियाविन उदित अर्ध ससि निकसि अधर में देत दिखाई।

(४४८ पृ १३२)

फलोत्प्रेक्षा—

परपुन मनि कुंडल कपोल मुख प्रतिमुत चलत परस्पर भाई।

मानौं विधुमीन विहार करत दोऊ जल तरंग मे मिलि आई॥

(४४८ पृ १३२)

वाचकलुप्ता उत्प्रेक्षा (प्रतीयमान अथवा गम्या)—

१—को गौतम ऐसो निरमावे जिनि यह दसा दई।

मैं तन की ऐसी गति देखी कमलनि हेम हुई। (४१३ पृ १४०)

२—कनक कुंभ कुच बीच पसीना मानो हार मोतिन पूजे हो।

हेम लता तमाल अवलंबित नीच मल्लिका फूली हो॥ (२१६ पृ० ६६)

दृष्टान्त—

उपमेय उपमान और साधारण धर्म का जहाँ बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है। वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।

१—मेरो माई माधौ सौं मन मान्यौ।

... ...

अब क्यों भिन्न होय मेरी सजनी मिल्यो दूध अरु पान्यो। (४६१ पृ १३६)

२—उलटे पाछे दू माधौ दूरयो जैसे कालो मूसरी॥ (४६७ पृ १३८)

३—मेरो मन गोविन्द सौं मान्यो ताते और न जिय भावे।

... ...

विषम—

विषम से तात्पर्य है सम न होना।

देखो माई कान्ह बटाऊ से रहे जात।
तबकी प्रीति अब की रुखाई फिर पाछे बूझत नहि बात। (४६ पृ १६६)

काव्यार्थापत्ति—

तात्पर्य के आपड़ने को अर्थापत्ति अलंकार कहते हैं—

राधा माधो बिनु क्यों रहे। (१७ पृ १२६)

अर्थात् राधा माधव के बिना अब एक क्षण नहीं रह सकती।

काव्यलिंग—

जहाँ कारण की समर्थता और यथार्थता होती है वहाँ काव्यलिंग अलंकार होता है—

नवनव कुसुम बराऊ राजे लर ढ़ै ढ़ै चहुँ ओर।
पश्चिम पै जु ससत समकत में छवि की उठत झकोर॥
बल दल पत्र प्रवाल बरन सौं कोमल कपित ओर॥(११६, पृ १२८)

अर्थान्तरन्यास—

सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से साधर्म्य अथवा वैधर्म्य से समर्थन किए जाने को अर्थान्तर न्यास कहते हैं—

१—जहाँ ही अलक जहाँ प्रीति नही री।
परमानन्ददास की ठाकुर गोपी ताप दई री। (५२ पृ १७७)

२—बलिया तू कित बन पै दौरी।
परमानन्द प्रभु सौं क्यों जीवे जाकी बिछुरी जोरी॥ (११८ पृ १८१)

३—सरिता कहा बहुत सुख जामें जो न होत उपकारी।
एक सो साख बराबर मिनियो करे जो कुल रखवारी॥ (२०१ पृ ८५)

पर्यायोक्ति—

इसमें किसी बात को रूपान्तर से या पर्याय से कहा जाता है। कृष्ण की रसिक अवस्था आरम्भ हो गई है। गोपी इसे बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करती है।

सुनरी सखी तेरो दोष नहिं मेरो पीव रसिया।
सो को जो न करी बस अपने जा तन मैं बहति बिसैया।
परमानन्द प्रभु कुंवर लाड़िलो अबहिं कछु भीजत मसिया॥(४१ पृ० १४६)

अन्योक्ति—

जहाँ अप्रस्तुत की चर्चा करके प्रस्तुत का संकेत हो वहाँ अन्योक्ति अलंकार होता है—

१—माई मेरो हरि नागर सौं नेह ।

..

चातक जियौ कोऊ बँधी मन को चली सनेह ।
सरिता सिंधु मिली परमानंद एक टक बरस्यौ मेह ॥ (७४६ पृ २६)

२—छाँड़ि मन हैत झूठे अति अभिमान ।
मिलिकरउ रीति प्रीति करि हरि सौं सुंदर हैं भगवान ॥
यह जोबन धन चीत कारिकी पचरंग रंग सो पान ।
बहुरि कहाँ यह अवसर मिलि है पोप भेष को ठान ॥
बारबार कूकिला सिखवे कपीहू अधर रस पान ।
परमानंद स्वामी सुख सागर, सब गुन रूप निधान ॥ (११८ पृ ११५)

अतिशयोक्ति—

जहाँ वर्णन अत्यंत बढ़ा चढ़ाकर किया जाय—

कमल नयन में एक रोम पर वारौं कोटि मनोज । (१११ पृ ३१)

लोकोक्ति—

प्रसंग पर लोक प्रसिद्ध कहावत के उल्लेख को लोकोक्ति अलंकार कहते हैं—

१—काची सौं क्यों तोरिए ।
कीजै प्रीति स्याम सुंदर सौं बैठे सिंह न रोरिए । (५ ८ पृ १७२)
२—साँच करौ किन अपनो ही अवसाई किहि काज ।
सैंतमैंत क्यो पाइए पाके मीठे आम ॥ (८१८ पृ १२७)

स्वभावोक्ति—[1]

क्रियादि की यथावत् वस्तु वर्णन को स्वभावोक्ति अलंकार कहते हैं—

१—माई री कमल नैन स्याम सुंदर झूलत हैं पलना ।

... ...

लाल अँगूठा गहि कमल पानि मेलत मुखमाही ।
अपनो प्रतिबिंब देखि पुनि पुनि मुसकाही ॥ (४६ पृ १५)

२—खेलत कान्ह कनक आँगन ।
बिंब प्रतिबिंब बिलोकि किलकि धावत पकरन को परछाँइन ।
पकरन धावत लखित होत तब धावत उलटि जात लहँ ठावन ।
परमानंद प्रभु की यह लीला निरखत पशुपति हरि मुसकावन ॥ (७४ पृ २६)

अलंकारों के उपर्युक्त कतिपय उदाहरण परमानन्द सागर में से प्रस्तुत किए गए हैं। यद्यपि परमानन्ददास की या कह सब गोरी कलात्मकता नहीं था फिर भी वर्ण्य के सरस प्रवाह

१ स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम् । साहित्य दर्पण ।

में उनके चमत्कार अनायास चले आए हैं। वैसे इनमें नाद-सौंदर्य और श्रुतिमधुरता पदे पद मिलती है।

परमानन्ददासजी का छन्दोविधान—

कला पक्ष के अन्तर्गत छन्दों का भी बड़ा महत्व है। अष्टछाप के सभी कवियों ने अपनी काव्य रचना गेयशैली में की है। अतः इनका काव्य पद-बद्ध है। सूरदास एवं परमानंददासजी सम्प्रदाय के इन दो सागरों ने तो सम्पूर्ण लीलागान पदों में ही किया है। वस्तुतः पदशैली की एक लम्बी परम्परा थी जो अष्टछाप के कवियों तक आते-आते पूर्ण विकास को प्राप्त हो गई थी। फिर रसात्मा रसेश कृष्ण जो साक्षात् नाद रूप ब्रह्म ही हैं अपने भुवन मोहन मधुरतम मुरली नाद के लिए भक्तों के परमाराध्य हैं। अतः उनके लीला परक पद संगीतमय होने चाहिए। संगीत और छन्द का परस्पर गठबंधन वैदिक काल से चला आता है। वैदिक साहित्य के नाद सौन्दर्य पर मुग्ध होकर आचार्यों ने उनके छन्दों का अनुसन्धान कर उन्हें सप्तधा विभक्त किया था। उन्हीं बृहत् पंक्ति, जाति त्रिष्टुप अनुष्टुप गायत्री जगती सात छन्दों में पुराण और काव्य युग तक आते आते इतना बड़ा भग विस्तार कर लिया कि यह एक अलग शास्त्र ही बन गया। छन्दों का बन्धन कुछ समय तक तो ग्राह्य बना रहा फिर स्वच्छन्द मानव प्रकृति ने अन्य अनेक बन्धनों की भाँति इसे भी असहनीय समझकर तोड़ फेंका और इससे अपने को मुक्त करना चाहा परन्तु मध्ययुग अथवा भक्तियुग ने छन्दों को पूरा-पूरा महत्व दिया। भक्त कवियों ने भगवल्लीला गान के लिए जो भी शैली सुमधुर अथवा मधुर लोक प्रचलित और सुन्दरतम समझी उसे ही अपनी बना डाला। भक्त कविगण अत्यन्त समन्वय वादी थे। उनमें द्वेष तिरस्कार प्रतिक्रियात्मकता असहयोग अथवा बहिष्कार करने की प्रवृत्ति नहीं थी इसीलिये तुलसी ने अपनी युग युग से चली आती सांस्कृतिक राम कथा के लिए विदेशी मसनवी पद्धति को बहुत पसन्द किया था। और उसे भी भारतीय छन्दों के समावेश के साथ। कृष्ण भक्त कवियों ने अपने संगीत प्रधान मुक्तक पदों को गेयशैली में रखा और उनमें उन्होंने अनेक प्रचलित अप्रचलित छन्दों का प्रयोग किया।

छन्द अथवा संगीत रसोत्कर्षक में सहायक होने के कारण काव्य में बहुत ही वांछनीय और ग्राह्य माने गए हैं। वस्तुतः सारा कृष्ण भक्ति काव्य गेय और संगीतात्मक है। संगीत में ताल ही मुख्य है। यदि सम्पूर्ण संगीत को एक शरीर मानें तो ताल को उसका हृदय मानना चाहिए। ताल काल के माप दण्ड का नाम है। काल के क्रमिक गणित को मापकर यति गति की कल्पना की गई है। यति गति के विशिष्ट नियमबद्ध रूप का नाम ही छन्द है जो कभी स्वच्छन्द नहीं।

परमानन्ददासजी का सम्पूर्ण काव्य सूरदासजी की भाँति गेय और मुक्तक है। वस्तु, शैली उद्देश्य और परम्परा उनमें और सूर में इतना अधिकतर साम्य है कि यदि परमानन्ददासजी अथवा सूरदासजी के पदों के अन्तिम चरण से उनकी छाप अथवा नाम हटा दिया जाय तो एक दूसरे के काव्य को पहिचानना नितान्त असम्भव ही है। अतः दोनों का छन्द विधान और छन्दों के प्रकार और उनकी शैली लगभग एकसी ही है।

गेय पदों में प्रारम्भिक अथवा पहला चरण टेक अथवा ध्रुवपद होता है। और शेष चरण उसी भाव को पुष्ट करने वाले होते हैं। रस सिद्ध अथवा उच्च कोटि के उत्तम कवि

छन्दों का विधान प्रसंगानुकूल ही करते हैं। प्रसंगानुकूल छन्द भावोद्रेक अथवा रसोत्कर्ष में बहुत ही सहायता पहुँचाते हैं। उदाहरण के लिए बधाई के प्रसंग आने पर लम्बे छन्दों में पालने के पद प्राय: झूलना अथवा लावनी में। युद्ध और वाण वीर के प्रसंग आने पर छोटे छोटे त्वरित गति एवं लय से पढ़े जाने वाले नाराच भुजंगप्रयात आदि छंदों में होते हैं। परमानंददासजी ने इन सब नियमों को सफलता से निभाया है। और प्रसंग अथवा भावानुकूल ही छंदों का विधान किया है यहाँ उनके द्वारा प्रयुक्त कतिपय छंदों का परिचय देने की चेष्टा की जाती है।

परमानंददासजी के काव्य में कुकुभ विष्णुपद सिंह शंकर सार, चौबोला ताटंक, चवपैया, झूलना कुण्डल प्रिय रोला आदि छन्द उपलब्ध होते हैं—

स्तुति बधाई एवं हर्ष के अवसरों पर कवि ने कुकुभ एवं विष्णुपद छन्दों का अत्यधिक प्रयोग किया है।

कुकुभ—

इस छन्द में १६+४ की यति से ३ मात्राएँ होती हैं और अन्त में दो गुरु (ऽऽ) होते हैं।

चरन कमल बंदौं जगदीश के जे गोधन संग धाए।
जे पद कमल धूरि लपटाने कर गहि गोपिन उर लाए॥ (१)

विष्णुपद—

इस छंद में २६ मात्राएँ होती हैं १ + १ की यति और अन्त में गुरु होता है।

आज गोकुल बजत बधाई। (टेक)
नंद महर के पुत्र भयो है आनन्द मंगल गाई॥ (१ पृ २)

शंकर—

यह भी १६+१ की यति से २६ मात्राओं का छन्द होता है। अन्त में गुरु लघु होते हैं—

धन्य धन्य भागन जसोदा माय।
जाके नंदलाल धूरि धूसर वपु रहत कंठ लपटाय॥ (२ पृ २)

सिंह—

इस छन्द का हर चरण १६ मात्रा का होता है। अन्त में २ लघु और एक गुरु होता है। (।।ऽ)

प्रगट भए हरि श्री गोकुल में।
नाचत गोप गोप परस्पर आनन्द प्रेम भरे हैं मन में॥ (८ पृ ४)

सार—

इसमें १६+१२ की यति से २ मात्राएँ होती हैं। अन्त में मगण होता है—

तुम जो मनावत सोइ दिन आयो।
अपनो सोच करो जिन जसुमति लाल सुदरसन पायो॥ (१८ पृ ७)

ताटंक—

इसमें १६+१४ की यति से ३ मात्राएँ होती हैं। अन्त में मगण होता है—

देखो री यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन देखत चन्द लजाया है॥ (१७ पृ ११)

चवपया—

इसमें प्रतिचरण १ +८+१२ की यति से ३ मात्राओं का होता है अन्त में दो गुरु (ऽऽ) होते हैं—

सुनो हो जसोदा मात कहति गोकुल में एक पंडित आयो।
अपने सुत को हाथ दिखायौ सो कहे जो बिधि निरमायो॥ (१८ पृ २)

प्रिय—

इसमें १ +१ की यति से २ मात्राएँ होती हैं। अन्त में (ऽऽ) दो गुरु होते हैं—

देखत ब्रजनाथ बदन कोटि वारौं।
बचन निकट नैन मनि उपमा बिचारौं॥ (१२४ पृ ४२)

रोला—

यह छन्द ११+१३ की यति से २४ मात्राओं का होता है—
हरि रस गोपी सब गोप तियन ते न्यारी।
कमल नयन गोविंद चंद की प्रानन प्यारी॥ (८२१ पृ २१)

विलास—

यह छन्द १७ मात्राओं का है—
कोटिक है बिन मुकुटि की ओट।
करा हू तेसरस सब्द की चोट॥ (४१६, पृ १४२)

लम्बे लम्बे वर्णन जैसे रास होली बसन्त क्रीड़ा आदि में कवि ने झूलना हरिगीतिका आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

सार—

२८ मात्रा का छन्द होता है—
मानति मानंद नद दुलारी। टेक
बिधु बदनी मृगनयनी राधा दामोदर की प्यारी।
जाके रूप कहत नहिं आवै सुन बिपिन सुकुमारी॥ (१७८ पृ १२८)

झूलना—

इसमें ३२ मात्राएँ होती हैं। इसके कई भेद होते हैं—
मदन गोपाल बलैये लैहौं। टेक
कृष्णा बिपिन तरनितनया तट चलि ब्रजनाथ मालिंगन देहौं॥
सघन निकुंज सुखद रति आलय नव कुसुम की सेज बिछैहौं। (१९ पृ १११)

कवि ने कतिपय विशेष छन्दों का भी प्रयोग किया है। इन्हें साखी अथवा बोलों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इनमें १५ मात्रा वाली चौपाई भी आती है।

चौपई—

देखो रसिक लाल आयो रसाल।
देखत बदत पिय रसिक लाल॥
गोप भोग की सुघर नारि।
गावत जुरि मिलि मीठी गारि॥

१—संज्ञा तथा विशेषणों के रूप ओकारान्त या औकारान्त होते थे। जैसे बड़ो, तमासो न्हौरो। सज्ञाओं के तिर्यक रूप बहुवचन 'न' लगाकर बनते थे सड़कन दर्शन मोहन न्हौरेन आदि।

कर्मकारक मे—कौं का प्रयोग होता था—मोहन कौं, दर्शन कौं।

सर्वनाम मे—वाको मोको तोकों आदि।

उत्तम पुरुष में—हौं मो आदि।

संबंध कारक में—मेरो तेरो हमारो आदि।

क्रियापद—

वर्तमान काल की क्रियाओं के ब्रज और अवधी मे एक से रूप होते हैं।

करत हौं करित हौं चलत हौं चलतही। स्त्रीलिंग में इकारान्त हो जाता है जैसे—गावति हंसति हसावति मुसकति।

बहु वचन मे करत हैं जात हैं आदि।

एक वचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष—है होत है।	हैं, होत हैं।
मध्यम पुरुष—है होत है।	हैं, होत हैं।
उत्तम पुरुष—हौं-होत हौं।	हैं होत हैं।

भविष्यत्

प्रथम पुरुष—करैगो।	करैंगे।
करिहै	करिहैं।
मध्यम पुरुष—करैगो।	करौगे।
करि है।	करिहौ।
उत्तम पुरुष—करौंगो।	करैंगे।
करि हौं।	करिहैं।

भूतकाल

प्रथम पुरुष—गई, भयो।	गईं। भए।
मध्यम पुरुष—भयो	भए।
उत्तम पुरुष—भयो।	भए।

ब्रज में भूतकालिक कृदन्त के रूप मे आयौ चल्यो आदि बनते हैं। उपर्युक्त उदाहरण ब्रज भाषा के दिए गए हैं। आदिकालीन ब्रज भाषा के संज्ञा सर्वनाम क्रिया पदों के व्याकरण का सामान्य एवं संक्षिप्त विवेचन के उपरान्त अब परमानन्ददासजी की भाषा पर विचार किया जाता है।

विजया—

इस छन्द में १ +१ +१ +१ की गति से ४ मात्राएँ होती हैं यह प्रायः स्तुति आदि में प्रयुक्त होता है। तुलसी ने इस छन्द में गंगा की स्तुति की है। परमानन्ददास जी ने यमुना की।

> अति मधुर जल प्रवाह मनोहर सुख अवगाहत पावन गति तरिनी नन्दिनी।
> स्याम बरन झलकत तन लोल लहर मधुप गन सेवित पंकज मनोज बसु बन्दिनी॥
> (२७७ पृ १)

कवि ने आरती आदि के लिए तारंक छन्द को रसिए की शैली तक में भी प्रयुक्त किया है—

> आरति युगल किशोर की कीजै।
> तन मन धन न्यौछावर कीजै॥ (१७८, पृ २१९)

उपर्युक्त कतिपय प्रधान छन्दों के अतिरिक्त कवि ने लावनी १६+१४ सार छंद १६+१६ हरिगीता १२+१२+१२+१ तोमर १२+१२ आदि छन्दों को भी स्थान रक्खा है।

परमानन्ददास जी के अभी तक के उपलब्ध काव्य को देखते हुए उनकी छन्दों की विविधता आश्चर्य में डाल देती है। सूर की अपेक्षा उनके छन्दों के प्रकार यद्यपि थोड़े हैं फिर भी काव्य परिमाण को देखते हुए उनकी छन्द विविधता पर्याप्त है। छन्दों को देखते हुए उन पर फारसी प्रभाव स्पष्ट कहा जा सकता है। साथ ही हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

उन्होंने सभी सम मात्रिक विषम मात्रिक अपने युग में प्रचलित छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों में मात्राओं की अपेक्षा उन्होंने गति और संगीतात्मकता का विशेष ध्यान रखा है। यति भंग की उन्हें चिंता नहीं थी। उन्होंने रसिए, लावनी चौबोले आदि ब्रज के प्रचलित गाये जाने वाले पदों को अधिक पसन्द किया है। अपने सम सामयिक सूरदास कुम्भनदास कृष्णदास तथा नन्ददास आदि भक्त कवियों से वे पूरे पूरे प्रभावित हैं। परमानन्ददासजी उर्दू फारसी की शैली का भी प्रभाव ग्रहण किए हुए हैं।

१—संज्ञा तथा विशेषणों के रूप ओकारान्त या औकारान्त होते थे। जैसे बड़ो, तमासो ल्हौरो। सज्ञाओं के तिर्यक रूप बहुवचन "न" लगाकर बनते थे लड़कन बड़ेन मोड़न ल्हौरेन आदि।

कर्मकार में—कौं का प्रयोग होता था—मोड़न कौं, बड़ेन कौं।

सर्वनाम में—वाकौं मोकौं तोकौं आदि।

उत्तम पुरुष में—हौं मौ आदि।

संबंध कारक में—मेरो तेरो हमारो आदि।

क्रियापद—

वर्तमान काल की क्रियाओं के ब्रज और अवधी में एक से रूप होते हैं।

करत हौं करित हौं चलत हौं चलतहौ। स्त्रीलिंग में इकारान्त हो जाता है जैसे—गावति हंसति हंसावति मुसकति।

बहु वचन में करत हैं, जात हैं आदि।

	एक वचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष—	है, होत है।	हैं होत हैं।
मध्यम पुरुष—	है होत है।	हैं, होत हैं।
उत्तम पुरुष—	हौं-होत हौं।	हैं होत हैं।

भविष्यत्

प्रथम पुरुष—	करैगो।	करेंगे।
	करिहै	करिहैं।
मध्यम पुरुष—	करैगौ।	करौगे।
	करिहै।	करिहौ।
उत्तम पुरुष—	करौंगो।	करेंगे।
	करिहौं।	करिहैं।

भूतकाल

प्रथम पुरुष—	गई गयो।	गई। गए।
मध्यम पुरुष—	गयो	गए।
उत्तम पुरुष—	गयो।	गए।

ब्रज में भूतकालिक कृदन्त के रूप य आयो चल्यो आदि बनते हैं। उपर्युक्त उदाहरण ब्रज भाषा के लिए हुए हैं। आदिकालीन ब्रज भाषा के तथा वर्तमान क्रिया पदों के व्याकरण पर सामान्य एवं संक्षिप्त विवेचन के उपरान्त अब परमानन्ददासजी की भाषा पर विचार किया जाता है।

संप्रदान —

खड़ी बोली में 'लिए' चिह्न संप्रदान कारक के लिए आता है। परमानन्ददासजी ने उसके 'कौं' प्रयोग किया है।

'बालक कौं मीठो खीर लो खावै। (११२)

अपादान—

खड़ी बोली में अपादान का चिह्न 'से' होता है। ब्रज में 'तें' आता है। 'सूं' का भी प्रयोग होता है।

१ 'गोपे तें बोली रैवन की महू भी कौन बड़ाई। (९८)

२ तबते गृह सूं माग्यो हुट्यो जैसे काचो सूत सखीरी। (४१७)

सम्बन्ध —

खड़ी बोली में सम्बन्ध कारक रूप 'मेरा' हमारा तेरा तुम्हारा उसका उनका आदि रूप होते हैं। ब्रज में मेरो हमारो तेरो तुम्हारो वाको उनको अथवा तिनको आदि रूप होते हैं।

परमानन्ददासजी ने ब्रज के साथ खड़ी बोली के रूपों का भी प्रयोग किया है।

यशोदा तेरे भाग्य की कही न जाई। (४१)
तिहारे चरन के ही रूप रीझी। (११७)
वारी मेरे लटकन पग धरो छतियां। (४४)

कहीं कहीं 'कौ' प्रयोग कवि ने किया है—

श्रीराधा जू कौ जन्म भयो सुनि माई। (११४)

कहीं 'याके' वाके आदि का प्रयोग मिलता है—

मानो याके वश की चेरी। (१८१)

खड़ी बोली में 'उसके' का प्रयोग होता है। साथ ही 'मेरो' तेरो' का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है—

'तेरो री लाल मेरो माखन खायो। (१४७)
मेरो मन बावरो भयो। (४१४)
मैं 'अपनों' मन हरि सौं जोरो। (४११)

स्त्रीलिंग में "री" का प्रयोग—

छोटा "मेरी" दोहनी दुराई। (९८)

परमानन्ददासजी के काव्य में क्रिया पद—

भाषा का स्वरूप क्रिया पदों पर निर्भर रहता है। खड़ी बोली में वर्तमानकाल की क्रिया में एकवचन आकारान्त होता है। यह क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है। भूत में था, थे तथा भविष्यत् गा गीर गे क्रिया के अन्त में लग जाते हैं।

ब्रजभाषा में क्रियाओं के रूप में खड़ी बोली से कुछ भिन्नता लिए होते हैं—

वर्तमान काल में—

ब्रज भाषा में "क्रिया" वर्तमान काल में ह्रस्व अकारान्त हो जाती है। जैसे—

(१) आज गोकुल में बजत बधाई।

(२) ब्रज में फूले फिरत अहीर ।
(३) तुम को मनावत सोई दिन आयो ।
(४) घर घर ग्वाल देत हैं हेरी ।
(५) ब्रज में होत है कुलाहल भारी ।

स्त्रीलिंग में क्रिया ह्रस्व इकारांत हो जाती है—
(१) बदन निहारति हैं नंद रानी ।
(२) अधी घूमति नैन विसाल ।
(३) साँवरो बदन देखि मुसकानी ।

कहीं कहीं एकारान्त क्रियाएँ वर्तमान काल मे प्रयुक्त हुई हैं—
"हो हो होरी इलधर आवे ।" (१ १)
भाग को भावें कुछ वाढे अब वेर । (१ १)
मात जसोदा दही विलोवे । (४७)

वर्तमान काल में एकारान्त ओकारान्त क्रिया का प्रयोग—
(१) यह तन कमल नयन पर वारौं सामसिया मोहि भावे री । (७८)
(२) नंद बधाई दीजे ग्वालन । (१८)

कहीं कहीं खड़ी बोली की क्रियाओं का रूप स्पष्ट है—
(१) देखोरी यह कैसा बालक रानी जसोमति जाया है । (१७)

स्त्रीलिंग में खड़ी बोली से थोड़ा ही अन्तर पड़ गया है ।
कहति है राधिका अहीरि । (१६१)
खड़ी बोली में "कहती है" होता है ।

भूतकाल—

खड़ी बोली मे भूतकाल की क्रिया में या तो या की ये लगता है या क्रिया का रूप अकारांत और बहुवचन में एकारान्त हो जाता है । जैसे—

वह गया   वे गए ।
तू गया   तुम गए ।
मैं गया   हम गए ।

पूर्णभूत में—

वह गया था वे गए थे ।
तू गया था तुम गए थे ।
मैं गया था हम गए थे आदि ।

परमानन्ददासजी ने भूतकाल के प्रयोग औकारान्त किए हैं—
(१) माई तेरो कान्ह मन हरन लाग्यो । (६१)
(२) ग्वालिन तो पै ऐसो क्यों करि आयौ । (१४६)
(३) मेरी करी मटुकिया ले गयो री । (१८७)
(४) आज ही दिन ऐसे हम लायो । (१६४)
मेरो मन कान्ह हर्यो । (४६१)

देखो री यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है।
सुन्दर वदन कमल दल लोचन देखत चन्द्र लजाया है।
पूरन ब्रह्म अलख अविनाशी प्रकट नन्द घर आया है।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे केशरि तिलक लगाया है॥ १७ पृ ११
हुलरावत दुलरावत गावत अंगुरिन अग्र दिखाय दिया।
.. दुख बिसरत सुख होत हिया।
.. श्याम नाम निज नाम लिया।

इसके अतिरिक्त भेंटिए (८४१) भेटिए (८४१) दीजिए (८४१) कीजिए (८४१) पाइए, (८४१) पूरिए (८४१) आदि अनेक खड़ी बोली के प्रयोग हैं। क्रियाओं से संज्ञायें अब पद्धति पर बनाई गई हैं जैसे देना देवा (६८) आदि।

क्रिया पदों के अतिरिक्त कवि की भाषा में तत्सम तद्भव देशज एवं विदेशी आदि सभी प्रकार के शब्द मिलते हैं। इससे न केवल उनकी भाषा का मधुर प्रवाह ही जाना जाता है अपितु लोकभाषा पर असाधारण अधिकार और शब्दों का सुप्रयोग एवं आत्मसात करने की प्रवृत्ति के भी दर्शन होते हैं। कवि को अपनी अभिव्यक्ति सशक्त और पुष्टतम बनाने की चिन्ता थी उसमें अनावश्यक बहिष्कार प्रवृत्ति नहीं थी। नीचे परमानन्दसागर में प्रयुक्त कतिपय तत्सम, तद्भव एवं देशज शब्दों की सूची प्रस्तुत की जाती है।

मनक मनक (८७) ननक ननक (८७) झनक झनक (८७) ठनक ठनक (८७) कटि किंकिनी कलराव मनोहर (१४१) कुण्डल झलक परत पच्चनि पर (१४१) मचल मचल (७१) दोहन मंडन खडन लेपन मंडन गृहसुतपति सेवा (८१) चपल चपल चोर चिन्तामणि (१४४) रुनुक झुनुक (६८) बाहु दण्ड कर अम्बुज पल्लव (१६१) भृकुटी बक संक (४६१)।

संस्कृत पदावली के उपर्युक्त भाव सौंदर्य के साथ साथ परमानन्ददास के पदों की संगीतात्मकता उनके काव्य का विशेष गुण है। इससे उनका ब्रजभाषा पर असाधारण अधिकार प्रकट होता है।

पदों में संगीतात्मक शब्दावली—

माखन चोरत चाखन चोरत (११६) कुण्डल झलक परति मंडनि पर (१४१) कटि किंकिणि कलराव मनोहर (१४१) अलकावलि मधुपान की पाति मुक्तमणि राजत वर उपर (१४१) चपल अचपल कुच हारावली (११७) वेनी ग्रथित खचित कुसुमाकर (११७) मुक्ता मणि मणिहार मण्डित तारागण (१२४) सघन निकुंज सुखद रति मानम (३६) कुसल कुटिम कटाक्ष मनोहर मडन खण्डन लेपन (८१) ग्राम ग्राम प्रति (८१) देश देश प्रति (८१) कुसुम-माल राजत उर अन्तर बण्ड मडप पुहुपन के (१ ४) श्याम सुभग तन चंदन मण्डित (४४४) रचकि रचकि (८४) कटि किंकिणि कुणित कछनी (२६२) उपर्युक्त समस्त पद भाव सौंदर्य एवं संगीतात्मकता के लिए प्रस्तुत किए गए हैं। र

कवि ने काव्य मे कूट-कूट कर कोमलता भरने के लिए तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है—

तद्भव शब्द—

अकाज (७१७) अचमा (६२८) आगमन (२७२) आशा (८४१) अनत (२४) असीस (२१२) अनुशासन (१८) अमरत (१) अतरगति (२) इच्छू (१ ४) उद्यम (८४१) उछरत (८७८) उनमद (२१) उरत भोर (८४) अनुज (२१८) इसोबरि (४ १) कुमित (१११) कृतकारज (७२) गिर गम्भीर (२२४) गहिबो ( ) गोच (४२) चरस (१६१) चीमुनो (६१) चहुँवा (२६६) छुद्र-घण्टिका (२ १) चारों (१) जूथ (७६) जाचक (२७) जोबन (१६२) जसी (१८) तरन (८२७) तीस (१८) दुरलभ (१११) दुराधुरी (६६१) धुरि (१) प्रीति (१६१) नैन (१२२) निरमायो (१८) निरकुश (१७१) पुनि-पुनि (२) पूत (१११) परस्पर (७११) पाटम्बर (११७) पटा (११) पुहुप (२८) पूरति (२४१) बेग (६१२) बिहास (११८) बीजना (२४७) बरीसो (२) बैठ (१) बिमल (३८) बजनबला (६२) बतरस (११६) मानधी (११६) बावरी (१६७) भीतर (६७) महोच्छव (२११) मूरति (१४१) बारति (४) सन्दों (१) हरिनाछी (१८८) रजधानी (४६१) सौबीन (१६१) पौन (२११) बैन (८ १)।

उपर्युक्त तद्भव शब्दों के अतिरिक्त कवि ने ब्रज भाषा के ठेठ ग्रामीण शब्दों का भी काव्य मे प्रयोग किया है:—

'भादौं' से 'सवैया' विशेषण सदृश लगता है। (१)
प्रकारत का प्रकाश किया गया है।

परमानन्द प्रभु प्रीति मानि है यह रस बात प्रकाश नहीं। (८ २)

इसी प्रकार सिखड़ी का "सिख" सीख का सिख' कृष्ण का 'कृष्ण' सीतल का 'सितल" आदि प्रयोग सुन्दर नहीं लगते।

"भयो नन्दराय के घर सिख।
सब गोकुल के सरिकन के सम बैठे है धाय सिख। (१२१ पृ १०७)
× × × ×
परमानन्द प्रभु मोहन कीनो प्रति रुचि माग्यो 'कृष्ण"
'वाकै मन मे कहा सितल है प्राण जीवनधन राई। (७२१)

हरषि को रहसि भी कवि ने यत तत्र लिखा है,
यह बस परमानन्द गावै।
कछु रहसि बधाई पावै॥

कहीं-कहीं भावो की स्पष्टता के लिए पाठक को अध्याहार करना पड़ता है—
रही ही धाई पुकारिही ना कछुकी बंध बोल।" (११८)

यहाँ अर्थ स्पष्ट नही होता। अत अध्याहार करना पड़ता है कि 'मैं जाकर चिल्लाकर कह दूँगी किन्तु कंचुकी के बन्धन नही खोलने दूँगी।" आदि।

व्याकरण गत (च्युत संस्कृत) दोष भी यत्र तत्र मिलते है।
"सोभ" स्वयं भाव वाचक सज्ञा है उसमे "ना" लगाना व्यर्थ है।
'विप्र बुलाय गोधना कीनी सबै बजार लुटायो।
इसी प्रकार 'कृपा" पुल्लिग है स्त्रीलिंग मे कवि ने प्रयोग किया है।
'प्रेरक प्रबल कृपा कैसो की परमानन्ददास चित चेत। (८४)

इसी प्रकार परमानन्दसागर मैं यत्र तत्र दुराग्रय दोष भी मिल जाते है। नीचे कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जाते है—

१— 'राई लौन उतारि वहु कर बार फेरि डारत तन मन धन।" (९४)
२—शिव नारद सनकादिक महामुनि मिलवे करत उपाई। (४१ पृ १५)

कवि मे एकाध स्थल पर काल दोष भी उपलब्ध होता है। ब्रज गोपिकाएँ कृष्ण के लिए गालियाँ गाती है।

तेरी कुक्षी पंच भरतारी।
सो तो अर्जुन की महतारी॥

तेरी अहिव सुभद्रा बारी ।
सो तौ अर्जुन संग सिधारी ॥ (१७१ पृ ३१४)

सुभद्रा-अर्जुन परिणय प्रसंग बहुत बाद में हुआ । ब्रजलीला में उसका कथन काल दोष के अन्तर्गत ही लिया जायगा ।

फिर भी परमानंददासजी मे दोष नाम मात्र के लिये ही है । ह्रस्व-दीर्घ मात्राओं का प्रयोग तो छन्दों में चला ही करता है । ये दोष सभी रस सिद्ध कवियो मे मिलते है । फिर कवियो के लिये छन्दों की तोड मरोड अथवा ह्रस्व-दीर्घ के प्रयोग के लिये कवि ने अपनी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखी है । काव्य शास्त्र के आचार्य भी ऐसी स्वतन्त्रता अथवा छूट कवियो के लिये घोषित करती है—

'अपि माष मष कुर्यात् छन्दो भंग न कारयेत् ।

अत छन्दो भंग से बचने के लिये ही रससिद्ध कवि इस प्रकार शब्दों की तोड फोड़ अथवा ह्रस्व दीर्घ की स्वतन्त्रता लिए रहते है । इतने पर भी सूर काव्य की भाँति परमानंददासजी के काव्य मे भी यति गति भंग दोष पर्याप्त रूप मे मिल जाते है ।

उदाहरणार्थ—

१—जागौ मेरे लटकन पगवारे छौना ।
कमल नैन बलि जाउ बदन की सोभित नन्हीं नन्हीं दूध की दतियाँ ।
यह मेरी यह तेरी यह बाबा नन्द जू की यह बलभद्र भैया की
यह ताकी जो झुलाए तेरो पलना ।

२—सोभित रुचि न बिलोकत देही ।
बार बार चाव परत जसोदा कान्ह कमेठ लेही ।
बांधि सूत्र पष्टिका मुदित नन्द जू की रानी । (११६)

३—री माधो के पायन परिहौं ।
स्याम सनेही पद बैठीकी तन न्यौछावर करिहौं ।
लोक वेद की कान न करिहौं ।
नहिं काहू ते डरिहौं । (४२३)

४—अति रुचि मदन गुपाल बुलाये ।
हेरोइं गाय सौ सौ बेनु बजाये ॥
यह नरेन्द्र कही बन महियाँ । (१८६)

परन्तु इन उदाहरणों के अतिरिक्त परमानंददासजी मे यति गति भग दोष कहीं कहीं मिल जाते है । सम्भवत संगीत में अथवा पदगान के आरोह अवरोह मे यह दोष छप जाता हो परन्तु कविता की दृष्टि से भी सूर एव परमानन्ददासजी के पदों में यति-गति भग अनायास ही मिल जाते है । अतः परमानन्ददासजी की भाषा के विषय में यही निष्कर्ष निकाल सकते है कि उनमें ब्रजभाषा का विकसिततम रूप मिल जाता है उनकी ब्रजभाषा शुद्ध पुष्ट, प्रांजल

संस्कृत पदावली युक्त है। उसमें अरबी फारसी आदि विदेशी शब्दों के यथास्थान उचित और सुन्दर प्रयोग मिलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनमें बहिष्कार की प्रवृत्ति न होकर समन्वय की प्रवृत्ति थी। समन्वय वृत्तिकला की सौन्दर्य-वृद्धि में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त कवि की भाषा में प्रवाह 'माधुर्य' प्रसाद आदि सभी गुण विद्यमान हैं। उसमें भावाभिव्यक्ति की पूरी-पूरी क्षमता के साथ भाषा पर असाधारण अधिकार पाया जाता है।

कवि में सम्य चित्र प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता थी। अष्टछाप में सूर के उपरान्त यदि किसी को भाव भाषा और शैली की दृष्टि से महत्ता दी जा सकती है तो परमानन्द दासजी को ही।

परमानन्ददासजी म खड़ी बोली समस्त अष्टछापी कवियों की अपेक्षा सर्वाधिक और सुप्रयुक्त पाई जाती है। एक प्रकार से वे भावी भाषा के रूप का संकेत दे गये थे। उन्होंने प्रसंगानुकूल भाषा का व्यवहार किया है। उनकी ब्रज भाषा मे नागरिकता और सरल ग्रामीण वातावरण का समन्वित चित्र है। सौन्दर्य माधुर्य एवं भक्ति-वर्णन के प्रसंग वाले पदों म भाषा उच्च कोटि की सुसंस्कृत एवं भाव पूर्ण हो गई है।

—०:—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ ७।५।२३

भागवत सम्प्रदाय से सबंध रखने वाली १०८ पाँचरात्र संहिताओं में कीर्तन की खूब चर्चा हुई है। कीर्तन अथवा संकीर्तन 'शब्द' कृत् धातु से बना हुआ है। जिसका अर्थ है 'संशब्दन' अथवा सम्यक् शब्द करना। 'शब्द' को नित्य माना है।[२] शब्द ब्रह्म भी है नाद भी है।[३] गीत अथवा संगीत नादात्मक होता है।[४] सम्पूर्ण जगत इस नाद के अधीन माना गया है।[५] इस प्रकार कीर्तन की नित्यता सिद्ध होती है। कीर्तन में अनुकथन का अर्थ निहित है।

सततं कीर्तयन्तो मां तुष्यन्ति च रमन्ति च"

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में कीर्तन को संतोष का देने वाला और मन को रमाने वाला माना गया है। 'रमण' आनन्द की स्थिति है। मन को इस आनन्दमयी स्थिति की उपलब्धि कीर्तन अथवा 'संगीतात्मक अनुकथन' से अनायास ही हो जाती है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि कीर्तन का नवधा भक्ति में द्वितीय स्थान है। प्रथम भक्ति-श्रवण सत्सम वर्णित है। अतः उसमें पराश्रितता है। अन्य कोई भगवच्चर्चा करे तभी श्रवण भक्ति की साधना हो सकती है। परन्तु कीर्तन व्यक्तिगत-साधना अथवा आत्म-साधना की वस्तु है। अध्यात्म क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रयास की दृष्टि से कीर्तन का प्रथम स्थान मानना चाहिए। अतः श्रवण भक्ति के उपरान्त 'कीर्तन' पर सभी भागवत सम्प्रदायों ने महत्त्व दिया है। कीर्तन का प्रारम्भ यों तो भक्तों के मत से शुकदेव नारद सनत्कुमारादि से माना गया है परन्तु १३ वीं १४ वीं शताब्दी में जब उत्तर भारत में भक्ति सम्प्रदायों का आन्दोलन चला तब से कीर्तन को महत्ता अधिक मिली। यों तो आलवार भक्त-विशेषकर अंदाल कीर्तन ही करती थी। दक्षिण में सगुण-कीर्तन परम्परा शताब्दियों से पाई जाती है। बंगाल में चैतन्य-सम्प्रदाय में तो कीर्तन को ही एकमात्र निःश्रेयस् का साधन माना है। इसी आधार पर लोक जिह्वा पर नाचने वाला निम्नांकित श्लोक भगवद्वाक्य के रूप में भक्तों की परम्परा में आज भी प्रचलित चला आ रहा है।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

अतः सगुण भक्ति के सभी सम्प्रदायों में आज तक कीर्तन भक्ति का अनिवार्य स्थान है। महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर तुकाराम एकनाथ रामदास तथा गुजरात के नरसी मीरां जनाबाई, बंगाल में चैतन्य के अनुयायी एवं मद्रास में अंदाल तथा परवर्ती ईसाधियों प्रभु के समक्ष कीर्तन करने के लिए प्रसिद्ध हैं। भक्ति की एकान्त सहचरी तन्मयता की एकमात्र

---

१ सिद्धान्त कौमुदी-सूत्र संख्या ६८१
२ शब्दो नित्यः।
३ नाद ब्रह्मोपासनम्। सं० रत्नाकर
४ गीतं नादात्मकं वाद्यं नाद-व्यक्त्या प्रशस्यते।
तद् द्वयानुगतं नृत्यं नादाधीनमतस्त्रयम्। संगीत रत्नाकर अ० ० २
५ नादाधीनं जगत्।

पुष्टिसम्प्रदाय की संगीत-साधना

भगवल्लीला-कीर्तन पुष्टिसम्प्रदाय में अत्यन्त ही प्रभु तोषक माना गया है। यदि यह कीर्तन शुद्ध संगीत-पद्धति के अनुसार हो तो साम्प्रदायिक भक्तों का विश्वास है कि भगवान् स्वल्प काल में ही निज लीला के दर्शन कराने का अनुग्रह करते हैं। आचार्य चरण भी 'गीत-संगीत सागर' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भाव प्रकाश के मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में 'संगीतं भ ति मूर्धभि' कह कर भगवान् को नमस्कार किया गया है।

पुष्टिमार्ग में सेवा के तीन स्वरूप हैं—राग भोग और शृंगार तीनों ही युगपद् चलती हैं। प्रातः काल ही मन्द-मन्दिर में 'मंगल मंगलम्' की मंगल ध्वनि के साथ घंटानाद होता है और तानपूरा तथा मृदंग की ध्वनि होने लगती है। संगीत की इस प्रमुखता का श्रेय मुख्य रूप से गोस्वामी विट्ठलनाथजी को है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने अष्टछापी चार प्रमुख शिष्यों को भगवल्लीलागान का आदेश दिया था। इनमें सूरदास प्रमुख थे। सूर को श्री गोवर्धननाथ जी के मन्दिर में कीर्तन भार देने के उपरान्त उन्होंने अन्य शिष्यों को भी क्रमशः यही आदेश दिया। और सभी शिष्य क्रमशः श्रीनाथजी के मंदिर में आकर अपने अपने ओसरे पर लीलागान करते थे। संवत् १६ २ में जब अष्टछाप की स्थापना हुई और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने जब विधिवत् सेवा का मंडान किया तब आठों प्रहरों के लिए अष्टछापी आठों महानुभावों का कीर्तन करने का ओसरा बांधा जाता था। यहाँ आठों कवि महानुभावों के कीर्तन ओसरे का समय दिया जा रहा है। उदाहरणार्थ—

दर्शन का ओसरा	कीर्तनकार	समय
१—मंगला	परमानन्ददासजी	प्रातः ५ से ७ बजे तक
२—शृंगार	नन्ददास जी	प्रातः ७ से ८ बजे तक
३—ग्वाल	गोविन्दस्वामी	प्रातः ८ से ९ बजे तक
४—राजभोग	कुम्भनदास एवं आठों भक्त	प्रातः ९ बजे से १२ बजे तक
५—उत्थापन	सूरदास	मध्याह्नोत्तर ३½ से ४½ तक
६—भोग	चतुर्भुज दास एवं आठों भक्त	सायं ५ बजे (तक)
७—सन्ध्यार्ति	छीतस्वामी	सायं ६½ बजे
८—शयन	कृष्णदास	सायं ७ से ८ बजे तक

ये आठों महानुभाव शास्त्रीय संगीत-पद्धति से भगवल्लीला गान करते थे। अतः संगीत के प्रति इन महानुभावों का जो उपकार है उसके लिये भारतीय संगीत-कला सदा ऋणी रहेगी।

भारतीय संगीत की दो शैलियाँ हैं। उत्तरी शैली एवं दक्षिणी शैली। अष्टछाप के कवियों ने उत्तरी शैली को ही अपनाया है। उत्तरी शैली ध्रुपद शैली कही जाती है। व्रज भक्तों

१ तो बीच बीच में जब कुम्भनदास औ परमानन्द जी के कीर्तन के ओसरा आवते——(चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृष्ठ ४२१)

कवि ने अपने 'सागर' में अपने समय के प्रचलित सभी राग रागनियों का समावेश किया है। पदों का विषय भगवान की बाल पौगण्ड और किशोर लीला है। अतः उनका कीर्तन का समय मंगला राजभोग और शयन भोग है। नित्य-कीर्तन और वर्षोत्सव में उनका विशिष्ट योगदान अथवा समय है। नित्य के कीर्तन में 'मंगल मंगल' का पद और भागवत कथा के अन्त में नाम-संकीर्तन वाला पद भक्तों की सम्पत्ति आज भी बना हुआ है। सम्प्रदाय की प्रणाली से जब वे प्रभु समक्षकीर्तन करने बैठते थे तो उनके साथ आठ-आठ अनु-गायक तथा भाजरिये रहते थे।[1] जो टेक उठाने का कार्य करते थे। परमानन्ददासजी के आठ अंग गायकों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) पद्मनाभदास (२) गोपालदास (३) भास्करस (४) बदावरदास (५) सगुनदास (६) हरिजीवनदास (७) माणिकचन्द और (८) रसिकबिहारी।

उक्त आठों अनु गायकों के साथ श्रीनाथजी के समक्ष नित्य कीर्तन करना परमानन्ददासजी की जीवन चर्या थी। नित्य कीर्तन के साथ वर्षोत्सवों पर भी विशिष्ट कीर्तन प्रस्तुत करना वे नहीं भूले हैं। उनके पदों में उनका उच्चकोटि के संगीतज्ञ होने का पता चल जाता है। परमानन्ददास जी ने अपने पदों में कतिपय राग रागिनियों के नामों का उल्लेख कर उनके लक्षण और समय का संकेत किया है। उस आधार पर उन्हें लक्षण-पद भी कहा जा सकता है वे हैं—

गौरी आसावरी सारंग मलार केदारा आदि।

१—गौरी—

मोहन नैकु सुनइये गौरी।
बजते आवत कुंवर कन्हैया पुहुपमाल ल दौरी।
मदन गोपाल झूलत हिंडोले।
वामभाग राधिका बिराजै पहिरें नील निचोल।
गौरी राग अलापत गावत कहत मामते बोल॥

२—आसावरी—

यह रागिनी भैरव के अन्तर्गत है कवि ने इसकी चर्चा की है। डेढ़ प्रहर दिन चढ़े गाई जाती है। कवि ने ठीक इसी समय आसावरी राग गाया है।

आजु नीको जम्यो राग आसावरी।
मदन गोपाल बेन नीकी बजावत मोहन नाद सुनत भई बावरी।

३—मलार—

बरिस रे सुहावे मेहा मैं हरि को सग पायी।
भीजन दे पीताम्बर सारी बनी बनी बूँदन आयी॥
ठाढ़े हँसत राधिका मोहन राग मल्हार जमायो।
परमानन्द प्रभु तरवर के तर ताल करत मन भायो॥

मल्हार वर्षा कालीन राग है। इसी में कवि ने लम्बी तान की चर्चा की है।
"परमानन्द स्वामी मन मोहन उपजत तान बितानें।

---

१ भारकरी पद में मंगलावक ठालकरी (ताल देने वाले) कहलाते हैं। सम्भव कि अन गायक रखने की परम्परा पुष्टि सम्प्रदाय में वारकरियों से आई हो।

३—रास रच्यौ बन कुंवर किसोरी।
बाजत बेनु रबाब किन्नरी कंकन नूपुर किंकिनि घोरी।
ततथेई ततथेई सबद उघटत पिय भले बिहारी बिहारिन जोरी।

४—रच्यो रास मरसक राधे सरद चांदनी राति।
ततथेई ततथेई थेई करत गोपीनाथ गोरी भाँति।

५—रास मंडल मध्य मंडित मोहन मंडित सोहत नागरिसी रूप निधान।
हस्त भेद, चरन चाल निर्तत चाली भाँतिन मुख हास भौंह बिलास।।
भौंह भेद नैननि ही भाव।

यहाँ हस्तगत से नृत्य मुद्राओं अथवा हाथों की मुद्राओं की ओर संकेत है। जिसकी भरत नाट्यम में पर्याप्त चर्चा है। कवि को इन मुद्राओं एवं भौंह संचालन का ज्ञान था। नृत्य शास्त्र में हस्त संचालन द्वारा अनेक रसों का उदय और उनका परिपाक माना गया है।

वाद्यों की चर्चा—

संगीत नृत्य की चर्चा के साथ साथ कवि ने मुख द्वारा बजाये जाने वाले जैसे बंसी भेरी नफीरी आदि सुषिर वाद्य तंतु वाद्य तथा वितत वाद्य (चर्म से मंडित) मृदंग पखावज डफ खंजरी ढोलक डमरू दमामा आदि एवं घन वादित के—जैसे झांझ मालर ताल मंजीरा आदि वाद्यों की भी पर्याप्त चर्चा की है।

उदाहरणार्थ—

१—नंदकुमार खेलत राधा संग।
जमुना पुलिन सरस रंग होरी।।
× × × × × ×
बाजत चंग मृदंग अघोटी
पटह झाँझि झालरी सुर जोरी।
ताल रबाब मुरलिका बीना मधुर सबद उघटत धुनि जोरी।

२—सब ग्वालिन मिलि मंगल गायो।
ताल किन्नरी ढोल दमामो भेरि मृदंग बजायो।
लीला जनम करम हरि जू की परमानन्ददास जस गायो।

३—बने बन आवत मदन गोपाल।
बेनु मुरज उपंग मुख चंग बजत विविध सुरताल।
बाजे अनेक बेनु रव सौं मिलि रंजित किंकिनी जाल।

४—रितु बसंत के आगम मधुर भयो मदन को जोर।
× × × × × ×
ताल पखावज परम ही बीना बेनु रबाब।
महुवरी चंग अरु बाँसुरी बजावत गिरधरलाल।।

कीर्तन-संगीत के अतिरिक्त कवि के नाम ध्वनि अथवा ध्वनि-कीर्तन के एक[1] दो पदों से अनुमान होता है कि कवि नाम संकीर्तन पर भी महत्व देता था ।

उपर्युक्त कथन से तात्पर्य इतना ही है कि—

कवि उच्च कोटि का संगीतज्ञ था । उसने अपने समय की सभी प्रचलित संगीत पद्ध-तियों को तथा कीर्तन संगीत अथवा पद कीर्तन के साथ ध्वनि कीर्तन को भी पूर्ण महत्व दिया था । कवि को गायन वादन और नृत्य तीनों का अच्छा बोध था । उसने राग रागनियों में उतरी शैली को ही अपनाया । कीर्तन संगीत के क्षेत्र में सम्प्रदाय में उसका अपना विशिष्ट स्थान है जो आज तक भी मान्य चला आता है । विशिष्ट अवसरों— वर्षोत्सवों और नित्य सेवा में उसके अनेक पद निश्चित हैं और महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किये हुए हैं ।

— —

१ [illegible] पद संख्या—११

दशम अध्याय

परमानन्ददासजी और ब्रज संस्कृति

लोक जीवन की सर्वमान्य दीर्घ अभ्यस्त परिमार्जित सुसंस्कृत चर्या अथवा व्यवहार परम्पराओं को 'संस्कृति' नाम दिया जाता है। इसके कई रूप हैं—राष्ट्रीय-संस्कृति सामाजिक संस्कृति प्रादेशिक संस्कृति आदि। पुष्टि-सम्प्रदाय का केन्द्र-स्थल भगवान् श्रीकृष्ण की लीला भूमि ब्रज प्रदेश रहा है। अत सभी अष्टछापी महात्माओं ने अपने अमरकाव्यों में ब्रज-संस्कृति की ही चर्चा की है। ब्रजभक्तो की व्यक्तिगत-साधना मे ब्रज-संस्कृति बिम्बप्रतिबिम्ब भाव से चोतित है। क्योंकि संस्कृति सामाजिक वस्तु है। व्यक्ति समाज की इकाई है। अत समाज की सर्वमान्य परम्पराओं का अनुगामी होने के लिये वह विवश है। ब्रजभक्तों का अमर काव्य स्वान्त-सुखाय होते हुए भी वह लोक-बाह्य नहीं न उसे नितान्त ऐकान्तिक ही कहा जा सकता है। किसी विशिष्ट प्रदेश अथवा विशिष्ट समाज की संस्कृति की जब हम चर्चा करते हैं तो उसके आचार विचार संस्कार खान-पान रहन सहन रीति रिवाज पर्व उत्सव कला दर्शन विज्ञान उपासना आदि सभी को लेते हैं। इन्हीं के द्वारा हम व्यक्ति अथवा समाज की संस्कृति के स्वरूप को सामने ले आते हैं।

आर्यावर्त के अन्तर्गत ब्रह्मावर्त और उसमें भी गंगा यमुना के मध्य के भू भाग (अन्तर्वेद) की संस्कृति को ब्रजसंस्कृति का प्रदेश माना जाता है। यह देश आर्यों का सनातन देश है। इसी भूभाग मे पूर्ण पुरुषोत्तम जिन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम और लीला-पुरुषोत्तम कहा जाता है—राम-कृष्ण-का अवतार हुआ। इसी प्रदेश के धर्म ज्ञान-विज्ञान दर्शन और कला ने चरम उन्नति के कारण विश्वगुरुत्व का गौरव प्राप्त किया है। यहाँ की संस्कृति ने अरण्यों में जन्म ले कर भी बड़े बड़े विशाल राष्ट्रों की चरम नागरिकता को चुनौती दी है।

सूर्यचन्द्र नक्षत्रादि से दीप्त मुक्त गगन के नीचे और निसर्ग रमणीय लता-वृक्षादि से सम्पन्न शस्य श्यामला उर्वरा वसुन्धरा के वक्ष पर प्राकृतिक जीवन-यापन करते हुए जीव दया के लोक आदर्श के साथ गोप-सभ्यता में पले वासुदेव श्रीकृष्ण की संस्कृति का मूल मंत्र था—

आत्मन प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"

अत सुरसरि की जीवन-धारा की भाँति यहाँ संस्कृति समूचे विश्व की सिरमौर संस्कृति सिद्ध हुई। रागानुगा भक्ति के परमपोषक आचार्य वल्लभ ने यहाँ की अपठित लोक वेद मर्यादातीत ब्रज सीमन्तिनियो को अपना गुरु माना है। इन्हीं के निश्चल निश्छल एकान्त भक्तिभाव को प्रभु प्राप्ति का एक मात्र-साधन मानकर इसी संस्कृति को महत्व दिया था। जाति से तैलंग ब्राह्मण हो कर भी उन्होंने ब्रज संस्कृति के प्रसार एव प्रचार में अपने जीवन को उत्सर्ग कर दिया था। इसी प्रदेश की भक्ति का आदर्श उनकी भक्ति का आदर्श

रहा है। उनके आराध्य की लीला भूमि होने के नाते यहाँ की सर्वमान्य सर्वाभिमत परम्पराओं को उन्होंने महत्ता दी। यहाँ तक कि देववाणी संस्कृत के उपरान्त यदि किसी दूसरी भाषा को उन्होंने अपनी स्तुति-भावना अथवा चर्चा एवं लीलागान के लिये उपयुक्त समझा तो यहीं की लोकभाषा-ब्रजभाषा को।

ब्रज-संस्कृति एवं ब्रजभाषा को आचार्य ने ही जब इतनी महत्ता दी तो उनके सभी शिष्य विशेष कर अष्टछाप के कवियों ने भी उसी संस्कृति और इसी प्रदेश की भाषा को अपनाकर अपने आराध्य की उपासना की।

महाप्रभु के परम शिष्य सम्प्रदाय के द्वितीय 'सागर' परमानन्ददासजी कन्नौज के निवासी थे किन्तु दीक्षोपरान्त ब्रज में आ जाने पर वे ब्रज-प्रदेश को छोड़कर फिर अन्यत्र नहीं गए। आपने काव्य में उन्होंने ब्रज-संस्कृति के लगभग सभी अंगों की आवश्यकतानुसार यत्र तत्र चर्चा की है।

संस्कार—

परमानन्ददासजी ने सूर की भाँति जात-कर्म छठी-पूजन नामकरण अन्नप्राशन कर्णवेध भूमि उपवेशन निष्क्रमण बरसगाँठ विवाह आदि की चर्चा की है। और उन्हीं संस्कारों पर बाजे बजवाना, दधि हल्दी का छिड़काव सुवासिनी (सौभाग्यवती स्त्री) की पूजा नगरवासियों की भेंट लेकर आना नेग बधाई, वस्त्र—चीर आदि पूरना रोरी दूब दल मेवा पकवान मिठाई का आदान प्रदान विप्र याचक सूत-बन्दी आदि का आशीर्वाद देना, भेंट-पूजा आदि प्रसंगों की चर्चा की है।[1] इसी प्रकार उनके काव्य में जन्म से विवाह पर्यन्त कुमारलीला तक के सभी संस्कारों का यथा स्थान उल्लेख है। इन संस्कारों से सम्बन्धित कर्मकांड की प्रमुख बातें—जैसे गणेश पूजा नान्दी श्राद्ध (पितृ-पूजन) गोदान वन्दना वेदपाठ होम मुहूर्त-शोधन अनिष्ट निवारण विप्रों का आशीर्वाद, दान ज्योतिषियों के प्रति आदर-भाव आदि बातों की यथा स्थान चर्चा हुई है।

उदाहरणार्थ—

सुनो री आज नवल बधायो है।
वेदोक्त गोदान द्विज को सनमान कियो है।
गरग पराशर अन्नाचार्य मुनि जातकरम करायो है।

वर्ष ग्रन्थि—

सुनियत आज सुदिन सुभदाई।
बरस गांठ गिरिधरलाल की बहोरि कुशल से आई॥

नन्दमहोत्सव—

नन्दमहोच्छव भयो ब्रज बीथें।
अपने लाल पर वार न्यौछावर सब काहू को दीजै।

× × ×

कंचन कलस अलंकृत रतन विप्रन दान दिवाई।

---

१ परमानन्दसागर पद संख्या [illegible] से [illegible] तक।

मेष वितरण—

नंद बधाई दीजै ग्वालन।

छठीपूजन—

मंगल दीप छठी को धायो।

पलना—

हालरो हुलरावै माता।

अन्नप्राशन—

अन्नप्राशनदिन नंदराम को करत जसोदामाय।

कर्णवेध—

गोपाल के वेध कर्ण को कीजै।

नामकरण—

यहाँ गगन-मति गर्ग कह्यो ।।
यह बालक अवतार पुरुष है 'कृष्ण' नाम आनन्द लह्यो ।।

करवट—

करवट लही प्रथम नन्द नन्दन।

भूमि पर बैठाना—

हौं वारी

कर तें उतारि भूमि प राखे यहि बालक को कीजौ।

यज्ञोपवीत—

माई तेरो कान्ह कौन गुन इम लाग्यो।

परमानन्ददास को ठाकुर कांधे परयो न तागो।

वाग्दान अथवा टीका—

माय लगन की होत सगाई।

× × ×

वृषभान गोप टीका दै पठयो सुन्दर श्याम कन्हाई।

विवाह—

ब्याह की बात चलावन आए।
दुलही री गावो मंगलचार।
भांवर लेत प्रिया अरु प्रियतम तन मन दीजै वार।

सुहागरात—

सोई दीस सुहावनी दिन दूल्हे तेरे।

× × ×

दुलहिन रैन सुहाग की दूल्हे बर पायो।

संस्कारों के अतिरिक्त परमानन्ददासजी ने बहुत सा अन्य रीतियों की भी चर्चा की है। जैसे–राई नोन उतारना—

दस ससि के अनुमान प्रमान चमक बनावत सगरी ।

इसी प्रकार पाक शास्त्र में भी उसकी गति थी। अनेक पदों में उसने वस्तु परिगणन शैली के आधार पर पकवानों-व्यंजनों के नाम गिनाये हैं। गोवर्धनलीला वाला पद तो इसीलिये लम्बा है कि उसमें पूरे अन्नकूट तथा कुनवारे के भोग के पदार्थों का वर्णन आ गया है।[1]

इसी प्रकार कवि ने वेषभूषा, चित्रकला आदि के वर्णन भी किये हैं।

ऐसे ही ये सब कवि की बहुज्ञता के परिचायक हों परन्तु उसका लक्ष्य केवल भगवत् सेवा की महत्ता और लीला रस का आस्वादन करना और उसका प्रतिपादन करना था। उसने अपने सम्पूर्ण काव्य में इसी लक्ष्य की पुष्टि की है।

कवि का पौराणिक ज्ञान उच्च कोटि का था। उसके अनेक पदों से पुराणों के विविध आख्यानों के ज्ञान का परिचय मिलता है।[2] परन्तु उसने भागवत के अतिरिक्त केवल पद्म-पुराण का ही उल्लेख किया है। इसके दो हेतु हैं। पद्म-पुराण भागवत के उपरान्त भक्ति का सर्वाधिक प्रतिपादक ग्रन्थ है। दूसरे भागवत की महत्ता पद्म-पुराण में सर्वाधिक प्रतिपादित की गई है। श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ के ६ अध्यायों में जो माहात्म्य दिया हुआ है वह पद्मपुराण से ही है। अतः उसने पद्मपुराण से भक्ति, तीर्थ-माहात्म्य एवं भागवत माहात्म्य जगद्गुरु वल्लभाचार्य से सुना[3]। और उसी पर दृढ़ रह कर गोपी-भाव की साधना करता रहा।

—————

१ रत्नाकर-सागर-कुँवर कीन्हन राधा केलि-म सं ७६१ ।
२ रत्नाकर-सागर पद संख्या-४१६, ७१९ ७३१ ११
३ पद संख्या-११ ७१५ १०

भगवान के गोप-वेश की लीला के वे अन्यतम कवि हैं।

"परमानन्द गोप भेस लीला अवतारी।

परन्तु परमानन्ददासजी हैं मुख्य रूप से किशोरलीला के ही गायक। यौवन के आह्लादित उन्माद भरे चिरवसन्त का संदेश देने वाले प्रेम की अमरता एवं सौन्दर्य तथा आश्चर्यजन्य-हृदय की गहरी प्रणयानुभूति को परमानन्ददासजी ने जितनी सफलता के साथ चित्रित किया है उतना हिन्दी का अन्य कवि शायद ही कर सका है। युगल लीला की भावकथा में कवि स्वयं इतना भावविभोर हो गया था कि उसे बाह्य-जगत् अथवा मर्यादा का भान नहीं रहा और उसका किशोर लीलात्मक-काव्य एकदम एकान्तिक रागानुगा-भक्ति-सम्पन्न भक्तों के ही काम का रह गया है। उसने मर्यादा के सभी बन्धन विच्छिन्न कर दिये। उसे गोप-वेश की सुन्दर मर्यादा प्राचीर सैन्य की विचित्र राशि प्रतीत हुई। जिसे उसने अपने भावात्मक प्रहारों से अनायास ही समाप्त कर दिया। सर्वस्व वार देने की निष्काम मनोवृत्ति का जो अलौकिक परिचय कवि ने अपनी परम रूपासक्ति में दिया है—वह अद्वितीय है। युगल लीला के रसाब्धि में कवि एकान्त अवगाहन करके जिस आनन्द सुमेरु पर विचरण करता था वह इस पार्थिव जगत् की कल्पना से सर्वथा परे है। रस की वह गहराई अथवा आनन्द की वह अभ्र लिह ऊँचाई अनुभूति की वस्तु है शब्दों की नहीं। परमानन्ददासजी इस क्षेत्र में सभी अष्टछापी कवियों में मूर्धन्य हैं अपनी तन्मय अलौकिक रसमयता के कारण उन्हें अश्लील कहना उचित नहीं। उनकी भक्ति का रहस्य है— 'कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते।"

अष्टछाप के नंददासजी अपनी रासलीला के लिये प्रसिद्ध हैं। निस्सन्देह उनकी रास लीला की शारदीय ज्योत्स्ना इतनी शीतल-इतनी मधुर इतनी दिव्य एवं आकर्षक है कि उसके सामने अन्य कवियों का रास-वर्णन फीका पड़ जाता है।

नंददासजी में द्विविध पाण्डित्य के दर्शन होते हैं—उनके पदों में लीला भक्ति-भावना सिद्धान्त-चर्चा तो है ही उधर किसी मित्र का मन रखने के लिये अनेकार्थमंजरी नाममंजरी रस मंजरी विरहमंजरी आदि पांच मंजरियों के आदि श्लोकों में से भी वे एक हैं। इस प्रकार रीति कालीन शृंगार प्रवृत्ति का शिलान्यास वस्तुतः उन्हीं से समझना चाहिए। इस दिशा में उन्होंने साहित्य का नया पथ-प्रदर्शन किया है। उसे हम लौकिक अनुभूति से अलौकिक भक्ति की ओर अभिमुख करने का प्रयत्न कहेंगे। इसलिए नंददास जड़िया और सब गढ़िया। कहा गया है। परन्तु आध्यात्मिक तन्मयता जो परमानन्द में है उसका उनमें अभाव है। इसी प्रकार गोविन्दस्वामी के विषय में एक लेखक की निम्नांकित पंक्तियों से हम नितान्त सहमत हैं कि—

वे एक प्रतिभाशाली कलाकार, मानव-हृदय की सूक्ष्म वृत्तियों की द्रष्टा दार्शनिक भक्त और अमर कवि हैं। सभी अष्टछाप की काव्य प्रतिभा प्रायः एक सी है क्योंकि सभी को उनके शिरोमुकुट सूर से प्रकाश प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन मिलता है। अष्टछापी कवियों का एक मौलिक स्वरूप है। अतएव उनकी तुलना किसी अन्य कवि से करना एक प्रकार से अनुचित ही है। वात्सल्य के अनूठे चित्र बाल मनोवृत्तियों की अद्भुत-व्यंजना वियोग और संयोग की विविध अन्तवृत्तियों का हृदयस्पर्शी वर्णन तथा भक्ति की अलौकिक मनोरमता

गोविन्दस्वामी की अपनी विशेषतायें हैं—इनका काव्य लौकिक-अलौकिक दोनो दृष्टियों से उपादेय है—

सगीत की भाव-विभोरता परमानन्ददासजी जैसी गोविन्दस्वामी मे भी मिलती है। परन्तु उनमे परमानन्ददासजी की एकान्त रागानुगा भक्ति का उतना विशद प्रतिपादन नहीं मिलता।[1]

इनके अतिरिक्त कुम्भनदास कृष्णदास छीतस्वामी एव चतुर्भुजदास आदि सभी कृष्ण-लीला गायक भक्तगण कृष्ण चरित गान के लिये हिन्दी-साहित्य मे अमर हैं। तथापि वे सूरदास परमानन्ददास एव नन्ददास के उपरान्त ही आते हैं। इन कवियो का अपना अपना क्षेत्र है। परन्तु इनका साहित्य इतना कम उपलब्ध है कि सूर और परमानन्ददासजी के काव्य मे इनके निहित भावो तथा कथावस्तु का समावेश हो जाता है। फिर अष्टछाप के सभी कवियों मे यद्यपि प्रत्येक ने श्रीकृष्ण लीला के प्रत्येक प्रमुख प्रसग को लेकर पद रचना की है। तथापि कुछ विशेष प्रसग कुछ ही कवियो ने लिये हैं। इसका कारण उनके व्यक्तिगत संस्कार हैं। परमानन्ददासजी के ध्रुवलीला के प्रसग को अन्य अष्टछाप के कवियो ने नाम मात्र को ही स्पर्श किया है। इस प्रकार कुम्भनदास कृष्णदास छीतस्वामी आदि ने रासलीला और भ्रमरगीत के प्रसगो को इतनी मार्मिकता अथवा महत्व के साथ नही लिया है जितना सूर, परमानन्द अथवा नन्ददास ने। अत: हम परमानन्ददासजी की विशेषताओं पर दृष्टिपात करें तो इन निष्कर्षों पर पहुंचते हैं।

१—वे वात्सल्यपक्ष और किशोर लीला के अद्वितीय गायक हैं।

२—विप्रलम्भ की अपेक्षा इनमे सयोग शृ गार की ही प्रधानता है।

३—वे सम्प्रदाय के कट्टर अनुयायी भागवत लीलानुसारी हैं। अत: इनमें साम्प्रदायिक विशेषताएं उपलब्ध होती हैं।

४—महाप्रभु एव सुबोधिनी के वे अप्रतिम व्याख्याता हैं। इनके पदो को यदि सुबोधिनी की विशद व्याख्या कहा जाय तो अनुचित न होगा।

५—महाप्रभुजी के अनन्य भक्त होते हुये भी वे वस्त्रहरण वाले अध्यायमाहात्म्य को छूते नही इससे उनकी मौलिकता एव स्वत त्र रुचि का परिचय मिलता है।

६—महाप्रभुजी ने वस्त्रहरण वाले तीन अध्यायो को प्रक्षिप्त माना है किन्तु अष्टछाप के कवियों में सर्वाधिक भागवत का अनुसरण करने वाले होकर भी उन्होंने इस प्रसग को ग्रहण किया है। भागवत और पद्मपुराण के अनेक उन्होने अपने पदो मे यत्र तत्र सर्वत्र दिये हैं।

७—सूर के उपरान्त ब्रज-सस्कृति का पूरा चित्रण यदि कही है तो परमानन्ददासजी मे। अष्टछाप के अन्य कवियों में ब्रज-सस्कृति का उतना विशद चित्रण नही।

८—सूर के उपरान्त यदि ही काव्य परिमाण की दृष्टि से नन्ददासजी आते हों। परन्तु निर्भय प्रीति के वर्णन मे परमानन्ददासजी ही अगली हैं।

१ दशो-१ मजन-१

६—यदि सूर माखनलीला, नन्ददासजी अपनी रासपञ्चाध्यायी और कृष्णदास अपनी रासलीला के लिये अमर हैं तो परमानन्ददासजी अपनी बाल किशोर और मुरलीलीला के लिये अमर और अप्रतिम हैं। वे भाव-लोक के एकान्त साधक कवि हैं। इस के दिव्य उदाहरण उनके इतने हैं कि पाठक किसको ले किसको छोड़े। अतः उनके लिये यही वाक्य ठीक उतरता है कि—

भरे भवन के चोर भए बदमत ही हारे।"

अतः परमानन्दजी सूक्ष्म निरीक्षण, भगवदासक्ति, भाव प्रवणता, कल्पना, अनुभूति संगीत तथा भाषा की सजीवता, मधुरता, सरलता, सुबोधता एवं रसात्मकता के लिये ब्रज भाषा कवि-साहित्य में एक अद्वितीय स्थान रखते हैं। उनकी काव्य शक्ति अप्रतिम और भक्ति-भावना अद्भुत है।

कृष्णार्पणमस्तु

— —

सहायक ग्रंथों की सूची

वेद उपनिषद् एवं पुराण साहित्य—

१—ऋग्वेद
२—यजुर्वेद
३—तैत्तरीयोपनिषद्
४—गोपालतापिनीयोपनिषद्
५—अग्निपुराण
६—श्रीमद्भागवत महापुराण
७—स्कन्द पुराण
८—गर्ग संहिता
९—नारदीय-भक्ति-सूत्र
१०—शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र
११—श्रीमद्भगवद्गीता

साम्प्रदायिक-साहित्य

१२—श्रीमद् ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्—निर्णयसागर बम्बई
१३—श्रीपती टिप्पणी—गोस्वामी विट्ठलनाथजी कृत
१४—अष्टसखामृत प्राणनाथ
१५—उज्ज्वल नीलमणि—निर्णय सागर
१६—तत्वदीप निबन्ध
१७—तत्वार्थ दीप निबन्ध—यूनियन प्रिंटिंग प्रेस अहमदाबाद
१८—नागर समुच्चय—नागरीदास
१९—भक्तमाल भक्तिसुधा—नवलकिशोर प्रेस
२०—भक्तमाल-टीका प्रियादास
२१—भक्तविनोद—कवि मियासिंह
२२—भावप्रकाश—अष्टछाप-स्मारक समिति मथुरा
२३—भक्तिवर्द्धिनी [illegible]
२४—[illegible] भक्त नामावली—नागरीदास
२५—वल्लभ दिग्विजय
२६—वल्लभ-पुष्टि-प्रकाश
२७—[illegible] चतुःश्लोकी
२८—वैष्णवाह्निक पद
२९—विद्वन्मण्डनोपोद्घात—[illegible] विद्यामन्दिर मथुरा
३०-४५—षोडश ग्रन्थ
४६—सम्प्रदाय कल्पद्रुम

११९—अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय भाग २—डा. दीनदयाल गुप्त
१२०—सूर और उनका साहित्य—डा. हरवंशलाल शर्मा
१२१—सूरदास—डा. ब्रजेश्वर वर्मा
१२२—सूर निर्णय—परीख
१२३—अष्टछाप—डा. धीरेन्द्र वर्मा
१२४—सूरदास—आचार्य शुक्ल
१२५—सूर साहित्य की भूमिका—भटनागर और त्रिपाठी
१२६—मध्यकालीन धर्म साधना—डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी
१२७—मध्यकालीन प्रेम साधना—परशुराम चतुर्वेदी
१२८—योग प्रवाह—डा. सम्पूर्णानन्द
१२९—रसेश श्रीकृष्ण—के. डी. शाह
१३०—भारतीय साधना और सूर साहित्य—मुंशीराम शर्मा
१३१—व्यास वाणी—सम्पादक राधाकृष्ण गोस्वामी

काव्य ग्रन्थ एवं संगीत ग्रंथ

१३२—परमानन्दसागर—परीख जी की १७५४ वाली २ प्रतियाँ
१३३—परमानन्दसागर—नाथद्वारा पुस्तकालय हस्तलिखित ४ प्रतियाँ
१३४—परमानन्दसागर—सम्पादक डॉ. गोवर्धननाथ शुक्ल
१३५—कीर्तन संग्रह भाग—१
१३६—कीर्तन संग्रह भाग—२
१३७—कीर्तन संग्रह भाग—३
१३८—अष्टछाप पदावली—डा. सोमनाथ
१३९—रागकल्पद्रुम भाग—१
१४०—रागकल्पद्रुम भाग—२
१४१—रागरत्नाकर
१४२—ब्रज माधुरी सार—वियोगी हरि
१४३—संगीत रत्नाकर भाग—१
१४४—संगीत रत्नाकर भाग—२
१४५—संगीत कीर्तन पद्धति अर्थात् नित्य कीर्तन—ब्रजलाल
१४६—ध्रुपद स्वर लिपि—हरिनारायण मुखोपाध्याय
१४७—भ्रमरगीत—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१४८—श्री बालकृष्ण लीलामृत
१४९—रास पंचाध्यायी भ्रमर गीत—नन्ददास

कोष-व्याकरण-लक्षण ग्रन्थ

१५०—अमर कोष
१५२—वैजयन्ती कोष
१५३—सिद्धान्त कौमुदी
१५४—काव्य प्रकाश

८४—अष्टछाप

८५—श्री वल्लभाचार्य और उनके सिद्धान्त

८६—श्री विट्ठलेश चरितामृत परीख

८७—वार्ता साहित्य मीमांसा-परीख

८८—अष्टसखान की वार्ता-परीख

८९—गोविन्द स्वामी—कांकरोली

९०—कुम्भनदास—कांकरोली

९१—चौरासी वैष्णवोनु धोल कांकरोली

९२—बैठक चरित्र हस्तलिखित—नाथद्वार पुस्तकालय

९३—निज वार्ता हस्तलिखित ।

९४—दी कल्चरल हैरीटेज आफ इण्डिया बुक सिरी

दार्शनिक

९५—ब्रह्मवाद है रामनाथ शास्त्री

९६—पुष्टिदर्पण

९७—भक्ति और प्रपत्ति का स्वरूपगत भेद

९८—पुष्टिमार्ग—परीख

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथ

९९—शिवसिंह सरोज

१ —[illegible]—डा लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

१ १—मिश्र बन्धु विनोद

१ २—दी मोडर्न हिस्ट्री आफ हिन्दुस्तान—ग्रियर्सन

१ ३—अकबर दी ग्रेट मुगल एम्परर

१ ४—इस्मीरित परमानम्—मर्सी

१ ५—हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर एफ ई की

१ ६—हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

१ ७—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा र

१ ८—हिन्दी साहित्य की भूमिका—आचार्य हजारीप्रसाद द्वि

१ ९—हिन्दी साहित्य—आचार्य हजारीप्रसाद

११ —हिन्दी भाषा और साहित्य—डा श्यामसुन्दरदास

१११—मोडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान

११२—कांकरोली का इतिहास

११३ हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास—अय

११४—हिन्दी साहित्य का इतिहास—ब्रजरत्नदास

११५—हमारी हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार

११६—हिन्दी साहित्य की चर्चा—[illegible]

आलोचनात्मक ग्रंथ

११७—अष्टछाप परिचय—परीख और मीतल

११८—अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय भाग १—डॉ दीनदयालु गुप्त